UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186568
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP- -707- -25-4-81 —10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H131·341 A27P Accession No. [illegible]

Author [illegible]

Title [illegible]

This book should be returned on or before the date last marked below

प्रतीकवाद

डा० पद्मा अग्रवाल एम० ए०, पीएच० डी०
रीडर, मनोविज्ञान विभाग
काशी विश्वविद्यालय

मनोविज्ञान प्रकाशन
वाराणसी

मनोविज्ञान प्रकाशन
५६/२३ गोविन्दपुरा,
वाराणसी-१

प्रथम संस्करण
सर्वाधिकार सुरक्षित
२५ दिसम्बर १९६३

मुद्रक
लक्ष्मी दास
बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी प्रेस, वाराणसी

दो शब्द

प्रस्तुत ग्रंथ मे प्रतीक के विषय पर विचार-विमर्श किया गया है। प्रतीकों का प्रयोग मानव मन के तथ्यों की अभिव्यक्तियों के सभी क्षेत्रों मे एक प्रकार से अनिवार्य-सा है। प्रमुखत प्रतीकों का अभ्युत्थान मानसिक अवस्थाओं मे होता है, जिनमे इनका अर्थ-प्रयोजन निहित अथवा गुम्फित रहता है। फ्रायड और युग ऐसे उत्कट मनीषियों ने आन्तरिक छिपी निष्कासित इच्छाओं की अभिव्यक्ति के लिये प्रतीकवाद को एक माध्यम के रूप मे स्वीकार किया है। किन्तु इस अनुसधान के प्रतिफल मे यह परिकल्पना स्थापित हुई है कि प्रतीकवाद अज्ञात मन की एकमात्र भाषा है; अन्य कार्य-पद्धतियाँ प्रतीकीकरण की पद्धति की सहायक मात्र है। अज्ञात मन मे सग्रहीत इच्छाओं की अभिव्यक्ति का स्वरूप सदैव प्रतीकात्मक होता है। यह सिद्धात स्वप्न, कला, मानसिक रोग, धर्म, पौराणिक आख्यान, भाषा इत्यादि के प्रचलित सस्थापनाओं की विवेचना पर आधारित है।

इस ग्रथ की मौलिकता विषय के सकलन मे है जिससे प्रस्तावित परिकल्पना भली-भाति सस्थापित हो सकी है। यह कथन निर्मूल है कि प्रतीकवाद के विषय मे साहित्य और विज्ञान मे कोई चितन नही हुआ है; विषय को स्पष्ट, बोधगम्य और एक नवीन परिधान मे अलकृत करने तथा वैज्ञानिक रूप देने का श्रेय इस ग्रथ को है। वस्तुत विज्ञान की उन्नति का यही सोपान है वैज्ञानिक का कार्य अस्पष्ट को स्पष्ट करना, अव्यक्त को व्यक्त करना है। भाव-विचार को व्यक्त करने के लिये सर्वत्र सरल, बोधगम्य और वैज्ञानिक भाषा का प्रयोग किया है।

मनोविज्ञान मे प्रचलित कुछ सिद्धांतों का खडन अपनी परिकल्पना को

प्रदत्तों के आधार पर सम्स्थापित करने के लिये इस ग्रंथ मे समुचित आधार पर किया गया है। जो सिद्धान्त इसमे संस्थापित किया है उसके समर्थन के लिये अत्युत्कृष्ट उद्धरणो का प्रयोग हुआ है इसमे संदेह नही है।

स्वर्गीय भारतरत्न डा० भगवानदास के आत्म-प्रेरणा से यह आध्यात्मिक रचना प्रस्तुत हो सकी है। विचार-शृंखला को सुगठित रूप देने के लिये डा० चार्ल्स मौरिस, शिकागो विश्वविद्यालय, प्रो० जे० सी० फ्लुगल, लदन विश्वविद्यालय और डा० बी० एल० आत्रे, काशी विश्वविद्यालय तथा शब्दावली सबधी समस्या के निराकरण के लिये डा० वासुदेव शरण की मैं आभारी हूँ।

पद्मा अग्रवाल

विषय-सूची

परिचय

प्रतीक की अवधारणा का विश्लेषण-संश्लेषण - चिह्न, अन्योक्ति और प्रतीक मे भेद मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि और समीक्षा प्रतीक और अज्ञातमन प्रतीकवाद की समस्या प्रतीकवाद का विकास मनोविश्लेषण और विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान का प्रतीकवाद को योगदान आलोचना सक्षिप्त विवरण १-३३

स्वप्न और प्रतीकवाद

स्वप्न का मानसिक महत्व देवकृत तथा कायिक से मानसिक और अवस्थान्तर - अवचेतन मनोविज्ञान मे स्वप्न के प्रतीकात्मक स्वरूप की सामान्य प्रस्थापना स्वप्न मे प्रतीक-शैली के उपयोग करने का प्रयोजन स्वप्न-प्रतीक की विशेषताएं कामवृत्ति स्वप्न-प्रतीको मे काम-सबधी अर्थविशिष्टता की आलोचना मानव का बहुमुखीय स्वभाव — अतिसकल्पित वर्ग के स्वप्न स्वप्न का व्यक्त और अव्यक्त पक्ष प्रतीकात्मक स्वप्न का उद्गमस्थान—स्वप्न की कार्य-पद्धतियाँ· सक्षेपण, विस्थापन, नाट्कीयन, प्रतीकीकरण—· स्वप्न का विवरण-विश्लेषण प्रमुख स्वप्न-प्रतीको की व्याख्या: जल, राजारानी, यात्रा, उडना, सीढी, वस्त्र, सख्या तीन फ्रायड, एडलर, युग, और स्टेकल के विभिन्न दृष्टिकोण स्वप्न-प्रतीको का वर्गीकरण· कायिक प्रतीक,

मानसिक प्रतीक, धार्मिक प्रतीक और नैतिक प्रतीक स्वप्न-व्याख्या की विधियाँ – स्वप्न की औपचारिक महत्ता ३४-७६

कला और प्रतीकवाद

कला की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि प्रच्छन्न से आनुभाविक ओर अवस्थान्तर कला और परिमार्जन कामवृत्ति - स्थानापन्न तुष्टि की अवधारणा दमन प्रक्रिया दमित तथ्यों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति भाव-कल्पना और अनुभूति का कला मे योग स्वप्न और कला कला के माध्यम - कला अज्ञातमन का प्रतीक है– सामूहिक अज्ञातमन कला और भाव-प्रतिमाएँ (आरकेटाइप्स) सर्जनात्मक वृत्ति और कामवृत्ति मे भेद –फ्रायड-सिद्धात की आलोचना– व्यक्तिगत और अव्यक्तिगत तथ्य युग-सिद्धान्त एडलर का कायिकहीनता-सिद्धान्त भारतीय आध्यात्मिक पक्ष काव्यप्रतीक काव्य और भाव-प्रतिमाएं स्त्रैणता सूचक भाव-प्रतिमा (एनिमा) साहित्य के रहस्यात्मक प्रतीक - शिल्पकला और प्रतीकवाद– भारतीय कला की कतिपय प्रतिमाओं की मनोवैज्ञानिक व्याख्या ७७-११८

मानसिक रोग और प्रतीकवाद

मनोविकृति के विकास का ऐतिहासिक विवरण. शारको, ब्राअर, जैने, फ्रायड, एडलर, युग, मैकडुगल का योगदान – रोगलक्षणों के प्रयोजन –रोगलक्षणों के प्रतीकात्मक स्वरूप की सामान्य प्रस्थापना –प्रतीकवाद के आधार पर मानसिक रोगों का वर्गीकरण : शारीरिक संकेत, विचार-धारणाएँ, और मानसिक प्रतिमाएँ - हिस्टीरिया: कामशक्ति का शारीरिक रोगलक्षणों मे रूपान्तर (फ्रायड), रोगलक्षण मुक्त भाव-ग्रंथियों के प्रतीक है (युंग), जैने का दृष्टिकोण, हिस्टीरिया के लक्षण और अज्ञातमन की भाव-कल्पनाएँ, फ्रायड-सिद्धांत की आलोचना —स्नायुरोग अतिचिंतन: पौरुषी विद्रोह और हीनभाव ग्रंथि का संघर्ष (एडलर) कल्पनाग्रह: दमित काम-भाव का महत्व, हस्तप्रक्षालन अचेतन अपराध-भाव का प्रतीक

है, अद्भुत-विचार – चिंतारोग भीतिरोग स्थिरभ्रम: प्रक्षेपण प्रक्रिया, अपमान भ्रम, ऐश्वर्य भ्रम, फ्रायड-सिद्धान्त की आलोचना असामयिक मनोह्रास उत्साह-विषाद मनोदशा ११९-१९३

धर्म और प्रतीकवाद

धार्मिक प्रतीकवाद के सिद्धान्त: प्रकृतवाद, आदर्शवाद – धार्मिक प्रतीकों का सामान्य वर्गीकरण: देव-पूजन और कर्मकाड-सपादन—धर्म-भाव की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि. कामवृत्ति का परिमार्जन (फायड), हीनभाव-ग्रंथि (एडलर), अध्यात्मवृत्ति (युग) पशु-पूजा प्रतीकवाद का मनोवैज्ञानिक महत्व—मानवीकरण पद्धति आत्मासम्मोह का प्रतिफल है – धर्म-प्रतीक और मनोविश्लेपण धर्म-प्रतीक और विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान धार्मिक पथ मनोवैज्ञानिक सिद्धातो का प्रतिरूप है: बलिदान और आत्मा के आवागमन की व्याख्याएँ—इडिपस भाव-ग्रंथि द्विभाव धर्म अध्यास है आलोचना – प्रमुख धर्म-प्रतीको की व्याख्या: त्रिदेव, चतुर्देव, मंडल, स्वस्तिका, कुण्डलित वक्र, वृक्ष—उर्वरीकरण और प्रज्जवलन की प्रथाओं का कामात्मक महत्व –धार्मिक कर्मकाड-संपादन और कल्पनाग्रह के वैधानिक व्यवहार धार्मिक रहस्यवाद का मनोवैज्ञानिक आधार – धर्म और पौराणिक आख्यान—पौराणिक आख्यानों की मनोवैज्ञानिक महत्ता –पौराणिक आख्याने प्रतीकात्मक है – पौराणिक आख्यान अज्ञातमन के नाटक हैं - मातृप्रतीक—पुनर्जन्म प्रतीक—सूर्य आख्यान १९४-२०५

भाषा, दैनिक क्रियाएँ और प्रतीकवाद

भाषा की व्याख्या- -भाषा प्रतीकात्मक है—भाषा प्रतीकवाद का अभाषी से सबंध अर्थविज्ञान भाषा का वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ पक्ष—भाषा मे संवेगात्मक पक्ष की प्रधानता भाषा की मनोविश्लेषणात्मक व्याख्या—मानसिक कार्य-कारण संबंध दैनिक जीवन मे प्रतीकों का प्रयोग—प्रवंचक स्मृतियाँ—विस्मरण -लाक्षणिक क्रियाएँ २०६-२२६

उपसंहार

प्रतीक अज्ञात मन की भाषा है प्रतीकवाद के विषय-तथ्य दमित इच्छाएँ और भाव-प्रतिमाए है प्रतीक की विशिष्टता-महत्ता व्यक्तिगत और अव्यक्तिगत प्रकार की है प्रतीक का अर्थ निश्चित और गत्यात्मक भी होता है प्रतीक विभिन्न प्रवृतियों का द्योतक है प्रतीकवाद अज्ञातमन की कूटनीति का द्योतक है प्रतीकवाद और काल्पनिक विचार—प्रतीकवाद और परिमार्जन प्रतीकवाद और अतिसंकल्पन २२८-२४५

शब्दकोष २४७-२५२

अनुक्रमणिका २५३-२५६

ग्रंथ-सूची २५७-२६०

—

परिचय

प्रतीकों का प्रयोग अधिकांशत भाषा, धर्म, पौराणिक आख्यान, कला, दर्शन और दैनिक क्रिया-व्यापार मे मिलता है। अत विचार विकास की प्रक्रिया अथवा अभिव्यक्ति मे इनका योग स्पष्ट है। भाषाशास्त्रियों की धारणा है कि भाषा का मौलिक एव तात्त्विक आधार चिह्न और प्रतीक थे, जिनमे विचार, उद्वेग, इच्छा आदि की सदैव अभिव्यक्ति होती रही। प्रतीकार्थ अलग कर देने पर शब्दों का कोई मूल्य नही रह जाता। साहित्य मे, जो भाषा का सुसघटित, कलात्मक एव व्यञ्जक रूप है, प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग होता है। उनमे भाव-विचार प्राय परोक्ष रूप मे व्यजित किये जाते है। स्विनबर्न और रोज़ेटी अग्रेज़ी साहित्य मे प्रतीकों के प्रयोग के लिए प्रसिद्ध है। अपनी नायिका के अक्षत कौमार्य एव पवित्रता का सजीव चित्रण करने के लिए रोज़ेटी ने 'ब्लेसेड डेमोजल' नामक कविता मे उसकी कल्पना ऐसे रूप मे की है जो श्वेत वस्त्रो से अलकृत है, कर मे श्वेत कमल लिये है और जिसके ललाट पर सात नक्षत्र जगमगा रहे है। श्वेत कमल और सात नक्षत्र सदैव पवित्रता के प्रतीक रहे है। साहित्य मे इस प्रकार के प्रतीकों का बाहुल्य है। प्रतीक योजना से गुम्फित पदावली काव्य की एक शैली ही बन गई है। इस प्रकार की रचनाएँ दो अर्थ व्यञ्जित करती है : एक बहिरंग एव व्यक्त; दूसरा अंतरंग एवं अव्यक्त।

धर्म की विशेषता है विविध प्रकार के धार्मिक कृत्यो का सपादन। जिस प्रतिमा की पूजा की जाती है, वह ईश्वर नही, ईश्वर का प्रतीक है। इसी प्रकार धार्मिक कृत्यों का भी अपना प्रतीकात्मक महत्व होता है। पौराणिक आख्यानों मे मूल तथ्यों की अभिव्यक्ति अभिधेयात्मक नहीं होती। उन्हे प्रतीकात्मक कथानकों द्वारा व्यंजित किया जाता है। अतएव उनका

वास्तविक महत्व समझने के लिए अभिधेयार्थ मे निहित उनके गूढ़ अर्थ तक पैठना आवश्यक हो जाता है ।

कला भी प्रतीकात्मक है । किसी चित्र मे प्रकृति की शुष्कता से जीवन की ऐसी नीरसता का बोध होता है जहाँ कुछ भी उल्लास नहीं रह गया है और आशा की किरण सदैव के लिए लुप्त हो गयी है । इसी प्रकार दर्शन भी प्रतीकों मे निहित तथ्यों का अन्वेषण है । मनुष्य का साक्षात्कार स्वयं वास्तविक सत्ता से नहीं हो पाता; केवल प्रतीकों से होता है । उन्हीं से वास्तविकता की अभिव्यक्ति होती है । जिसे सत्य समझा जाता है वह तो सत्य का प्रतीक मात्र है ।

इस प्रकार मानवीय भाव-विचार की अभिव्यक्ति के सभी क्षेत्रों मे प्रतीकों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है और विभिन्न दृष्टिकोणों से उन्हें समझने का प्रयास होता रहा है । प्रस्तुत ग्रंथ मे मनुष्य की प्रतीकीकरण की प्रवृत्ति मे निहित प्रक्रियाओं मे केवल मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का अध्ययन किया गया है । मनुष्य की गूढ़ प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति उसकी बाह्य क्रियाओं मे होती है । व्यक्तित्व पूर्णतः आन्तरिक प्रेरणाओं पर निर्भर रहता है । इस तथ्य पर नवीन मनोविज्ञान मे विशेष बल दिया गया है । यही कारण है कि फ्रायड के मनोविश्लेषण मे प्रतीकवाद को विशिष्ट स्थान दिया गया है; फ्रायड से अधिक इसकी महत्ता युग के मानसिक विवरण मे मिलती है । प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की प्रवृत्ति मनोविश्लेषण मे 'प्रतीकवाद' के नाम से प्रसिद्ध है । इस ग्रन्थ मे फ्रायड के मनोविश्लेषण और युंग के विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को ध्यान मे रखकर स्वप्न, मानसिक रोग, कला, धर्म, भाषा और पौराणिक आख्यानों के प्रतीकों के अध्ययन का प्रयास किया है । इसमे दमित तथा दमन करने वाली उन प्रक्रियाओं के अन्तर्द्वन्द्वों का विशेष रूप से अध्ययन किया गया है, जिनसे मानवीय चिंतन के विभिन्न क्षेत्रों मे प्रतीकवाद की उत्पत्ति हुई है ।

सामान्यतः प्रतीकों की उत्पत्ति के कारण उनके कुछ विशिष्ट गुण—संक्षिप्तता, स्पष्टता, प्रसादात्मकता, सौंदर्य-ग्राह्यता, अर्थ-शबलता और व्यंजनात्मकता माने जाते हैं । किन्तु मनोविश्लेषण मे प्रतीक का प्रयोग विशिष्ट अर्थ मे हुआ है । यह अज्ञात मन की दमित इच्छाओं से संबंधित होता है जो स्वभाव से

काम-संबंधी होती हैं। इस प्रकार प्रतीक सदैव काम-वस्तु और काम-संबंध का प्रतिनिधि हुआ। काम प्रतीकों मे कामेच्छा अथवा काम-प्रतिमा निष्काम रूप धारण कर लेती है। मनोविश्लेषण के उद्भट प्रतिपादक रैन्क और सैक्स ने प्रतीक की अति बोधगम्य और संक्षिप्त परिभाषा दी है : "प्रतीक दमित भावनाओं की अभिव्यक्ति का पूर्ण साधन है, जो अज्ञात मन की भावनाओं को छद्मवेश और ज्ञात मन के नवीन विषय-वस्तु के साथ सामंजस्य करने की विशेष योग्यता के कारण सामान्य रूप से प्रयुक्त होता हो। यह विशेष प्रकार की परोक्ष अभिव्यक्ति है, जो उपमा, रूपक, अन्योक्ति, संकेत और चित्रात्मक व्यञ्जना के अन्य रूपों से अपनी कतिपय विशेषताओं के कारण पृथक है। प्रतीक इन सभी व्यञ्जना शैलियों का उदात्त समीकरण है। यह स्थानापन्न और बोधात्मक स्थानान्तरीकरण है। यह कुछ इन निगूढ़ विषय-वस्तुओं की ओर संकेत करता है जो समान धर्म (गुण) रखने वाले होते हैं, या जो, कुछ आन्तरिक सह-संबंधों द्वारा इससे संबद्ध होता है।[१]" इस परिभाषा मे प्रधानतः दो बातों पर बल दिया गया है : एक, यह कि दमित और अवरुद्ध इच्छाएँ प्रतीक द्वारा चित्रात्मक शैली मे अभिव्यक्त होती हैं; दूसरे, अज्ञात मन की भावनाओं के छद्मवेशी प्रदर्शन का यह सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। मनोविश्लेषण के व्याख्याता अर्नेस्ट जोन्स ने प्रतीक की विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया है : यह अज्ञात मन की छिपी और दमित भाव-इच्छा का प्रतिनिधि है। प्रतीकीकरण की प्रक्रिया स्वतः परिचालित होती है। इस पर वैयक्तिक तथ्यों का प्रभाव नही पड़ता। इसका एक निश्चित अर्थ होता है, और यह मनोविज्ञान का कोई नया अन्वेषण नही है। इसका प्रतिपादन मानव-प्रगति के इतिहास और जातिविकास के सिद्धान्तों के अनुसार किया जा सकता है। इस सम्बन्ध मे फ्रायड की स्थापनाओं का खण्डन करते हुए विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के प्रवर्त्तक युंग ने यह इंगित किया कि 'प्रतीक' के स्थान पर 'चिह्न' शब्द का प्रयोग होना चाहिए। युंग ने प्रतीक की धारणा को चिह्न और अन्योक्ति की धारणाओं से पृथक किया है : "जिसमे प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का अर्थ किसी पूर्व परिचित समतामूलक और संक्षिप्त व्यंजना के रूप मे होता है, यह चिह्नात्मक है। सापेक्षिक रूप से किसी अज्ञात विषय-वस्तु की यथासंभव अभिव्यक्ति जो किसी अन्य साधन द्वारा

---

[१] ई० जोन्स :—पेपर्स ऑन साइकोएनिलिसिस, पृष्ठ १६३

अधिक स्पष्ट और समीचीन रूप मे नहीं व्यक्त हो सकती, प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। किसी ज्ञात वस्तु का ऐच्छिक रूपान्तर अथवा वर्णन अन्योक्ति है।"[१] इस प्रकार युग के अनुसार प्रत्येक प्रतीक मनोवैज्ञानिक नियमों एवम् सिद्धान्तों का द्योतक है जिससे मानव जीवन का पथ-प्रदर्शन होता है। युंग ने प्रतीक को केवल स्थानापन्न न मानकर उसे अर्थपूर्ण और महत्ता व्यंजक भी माना है। उनका कथन है : "वे मभी मानसिक क्रिया-प्रणालियाँ प्रतीक है, जिनके सबंध मे यह मान्य है कि ये वर्त्तमान ज्ञान मे परे, उससे कुछ भिन्न किंतु अधिक महत्वपूर्ण अर्थ की व्यंजना करते है।"[२] उदाहरणार्थ, 'क्रॉस' को दैवी सत्ता का संकेत मानने पर यह चिह्न मात्र है। जब इसे किसी अज्ञात रहस्यमयी अलौकिक सत्ता का व्यजक माना जाय तभी यह प्रतीक है। युग की प्रतीक की धारणा फ्रायड और उनके अनुयायियों मे भिन्न है, यह कि मानवीय अभिव्यक्ति और क्रियाएँ केवल दमित कामवामनाओ अथवा इनसे संबंधित छद्मवेषी रूप मे संवेगात्मक सनुष्टि के ही प्रतीकीकरण है।

प्रतीकीकरण संबंधी मनोविश्लेषण के सिद्धान्त की ओर दृष्टिपात करने पर दो बातें स्पष्ट होती है एक तो यह कि प्रतीकेय विषय-वस्तु का संबंध प्रमुख इच्छाओं और रुचियों से है और वे अत्यधिक पुरातन और प्राकृत है; दूसरे यह कि प्रतीक का सबंध उन भावनाओ और संवेगो से है जो आदिकाल से सहज-रूप मे दमित अवस्था मे पड़ी है और प्रतिबंध के कारण ज्ञान मन मे नही आ पाती। साथ ही वे आदिम विचारों से सबंधित है। अतएव प्रत्येक प्रतीक का एक अपना सवेगात्मक पहलू रहना है। आदिम जातियों ने इस प्राचीन भाषा का प्रचुर प्रयोग किया है। इसका प्रमाण फ्रायड के 'टोटम और टैबू' नामक निबंध में वर्णित आदिवासियों के सामाजिक नियंत्रण (टैबू) और टोटम-पूजन मे मिलता है। प्रत्येक प्रतीक कामशक्ति से संबंधित है और इस प्रकार उन मभी परोक्ष और अव्यक्त इच्छाओं का प्रतिनिधि है जिनको ज्ञात मन मे आने का प्रवेशपत्र नहीं मिला है, अथवा जिनका निष्कासन हो गया है। फ्रायड के दृष्टिकोण से प्रतीक सदैव काममूलक होता है; युग के अनुसार, जैसा कि क्रिश्टन मिलर ने संक्षेप मे लिखा है "वास्तविक प्रतीक वही है जो आन्तरिक

[१] सी० जी० युंग :—साइकॉलजिकल टाइप्स, पृष्ठ ६०१

[२] सी० जी० युंग :—साइकॉलजिकल टाइप्स, पृष्ठ ६०३

संवेदन की अभिव्यक्ति करे और जिसकी किसी दूसरे रूप मे स्पष्ट अभिव्यक्ति न हो सके।"[१]

प्रस्तुत विचारधारा के अनुसार प्रतीक का अर्थ उस अभिव्यक्ति से है जिसमे अज्ञात मन के किसी भी अंग की व्यंजना होती है। इसी अर्थ मे मानव मन की विभिन्न अभिव्यक्तियो की व्याख्या का प्रयास हुआ है। फ्रायड ने इस पर बार-बार बल दिया कि प्रतीक अज्ञात मन की दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति है, किंतु उन्होंने यह कही स्पष्ट नहीं किया कि सभी दमित इच्छाएँ प्रतीक रूप मे ही अभिव्यक्त होती हैं। इसका सकेत फेरेन्कज़ी के ग्रन्थों मे मिलता है। अज्ञात मन के विषय-वस्तुओ की अभिव्यक्ति अन्य कार्य-पद्धतियों—संक्षेपण, विस्थापन, नाट्रकीयन, प्रक्षेपण इत्यादि—द्वारा भी होती रहती है। परन्तु अज्ञात मन की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप मे ये पद्धतियाँ निगूढ़ विषय-वस्तुओं को प्रत्यक्ष विषय-वस्तु के रूप मे रूपान्तरित कर देने मे सहायता मात्र देती है; स्वतंत्र रूप से इच्छाओं को अभिव्यक्त नही करती। दृष्टांत के लिये, प्रतीकोकरण की प्रक्रिया अज्ञात मन के वास्तविक विषय-वस्तुओ को 'प्रतीक' रूप मे व्यक्त करती है, किंतु मानव मन की अन्य कार्य-पद्धतियों मे व्यक्त करने के लिए ऐसा कोई निश्चित साधन नही होता। अज्ञात मन की अभिव्यक्ति को 'प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति' कहा जा सकता है। प्रतीकीकरण एक प्रारम्भिक प्रमुख प्रक्रिया है। अन्य कार्य-पद्धतियाँ सहायक मात्र होने के कारण गौण है। सभी आन्तरिक अज्ञात विषय-वस्तु, भाव-प्रतिमाएं प्रतीक रूप मे ही प्रक्षेपित, सक्षिप्त और नाटकीय रूप प्राप्त करती है। निगूढ़ विषय-वस्तु को प्रत्यक्ष विषय-वस्तु मे परिवर्तित करने मे सभव है कही प्रक्षेपण, कही विस्थापन, कहीं युक्ताभ्यास और कहीं संक्षिप्तीकरण प्रधान हो। जिस प्रकार स्थिरभ्रम रोग मे, रोगी जब अपने अज्ञात मन के अपराध-भाव को किसी अन्य पर आरोपित करता है तो उसके अपमान-भ्रम के मिथ्या विश्वास के अन्तर्गत प्रतीकात्मक अर्थ सन्निहित रहता है। किसी भूल के द्वारा युक्ताभ्यास के अज्ञात प्रयास के होने से अपराध-भाव का प्रतीकीकरण होता है। प्रतीक के विकास मे संक्षेपण की प्रक्रिया भी सहायता पहुंचाती है। राष्ट्रीय प्रतीक झंडे मे राष्ट्र का इतिहास, परम्पराएं, राष्ट्र के नेताओं की वीर गाथाएं निहित

---

[१] एच० क्रिश्टन मिलर:—साइकोएनैलिसिस एण्ड इटस् डिराइवेटिव्स

रहती है। अतएव प्रतीकीकरण को मानव मन की एक प्रणाली कहने की अपेक्षा इसे अज्ञात मन के नाटक की रंगभूमि अथवा मुख्य आधारभूमि कहना अधिक समीचीन है। यह एक तात्विक प्रक्रिया है और अन्य मानसिक कार्य-पद्धतियाँ इसकी सहायक मात्र है।

यह ग्रंथ मनोविश्लेषण और विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का प्रतीक के विषय मे संशोधित संश्लेषण अथवा समन्वय है। यह मान्य है कि प्रतीक द्वारा अज्ञात मन की दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है; किंतु यह मान्य नही है कि उन्हीं भाव-इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है जो काम-मूलक हों। वस्तुतः प्रतीक द्वारा मानव की उन प्रवृत्तियों की भी अभिव्यक्ति होती है जो सामाजिक प्रतिबंधों एवं अन्य अभावों के कारण वास्तविक जीवन मे संतुष्ट नहीं हो पातीं। दमित इच्छाओं के अतिरिक्त प्रतीकों द्वारा मानव के प्रकृत जातीय भाव-विचार या सामूहिक अज्ञात मन की आदिम प्रतिमाओं की भी अभिव्यक्ति होती है, जिन्हें युंग के पारिभाषिक रूप मे 'आरचेटाइप्स' कहते हैं। युंग की दृष्टि से ये भाव-प्रतिमाएं मानव के पूर्वजों द्वारा प्राप्त जातिगत विशेषताएं है। अतएव प्रतीक द्वारा व्यक्ति के भावी मनोवैज्ञानिक विकास की ओर सकेत होता है; अथवा इससे मानव मन की अभिरुचि-रुख का प्रदर्शन होता है।

फ्रायड की प्रतीक की व्याख्या कई कारणों से मान्य नहीं है। फ्रायड के दृष्टिकोण से प्रतीकात्मक प्रसंग का मुख्य तथ्य 'काम' है क्योंकि इसका अत्यधिक संवेगात्मक मूल्य है और इसी पर अधिकाधिक सामाजिक प्रतिबंध भी होता है। प्रतीक को काम-वासनाओं तक ही सीमित रखना विवादास्पद है, क्योंकि मानव प्रकृति मे विविधता है और अन्य इच्छाएँ भी समान रूप से महत्वशील होती हैं। आत्मप्रतिपादन वृत्ति का महत्व कामवृत्ति से कम नहीं होता। प्रतीक अनेक प्रकार के होते है, यथा धार्मिक, नैतिक, काममूलक इत्यादि। प्रत्येक व्यक्ति के अपने प्रतीक होते है जिनके द्वारा वह अपनी आंतरिक भाव-नाओं को, जो सामाजिक प्रतिबंध और आंतरिक अवरोध के कारण सामान्य रूप से संतुष्ट नहीं हो सकी हैं, अभिव्यक्त करता है। मनोविश्लेषण की यह स्थापना कि सभी प्रतीकों का स्थिर और सार्वभौम अर्थ होता है ठीक नहीं प्रतीत होती। युंग ने फ्रायड के इस मत की आलोचना की है। प्रतीक

के गत्यात्मक महत्व की ओर इंगित करते हुये उन्होंने यह प्रमाणित किया है कि प्रतीक का अर्थ प्रसंग के अनुसार दो या अधिक हो सकता है। प्रतीक का अर्थ सापेक्षिक रूप से प्रसंग, सन्दर्भ, वैयक्तिक साहचर्य एवं अन्य प्राप्य विवरणों के आधार पर ही निश्चित किया जा सकता है। एक ही प्रतीक का अर्थ दो व्यक्तियों के लिये भिन्न हो सकता है। संभव है एक ही प्रतीक का अर्थ एक ही व्यक्ति के लिये विभिन्न मानसिक अवस्थाओं और परिस्थितियों मे भिन्न हो। वैयक्तिक प्रभाव-संबंध से प्रतीक अछूता कैसे रह सकता है। अनुभूतियां कैसी भी संकीर्ण हों, अर्थ निश्चित करने के लिये वे प्रर्याप्त समृद्ध है। सर्प-प्रतीक एक के लिये काम और दूसरे के लिये भय का व्यञ्जक हो सकता है। प्रतीक का निश्चित अर्थ नहीं होता। फिस्टर के अनुसार "एक प्रतीक से एक समय विभिन्न विचारों का प्रकटीकरण होता है।"[1] यह मान्य है कि मानव स्वभाव मे कुछ तथ्य सामान्य होते है; परन्तु यह मान्य नहीं है कि सामान्य तथ्यों की अभिव्यक्ति सदैव विभिन्न व्यक्यिों द्वारा मानव की विभिन्न क्रियाओं के क्षेत्रों मे एक ही रूप मे होती है।

सारांश यह कि प्रतीक का अर्थ गत्यात्मक होता है और यह वैयक्तिक संबंधों से मुक्त नही किया जा सकता। अर्नेस्ट जोन्स का यह कथन "जो दमित है उन्ही का प्रतीकीकरण होता है; उन्हीं के प्रतीकीकरण की आवश्यकता है"[2] मान्य नही है। अज्ञात मन मे आदिम भाव-प्रतिमाएँ भी रहती है जो मानव के विभिन्न क्रिया-व्यापारों मे प्राय: व्यक्त हुआ करती है और इस प्रकार मानव प्रकृति के सामान्य मनोवैज्ञानिक तथ्यों का दिग्दर्शन होता है। भाव-प्रतिमाएँ तात्विक सत्ताएँ है क्योंकि युंग ने इन प्रतिमाओं के उद्गम के विषय मे स्पष्ट नहीं किया है। प्रस्तुत ग्रंथ मे इन प्रतिमाओं का मूल स्थान संवेगात्मक अनुभूतियाँ मानी गयी है और इस प्रकार इनका आधार मानसिक जीवन मे है। संवेगात्मक अनुभूतियाँ विभिन्न प्रकार की होती है; अतएव भाव-प्रतिमाएँ भी बहुरंगी होती हैं।

अज्ञात मन की विशिष्ट धारणा का अन्वेषण होते ही मनोवैज्ञानिक क्षेत्र मे क्रान्ति-सी हुई और इस प्रकार एक नये युग का प्रारंभ हुआ। मानव मन

---

[1] फ़िस्टर :—दि साइकोऐनेलिटिक मेथड, पृष्ठ २८५

[2] ई० जोन्स :—पेपर्स ऑन साइकोएनिलिसस, पृष्ठ १८३

का विशाल भाग पृष्ठभूमि मे है, जिसके विषय मे हमे कुछ ज्ञान नहीं। इसका प्रभाव चेतन जीवन पर एक घनात्मक मानसिक शक्ति के रूप मे अपने ढंग और शैली से पड़ता है। हमे अज्ञात मन के प्रकृत स्वभाव के बारे मे परिचय नहीं रहता। उसकी विषय-वस्तु का भी पता नहीं चलता। यह निश्चित है कि यह चेतन कल्पना, प्रत्यक्षीकरण, भाव और विचार से वृहत्तर और महत्वपूर्ण है। मानसिक जीवन का यह पथ निर्देशक है। मन के इसी महत्वपूर्ण भाग को आधुनिक मनोविज्ञान मे 'अज्ञात मन' की सज्ञा दी गई है, जिसे जर्मन भाषा मे 'अनबीवस्ट' कहते हैं। सम्पूर्ण मन विशाल हिमखंड सदृश है जिसका अल्पांश ही दृष्टिगत होता है। मन समस्त ज्ञात-अज्ञात, परिचित-अपरिचित, मानसिक प्रक्रियाओ का समुच्चय है। मन का बाह्य स्तर चेतन है, आन्तरिक स्तर अचेतन। ज्ञात मन मानसिक यत्र का बाह्य स्तर-भाग है। अज्ञात मन ही प्रमुख भाग है।

अज्ञात मन और उसकी मानव जीवन मे महत्ता का अन्वेषण होते ही वह आधारभूमि ही परिवर्तित हो गयी, जिसके प्रसग मे मानव-व्यवहार की व्याख्या की जाती थी। मनोवैज्ञानिकों ने मानव की क्रियाओं के गूढ़ अर्थ का पता लगाया। जिस रूप में मानव की क्रिया व्यक्त होती है उसका अध्ययन सरल है, जैसे कि मन किस प्रकार कार्य करता है, कल्पना करता है, किन वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करता है इत्यादि। पृष्ठभूमि मे कौन सी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, यह जानना कठिन है। मनोविश्लेषण का ध्येय प्रत्यक्ष के अन्तर मे छिपी गूढ़ भाव-इच्छा का पता लगाना है —वहिरंग मे अंतरग मे प्रवेश करना है। मानव व्यक्तित्व के आन्तरिक स्तर के अव्यक्त तथ्यों-अंशो के बारे मे अध्ययन करने से फ्रायड के सम्मुख प्रतीकवाद की समस्या उपस्थित हुई। फ्रायड ने यह अनुभव किया कि प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मे दमन की प्रक्रिया का प्रमुख स्थान है। इन आधारो पर कि अज्ञात मन दमित इच्छाओं का संग्रहालय है जो काम-प्रकृति विषयक है और 'लिबिडो' कामशक्ति मात्र है, फ्रायड का प्रतीक-सिद्धांत कामवासना तक ही सीमित रहा। युग ने 'सामूहिक अज्ञात मन' की धारणा की सहायता से प्रतीक के बारे मे नई व्याख्या दी। उन्होंने यह स्थापना की कि सामूहिक अज्ञात मन के विषय ही भाव-प्रतिमाएँ हैं। हर-एक व्यक्ति मे जातीय विशेषताओं के रूप मे कुछ सामान्य तथ्यों की स्वीकृति युंग की अद्वितीय सूझ है। जिस प्रकार वैयक्तिक भेद होते हुए मानव शरीर-

रचना मे कुछ विशेष समानताएँ रहती है, उमी प्रकार मानसिक गठन मे भी सामान्य मौलिक तत्व मिलते है। विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान की इस नयी धारणा ने प्रतीकवाद के मिद्धात को विशेष उन्नत किया और यह 'दमन-मिद्धात' तक ही सीमित नही रह मका। युंग ने 'मानमिक शक्ति प्रतीक' का उल्लेख किया है। 'प्रतीक' एक प्रकार की परोक्ष अभिव्यक्ति है और 'लिविडो' जीवन की एक सामान्य शक्ति है। इस प्रकार 'मानसिक शक्ति प्रतीक' का यह अर्थ हुआ कि यह अपने मौलिक स्रोत से स्थानान्तरित होकर अन्य दिशा मे प्रवाहित होनेवाली मानसिक शक्ति है। वस्तुत· प्रतीकीकरण अज्ञात मन की भाषा है। अभिव्यक्ति का यह एक स्वाभाविक ढग है। अज्ञात मन की समम्त विषय-वस्तुएँ प्रतीक के माध्यम से अभिव्यक्त होती है—चाहे वे वैयक्तिक अज्ञात मन के सघटन-तथ्यों की प्रदर्शन हो, या मामहिक अज्ञात मन को व्यक्त करती हो।

मानव का विकास, जैमा मनोविश्लेषण के प्रतिपादक अर्नेस्ट जान्म ने इगित किया है, मुख्य रूप से दो दिशाओ मे होता है "एक ओर विकाम की गति मानव की रुचि और अर्थग्रहण-शक्ति का आदिम, प्रारम्भिक और सरल से अपेक्षाकृत कठिन और जटिल की ओर उन्मुख या स्थानान्तरण होना—यह प्रक्रिया प्रारम्भिक, आदिम और मरल विचारो के प्रतीकीकरण की परम्परा द्वारा सम्पन्न होती है, दूसरी ओर विकास के साथ पुरातन प्रतीको का रहस्योद्घाटन होता चलना—यह कि पहले जिन्हे अभिधेयात्मक रूप से मरल माना जाता रहा वे सत्य के प्रतिरूप या कुछ पहलू मात्र है—केवल वही जिनके बारे मे हमारा मन भावात्मक या बोद्धिक कारणो से समर्थ रहा है।"[१]

मनोविश्लेषण के दृष्टिकोण से वे नियम जिनसे प्रतीकीकरण निर्दिष्ट होता है एक ओर तो सुख की खोज एव दुख निवारण की भावना से सचालित होते है और दूसरी ओर वास्तविकता से किस प्रकार मामजस्य लाया जा सकता है उससे सबन्धित होते है। सभी जीवित प्राणी विकास के किसी भी श्रेणी के हो, मदैव ही सुख की खोज मे रहते है और उस स्थिति से दूर रहते है जिससे दुख और वेदना का अनुभव हो। मानव बौद्धिक प्राणी है। तर्क-वितर्क, विवेक और सतुलन की योग्यता होने से वह मूल प्रवृत्ति से प्रेरित

---

१ ई० जोन्स :—पेपर्स ऑन साइकोएनिलिसस, पृष्ठ १५५

हो ऐन्द्रिक सुख की चाह नहीं करता। वह आन्तरिक व्यक्तित्व को बाह्य से समन्वित करने का प्रयास करता है। इस संघर्ष मे प्रतीक-निर्माण द्वारा भाव-इच्छाओं की अभिव्यक्ति करके अंतरंग और बहिरंग, अज्ञात और ज्ञात मन के मध्य एक संतुलन स्थापित होता है। दमनशील और दमित इन दो विरोध-मूलक प्रक्रियाओं मे निरतर द्वन्द्व चलता रहता है, जिसके परिणाम-स्वरूप अज्ञात मन के तथ्यों का प्रकटीकरण प्रतीकों के माध्यम से होता है। इस मानसिक प्रतियोगिता मे अहं अधिकतर विजयी होता है और इदं अथवा प्रकृत इच्छाएं पराजित। पराजित इच्छाओं की प्रकृति शान्त बैठने की नही होती; इनका लक्ष्य रोम के पौराणिक टिटन्स की भाति विस्फोटन करना होता है। इस कारण अभिव्यक्ति इस रूप मे होती है जिसमे अज्ञात मन के विषय-वस्तुओं का प्रदर्शन प्रतीक के रूप मे हो। प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की प्रणाली एक प्रकार की रक्षात्मक या पूरक क्रिया है जिससे जीवन के आदर्शो और आदिम इच्छाओं की सब प्रकार से तुष्टि होती है।

इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि प्रतीकों का निर्माण प्रकृत भाव-इच्छा का प्रतिफल है। आदिम वासियों मे प्रचलित टैबूओं द्वारा उनकी अनाचार कामेच्छा के प्रति भय का भाव प्रकट होता है। अर्थात् ये अज्ञात मन की दमित यौन वासना के प्रतीक है। प्रतीक की विषय-वस्तु अज्ञात मन की दमित इच्छाओं मे निहित है। प्रतीकीकरण मे विचार-पद्धति का प्रारंभिक अवस्था की ओर प्रत्यावर्त्तन भी हो जाता है। रैन्क और सैक्स ने लिखा है: "मनोवैज्ञानिक रूप से चितन करने पर ज्ञात होता है कि प्रतीक-निर्माण एक प्रत्यावर्त्तन प्रणाली मात्र है। यह चित्रात्मक विचार-पद्धति की एक अवस्था-विशेष की ओर ले जाता है जो पूर्ण सभ्य और सुसंस्कृत व्यक्तियों मे प्रायः उस अवस्था-विशेष मे अधिक स्पप्ट परिलक्षित होता है, जब उनका यथार्थ के साथ सचेत समायोजन या तो धर्म और कला के उद्वेगों तक ही सीमित हो जाता है या जब मनोविकृति और स्वप्न के रूप मे विशृंखल हो जाता है।"[१] अतएव कला, धर्म, स्वप्न और रोग आदि मन की आदिम या शैशवावस्था की ओर प्रत्यावर्त्तन है। इनमे केवल रूप का ही भेद है। प्रतीकीकरण की पृष्ठभूमि मे 'प्रत्यावर्त्तन' की कार्य-पद्धति क्रियमाण है, इसका अन्वेषण वर्त्तमान मे ही हुआ है और मानव-प्रकृति एवं उसके विभिन्न कार्य-

---

[१] ई० जोन्स :—पेपर्स ऑन साइकोएनिलिसिस, पृष्ठ १७६

कलापों के गंभीर अध्ययन पर आधारित है। स्वप्न और मानसिक दौर्बल्य की प्रक्रियाओं का प्रत्यावर्त्तनात्मक होना संभव है क्योंकि इनसे उन अवस्थाओं की ओर संकेत होता है जिनमे वातावरण से चेतन समायोजन नहीं रहता। जब इस सिद्धांत का उपयोग कला और धर्म की व्याख्या के लिए भी किया जाता है तभी समस्या उठती है। धर्म और कला किस प्रकार प्रारंभिक अवस्था की ओर मानव का प्रत्यावर्त्तन माना जा सकता है! सत्य यह है कि ये सामाजिक प्रगति के सूचक हैं। वास्तविक जीवन और जगत से सामंजस्य स्थापित करने के प्रयोजन से कला और धर्म की उत्पत्ति हुई। कला हरएक व्यक्ति मे उपस्थित रचनात्मक प्रक्रिया का परिणाम है और धर्म अज्ञात मन की एक विशुद्ध प्रक्रिया है।

सिलबरर के दृष्टिकोण से प्रतीक के विकास और उसकी उत्पत्ति का कारण आंतरिक संघर्ष नहीं होता; इसकी आधारभूमि 'भेदक बुद्धि अयोग्यता' है। यह नवीन और अतीत के विचारों का पृथक्करण न कर सकने की अयोग्यता है। मन अधिकतर दो वस्तुओं मे तादात्म्य स्थापित करता है, क्योंकि इसमे पृथक्ता पहचानने का अभाव रहता है। जिस प्रकार रूपक, उपमा पर निर्भर रहता है उसी प्रकार प्रतीकवाद प्रारम्भिक तादात्म्य पर निर्भर है। प्रतीकवाद की पृष्ठभूमि मे यह तादात्म्य वास्तविकता से समायोजन का माध्यम है। प्रतीक और जिस विचार-भाव का यह प्रतीक है, इनमे साम्य नही है। फिर भी मन पृथक्ता का अवलोकन नहीं कर पाता। संभव है कि मन केवल साम्य का ही अवलोकन करता हो। यह कार्य प्रौढ़ ज्ञात मन का नहीं है। प्राचीन प्रकृत मन तादात्म्य स्थापित करता है और तुलना करता है। अतएव प्रतीक का उद्गम वस्तुतः अप्रौढ़ मन है जो जीवन पर्यन्त पृष्ठभूमि मे सक्रिय रहता है।

सिलबरर का यह दृष्टिकोण कि प्रतीक का कारण आंतरिक संघर्ष नहीं होता और यह अप्रौढ़ मन की दो वस्तुओं की भिन्नता न पहिचान सकने की असमर्थता मात्र है—एक सरल विवरण है, जब कि प्रतीक की रचना मे जटिल यंत्र क्रियमाण रहते हैं। मनोविश्लेषण के समर्थक जोन्स ने सिलबरर के दृष्टिकोण का खण्डन किया है : "हम इस तथ्य से सहमत हैं। परन्तु जहाँ तक भाव-ग्रहण की अयोग्यता का संबन्ध है, यह मस्तिष्क का निष्क्रिय हो जाना है। यह अयोग्यता के कारण से नहीं, अन्य कारणों से घटित होता है।

यह सत्य है कि आदिम मन प्रायः विवेकशील नहीं होता। किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि उसमे इसकी शक्ति नहीं है क्योंकि कभी-कभी समय पड़ने पर यह आश्चर्यजनक विवेक-बुद्धि का परिचय देता है।" वस्तुतः प्रतीकों का संबंध अज्ञात मन से अत्यधिक है और इस प्रकार यह मानव व्यक्तित्व को समझने की कुंजी है। किसी भी परिस्थिति मे प्रतीकों की व्याख्या प्रकृत-आदिम मन की प्रतीक और प्रतीकेय की विभिन्नता न पहचान सकने की असमर्थता के प्रसङ्ग मे नही की जा सकती। जीवन के नाटक मे अधिकतर क्रियाएं, किसी भी रूप मे, अज्ञात मन की प्रतीक है। मानव की जटिल क्रियाओं की व्याख्या मे अज्ञात मन की प्रकृत कार्य-पद्धतियां की ओर ध्यान न देना हास्यास्पद है।

इसके अतिरिक्त, मानव मन न केवल प्रसारक है बल्कि यह परिशोधक भी है। यह सरलतापूर्वक अवांछनीय को वांछनीय मे परिणित कर देता है। समस्त पौराणिक कथाएँ, कला और धर्म, स्वप्न और मानसिक रोग अज्ञात मन की इच्छाओं के परिशोधन के प्रयास है। मानसिक रोग मे दमित इच्छाएँ विभिन्न लक्षणों मे परिणित हो जाती है। कला मे ये इच्छाएँ मोहक चित्रकला और गेय पदों मे परिणित होती है। युग द्वारा प्रतिपादित मनोविज्ञान मे मानवीय अनुभव 'मानसिक शक्ति' का परिशोधन है।

प्रतीकवाद के विकास का दूसरा उद्‌गम भाव-प्रतिमाएँ है, जो सामूहिक अज्ञात मन की निधि है। अनेक प्रतीकों की उत्पत्ति मानव मन के आदिम विचारों, तत्त्वों और प्रतिमाओं के अनुरूप होती है। भाव-प्रतिमाएँ आत्मिक आकृतियां है जो अपने मे बहुत ही महत्वपूर्ण है। इन शाश्वत भाव-चित्रों के प्रति व्यक्ति आत्मसमर्पण करता है और इसी उद्देश्य से इन प्रतीकों की रचना भी हुई है। इन भाव-चित्रों से मनुष्य प्रभावित होता है, उनके प्रति विमुग्ध और आकर्षित होता है। अतएव अनेक स्वप्न भाव-प्रतिमात्मक होते है। कला बहुत कुछ इस पर निर्भर है कि ये प्रतिमाएँ कहाँ तक विकसित और जीवित है।

जैसा कि जोन्स ने कहा है, मनोविश्लेषण के दृष्टिकोण से प्रतीक के आधार-विषय तीन प्रकार के हैं : अज्ञात भाव-ग्रंथियाँ, अवरोधक शक्तियाँ जो इन्हें दमित अवस्था मे रखती हैं, और अज्ञात ग्रंथियों द्वारा उद्‌भूत परिमार्जित एवं उदात्त वृत्तियाँ। अज्ञात भाव-ग्रंथियों का निर्माण उन अवांछनीय इच्छाओं

द्वारा होता है जो सामाजिक मर्यादा, परम्परा एवं सीमाओं के कारण संतुष्ट नही हो पातीं। दमन से ही प्रतीकों की विषम-वस्तुओं का निर्माण होता है। फ्रायड के शब्दों मे प्रतिबन्धक अवरोधक का काम करते है और इच्छाओं को वास्तविक रूप मे ज्ञात मन मे आने से रोकते है। किसी भी प्रतीक का स्वरूप व्यक्ति-विशेष की अपनी मानसिक शक्ति को मूल प्रवृत्ति की ओर से हटाकर उसे असामाजिक से वांछनीय दिशा की ओर अभिमुख करने की क्षमता पर निर्भर है। अतएव वास्तव मे किसी प्रतीक का अर्थ अज्ञात ग्रंन्थियों पर ही आधारित है। अज्ञात विषय-वस्तु को ज्ञातमन के पर्दे पर आने से रोकने वाली प्रतिबन्धक शक्ति का कुछ ही मात्रा मे प्रतीक-निर्माण पर प्रभाव पड़ता है और आंशिक रूप मे ही प्रतीक का विषय परिमार्जित वृत्तियो से प्राप्त होता है। कितु सिलबरर के मतानुसार प्रतीक का अर्थ प्रमुखतः प्रतिबधक शक्ति और परिमार्जित वृत्तियों के आधार पर ही लगाया जा सकता है। इसमे अज्ञात भाव-ग्रथियो का स्थान अत्यन्त गौण है। तद्नुसार प्रतीकात्मक प्रतिमा केवल परिमार्जित वृत्ति और प्रतिबंधक शक्ति का ही प्रतिनिधि मात्र है और इस प्रकार इसमे प्रतीक के गुण कम और उत्प्रेक्षा के अधिक है। इसे संकेतक या चिह्न की संज्ञा देना अधिक उपयुक्त हो सकता है।

सिलबरर के प्रतीक-निर्माण के संबंध मे दिये गये मूल्यांकनों की बहुत आलोचना हुई, क्योंकि वास्तव मे प्रतीक की विषय-वस्तु परिमार्जित वृत्तियाँ नहीं बल्कि अज्ञात भाव-ग्रंथियाँ ही हैं। जोन्स ने अज्ञात मन की भाव-ग्रंथियों का मूल्यांकन किया; किंतु मानस जीवन के नाटक की व्याख्या अधूरी ही छोड़ दी। पूर्ण और वैज्ञानिक विवरण देने के लिये हमे सामूहिक अज्ञात मन के आदिम भाव-चित्रों पर भी विचार करना होगा। एस० लोई का यह कथन उचित नहीं है: "मैं यह कहना चाहता हूँ कि प्रतीक-रचना इन गहरे स्तरों से संबंध नहीं रखती। यह सत्य है कि इस प्रकार के भावाभिव्यक्ति की प्रकृति अथवा योग्यता अर्ध चेतन मन से बाह्य चेतना मे विचार-क्षेत्र से नहीं विशुद्ध भाव-क्षेत्र से आती है जो स्पष्टता और सूक्ष्मता की ओर उन्मुख है, किसी भी अवस्था मे यह आन्तरिक इदम् द्वारा उद्भूत नहीं होती।"[१] इस

[१] एस० लोवी :—फाउन्डेशन ऑफ ड्रीम इन्टरप्रिटेशन, पृष्ठ २९

प्रकार के प्रतीकों से सहज मानसिक प्रकृति के केवल एक भाग का ही निर्माण होता है। प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का अर्थ एक प्रकार की सृष्टि और रूप-निर्माण को योग्यता है। किन्तु इससे प्रतीक का अर्थ स्पष्ट नही होता। यदि कोई प्रतीक के अर्थ की व्याख्या चाहता है तो उसे मानवीय चेतना के अन्तस्तल तक पैठना होगा।

मानवीय अभिव्यक्ति के संदर्भ मे अज्ञात मन की ग्रंथियों का महत्व पहचान लेने के पश्चात् फ्रायड का यह निष्कर्ष रहा कि प्रतीक किसी सूक्ष्म भाव की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि यह स्थूल इच्छाओं का वाहक है। यह स्थूल इच्छा काममूलक संबधी होती है। प्रारम्भ मे फ्रायड को केवल मानसिक दौर्बल्य के क्षेत्र में ही काम-प्रतिमाओं का बोध हुआ, किंतु जब उन्होंने अपने अन्वेषण की सीमा का विस्तार अन्य क्षेत्रों मे भी किया तब यह ज्ञात हुआ कि प्रतीक का प्रयोग जीवन के जटिल तथा सरल, परिष्कृत एव अपरिष्कृत, और साधारण तथा असाधारण सभी क्षेत्रों मे होता है। उन्होंने धर्म की व्याख्या भी इसी आधार पर की। देवनाओं की कई प्रतिमाओ मे फ्रायड को जनन शक्ति की झलक मिली। उन्होंने ईश्वर-प्रतीक को उत्पादन-प्रतीक माना। यह स्थापित किया कि बहुत-सी पौराणिक कथाओं द्वारा यौनेच्छा और अन्य प्रकार के काम-संबंधों का प्रतिनिधित्व होता है। विभिन्न प्रकार की कलाएँ जैसे चित्र, मूर्त्ति, शिल्प, काव्य आदि अज्ञात मन की दमित कामेच्छा की परिमार्जित रूप मे प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मात्र है। यह सत्य है कि काम-वासना का दमन कलात्मक रचनाओं के लिये प्रेरणा स्वरूप है और इसके लिये काव्य, चित्र और शिल्पकला मे अनेक दृष्टान्त भी है, फिर भी प्रतीकों को कामशक्ति या कामेच्छा, चाहे वह कितने ही उदात्त रूप मे क्यों न हो, तक ही सीमित कर देना पूर्ण रूप से समीचीन नहीं प्रतीत होता। मानसिक शक्ति को कामशक्ति तक ही सीमित नहीं किया जा सकता। यह एक प्रकार की सृजन-शक्ति है जिसे दार्शनिक बर्गसन ने 'जीवनशक्ति' (इलन वाइटल) और शोपेनहार ने 'संकल्पात्मक शक्ति' (विल) कहा है। किसी एक क्षेत्र मे प्रवाह की अधिकता या कमी व्यक्तित्व सापेक्ष है। जितनी दिशाओं मे मानसिक शक्ति का प्रवाह संभव है, उतने ही प्रकार के प्रतीक होते हैं। जिस प्रकार किसी व्यक्ति मे परवर्गी संसर्ग की इच्छा हो सकती है उसी प्रकार रचनात्मक इच्छा भी, क्योंकि वह अपनी कल्पना को एक स्थूल स्वरूप

प्रदान करता है। अतएव कला अज्ञात मन की दमित कामेच्छाओं मात्र का परिमार्जित प्रतीक नहीं है, बल्कि इससे मानवीय जीवन की अन्य वृत्तियों का भी प्रतीकीकरण होता है। मानव मन की गत्यात्मक प्रकृति का समर्थन मनोविश्लेषण के अनुयायियों की कृतियों मे भी प्राप्त होता है। पुटनम ने लिखा है: "प्रारम्भ मे मेरा उद्देश्य एकमात्र वैज्ञानिक उत्सुकता थी और प्रतीक मेरे लिए दमन द्वारा छिपाये गये काम-वृत्तियों के संकेत मात्र थे। किन्तु इस विचार को दृष्टि मे रखकर जब मैंने लिखना आरंभ किया तो अनुभव हुआ कि मैं एकांगी अभिव्यक्ति के मार्ग पर हूँ.........।"[१]

फ्रायड को काम-प्रतीक केवल कला मे ही नहीं, बल्कि दैनिक जीवन की मामान्य घटनाओं यथा लेखन की भूल, वार्त्तालाप की भूल एवं किसी कार्य-सपादन की विस्मृति मे भी क्रियमाण दृष्टिगत हुए। दैनिक जीवन की ऐसी सामान्य घटनाएँ सदैव दमित इच्छाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के रूप मे स्वीकृत नहीं की जा सकती। सामान्यत: ऐसी घटनाओं पर ध्यान नही दिया जाता। कभी तो हम उन्हें आकस्मिक मान बैठते है और कभी उनकी उपेक्षा की जाती है। किंतु फ्रायड की दृष्टि उनके पृष्ठभूमि मे गुथित भावों-संवेदनाओं की ओर गयी जिसके परिणाम-स्वरूप उनका 'साइकोपैथॉलजी ऑफ एवरी डे लाइफ' नामक निबंध का निर्माण हुआ और जिसमे ऐसे उदाहरणों की भरमार है। उनकी सामान्य निष्पत्ति यह थी कि मनुष्य की बहुत सी क्रियाएँ एव व्यवहार-शैलियाँ चाहे वे जटिल हों या सरल, प्रकृत हों या परिष्कृत, उसके अतीत जीवन की अतृप्त इच्छाओं की अभिव्यक्तियाँ हैं—ऐसी इच्छाएँ जो चेतन अथवा ज्ञात मन से बहिष्कृत कर दी गई हैं परन्तु पृष्ठभूमि से व्यवहार और आचरण को प्रभावित करती रहती हैं। फ्रायड के सिद्धान्त की आगे चलकर और भी पुष्टि हो गई जब कि अन्वेषण करने के पश्चात् फ्रायड को भौतिक क्षेत्र की ही तरह मानसिक क्षेत्र मे भी कार्य-कारण का संबंध उपस्थित मिला।

इस प्रकार फ्रायड के वाङ्मय मे प्रतीकवाद का वैज्ञानिक अध्ययन मानवीय प्रकृति से संबंधित सभी क्षेत्रों मे व्याप्त हो जाता है। एक जगह उन्होंने स्पष्ट किया है कि स्वप्न जो अत्यन्त महत्वपूर्ण मानसिक क्रिया है

---

[१] पुटनम :—एड्रेसेस ऑन साइकोएनिलिसस, पृष्ठ ४०८

किस प्रकार स्वप्नदृष्टा के आभ्यन्तर तनाव का द्योतक होता है; दूसरे स्थल पर यह प्रमाणित किया है कि मानसिक दौर्बल्य के लक्षण रोगी के अन्तर मे वर्त्तमान बहुत-सी ग्रथियों के सूचक है। वस्तुतः सम्पूर्ण मानवीय क्रियाएँ अज्ञात मन की इच्छाओं की छाया है। प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त इच्छाएँ सामाजिक रूप से निद्य होती है जिससे प्रतीकों के व्यवस्थित वर्णन और विवरण मे बहुत सी बाधाएँ और अवरोध उपस्थित हो जाते हैं।

एडलर, युंग, मीडर, सिलबरर तथा स्टेकल ने अपने अंग्रेज़ अनुयायियों एडर, लांग तथा निकल के साथ इस विषय को और भी स्पष्ट किया है। सी. जी. युग ने अपने 'सामूहिक अज्ञात मन' के परिचय तथा 'लिबिडो' का परम्परा से भिन्न अर्थ मे प्रयोग द्वारा फ्रायड की मनोवैज्ञानिक धारणाओं के विरुद्ध क्रान्ति उपस्थित कर दी। यह पहले ही कहा जा चुका है कि फ्रायड ने लिबिडो को कामशक्ति तक ही सीमित रखने का प्रयास किया तथा युग ने इसे 'सामान्य शक्ति' माना जिसे सामाजिक, धार्मिक, काम-संबंधी, और रचनात्मक क्षेत्रों मे सहज ही प्रवाहित किया जा सकता है। मनोविश्लेषण की विभिन्न धारणाओं और उनकी उपयोगिता के बारे मे जो निदा और संदेह का भाव प्रचलित था वह विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान द्वारा किये मौलिक धारणाओं मे संशोधनों के कारण धीरे-धीरे कम होने लगा।

जोन्स ने संकेत किया कि युग ने प्रतीक शब्द का प्रयोग मनोविश्लेषण सिद्धान्त के उलटे अर्थ मे किया है। मनोविश्लेषण के अनुसार मानसिक रोग के लक्षण कभी तो भाव-ग्रंथियों के परिणाम-स्वरूप और कभी उनके प्रतीक के रूप मे स्वीकृत किये गये है। युग ने भाव-ग्रंथियों को लक्षणों का प्रतीक माना है, अर्थात् अज्ञात मन के भाव ज्ञात मन के प्रतीक है। युग के सामूहिक अज्ञात मन की भाव-प्रतिमाओं पर आधारित जोन्स की यह आलोचना ठीक हो सकती है। ये प्रतिमाएँ मन को प्रभावित करने वाली आदिम भावनाओं के प्रतीक मात्र है। किंतु ज्ञात होता है कि जोन्स का ध्यान युंग द्वारा प्रतिपादित उन वैयक्तिक प्रतीकों की ओर न गया, जिनका अर्थ परिस्थिति या प्रसंग के अनुकूल ही लगाया जा सकता है। यह सत्य है कि युंग ने अपनी भाव-प्रतिमाओं पर विशेष बल दिया है; किन्तु उन्होंने प्रतीक शब्द का प्रयोग उलटे अर्थ मे नहीं किया है। एक कुशल वैज्ञानिक की

भाँति उन्होंने सार्वभौम और गत्यात्मक प्रकृति के प्रतीकों को भली-भाँति पहचाना है। युग की 'भाव-प्रतिमाएँ' प्रतीकवाद की बहुमूल्य देन है।

इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए युंग द्वारा प्रतिपादित अज्ञात मन की कुछ भाव-प्रतिमाओं का उल्लेख करना आवश्यक है। स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' और पौरुष सूचक 'एनिमम' भाव-प्रतिमाएँ पुरुष और स्त्री मे पायी जाती है। पुरुष और स्त्री अपने जीवन-साथी को क्रम से अपनी माता और पिता के अनुरूप ही चुनते है। इन प्रतिमाओं द्वारा मानव की मानसिक विशेषताएँ स्पष्ट होती है और इनके द्वारा ही किसी का व्यक्तित्व निर्धारित होता है। ये प्रतिमाएँ समस्त जाति और अवस्थाओं के मनुष्यों मे समान रूप से पाये जाने वाले अज्ञात और अव्यक्त तत्वो की परिचायक है। ये मनुष्य मात्र की जातीय सम्पत्ति के रूप मे मानव मन की सचित निधि एक पीढी से दूसरी और एक जाति से दूसरी तक बराबर सक्रमित होती रहती है। प्रतीकों अथवा भाव-प्रतिमाओ द्वारा निर्मित मन के इस भाग को 'सामूहिक अज्ञात मन' कहते है। प्रतीकों का सबध इन्ही से है। अज्ञात मन के प्रत्येक प्रतीक द्वारा मानव के मानसिक जीवन के सिद्धान्त और मनोवैज्ञानिक सत्यों का बोध होता है।

मानव मन मे संचित निधि-स्वरूप इन सार्वभौम एवं निश्चित प्रतीकों के अतिरिक्त युंग ने कुछ सापेक्षिक प्रतीकों का भी विवरण दिया है। ये व्यक्तित्व से निरपेक्ष नहीं होते और इनके मूल्य और महत्व का निर्धारण प्रत्येक व्यक्ति के प्रसंग मे पृथक होता है। मानवीय चेतना गत्यात्मक है। युंग के कथनानुसार 'मानसिक शक्ति' सदैव एक से दूसरे मार्ग की ओर प्रवाहित होती रहती है। जिस दिशा मे अधिक प्रवाह होता है, वह आचरण की निर्धारक है। इसी पर प्रतीक का अर्थ भी निर्भर है जिसका प्रयोग मानव सदैव अचेतन रूप मे अपने आभ्यन्तरिक जीवन के नाटक को व्यक्त करने मे करता है। युंग के मतानुसार युक्ताभ्यास की भाँति ही प्रतीकीकरण भी एक प्रकार से मानसिक यंत्र ही है। यह अपने को व्यक्त करने की अज्ञात मन की प्राकृतिक पद्धति है। सभी विकृतियों और दशाओं मे प्रत्येक वस्तु का अनुभव प्रतीक या प्रतिमा के ही रूप मे होता है। किन्तु फ्रायड का विचार है कि प्रतीकीकरण उन्हीं दशाओं मे सक्रिय रहता है जब अज्ञात

मन की इच्छाओं का दमन होता रहता है। ये इच्छाएँ जब परिशोधित हो जाती है तब प्रतीकात्मक काव्य और चित्रकला का उद्भव होता है। दमन की गंभीर दशा मे जब इनका परिशोधन नहीं हो पाता, ये स्वप्न और मानसिक रोगों के रूप मे प्रकट होती हैं। युग ने मानव मन की आदिम विशेषताओं पर अधिक वल दिया है जो विचारों के विभिन्न क्षेत्रों मे व्यक्त होती रहती है।

सिलवरर ने दो मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है: एक, यह कि प्रतीकवाद की उत्पत्ति मे किस प्रकार की दशाएँ सहायक होती है; दूसरे, भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रतीकों मे क्या भेद है। सिलबरर का कथन है कि प्रतीक मे कार्य-पद्धति संबंधी भेद नही होता: "प्रतीकवाद की विभिन्न कार्य पद्धतियों का तात्विक अंतर स्वयं प्रक्रिया मे नही है। वस्तुत: यह अतर उन तत्वों मे ही निहित रहता है जो अन्तर्दृष्टि की अक्षमता के कारण होते है।" प्रतीकीकरण की सरजना करने वाले तत्व सदर्थक या निदर्थक हो सकते है। निदर्थक तत्व वे है जो निर्णय करने मे बोधात्मक रूप मे विचारों को प्रविष्ट होने से रोकते है। मानव का स्वभाव है वृत्तियों का दमन करना जिसके कारण वह अप्रौढ़ रह जाता है और उसे सवेगात्मक अनुभूतियाँ होती है जो मन को निर्बल कर देती है। ये मुख्य तत्व है जो पुराने और नये विचारों के समन्वय मे बाधक होते है और इस प्रकार मनुष्य की निर्णायक शक्ति का ह्रास कर देते है। सदर्थक अवस्थाएँ किसी विचार-विशेष को ज्ञात मन तक लाती है।

सिलबरर की रुचि पूर्वानुकूल अवस्थाओं के अध्ययन तक ही सीमित रही। उन्होंने विषय-वस्तुओं के आधार पर प्रतीकों का वर्गीकरण न कर केवल उन अवस्थाओं के आधार पर किया है, जिनके कारण मस्तिष्क साहचर्यों की रचना मे सर्वथा असमर्थ हो जाता है। रोग और थकान के कारण मन भेद पहचानने के लिये अयोग्य हो जाता है। भेदकता (एप्परसेप्शन) एक प्रक्रिया है जिससे नये विचारों का पुराने विचारो के साथ सामंजस्य स्थापित होता है। यह अत्यंत आवश्यक प्रक्रिया है, क्योंकि जब तक नये और पुराने विचार समन्वित नहीं होते, किसी भी प्रकार का ज्ञान सम्भव नहीं है।

सिलबरर ने प्रतीक-प्रक्रिया को तीन भागों मे विभाजित किया है: कार्यात्मक, भौतिक और शारीरिक। कार्यात्मक प्रतीक कार्य-पद्धति को व्यक्त

करता है। उदाहरणार्थ, जब किसी व्यक्ति के मन मे कोई गुत्थी सुलझाने का विचार आता है, तब उसके चिन्तन मे तख्ता चौरस करने का बिब उभरता है। यहाँ मन की क्रिया एक प्रतीक रूप मे चित्रित हुई है। किंतु मानसिक क्रिया को चित्रात्मक रूप मे तभी उपस्थित किया जा सकता है जब हम वास्तव मे उन क्रियाओं का अन्तर्दर्शन कर लें। मानसिक क्रिया के रूप मे 'क्रोध' को ज्योंही हम चित्रित करने लगते है क्रोध का भाव तिरोहित हो जाता है और यदि किसी प्रकार मन मे कोई चित्र बनाया भी तो वह नितांत विकृत होता है। यह प्रयास तो वैसा ही है जैसे कोई दीप बुझाकर यह देखे कि अँधकार कैसा लगता है। फ्रायड और उनके समर्थक अर्नेस्ट जोन्स को सिलबरर का यह कार्यात्मक प्रतीक विलक्षण प्रतीत हुआ क्योंकि यह मन की दार्शनिक और अन्तर्निरीक्षणात्मक अवस्था की ओर संकेत करता है। साथ ही यह सदेह का विषय है कि मन जब वह अपनी ही क्रियाओं का अनुभव और विचार कर रहा हो उस अवस्था-विशेष के पश्चात् भी चित्र-रूप मे अभिव्यक्ति कर सकता है। भौतिक प्रतीकीकरण मे विचार-वस्तु प्रतीकेय बनती है। शारीरिक प्रतीकीकरण मे कायिक सवेदनाएँ प्रतीक रूप मे प्रकट होती है। दो अवस्थाओं की मध्य दशा को उपर्युक्त प्रतीक द्वारा व्यक्त होने पर सिलबरर ने उसे 'देहली प्रतीक' की सज्ञा दी। दमन-प्रक्रिया को मानसिक कार्य-प्रणाली की एक शैली मानकर सिलबरर ने अपने कार्यात्मक प्रतीकवाद के प्रत्यय का अधिक विस्तार कर लिया है। इस चित्रात्मक अभिव्यक्ति को 'क्रिप्टोजेनेटिक सिम्बालिज्म' का नाम दिया गया है। प्रतीक के इन भेदों का आधार मन के भीतर होने वाली क्रियाएं है --मन की कार्य-शैली नही। इस प्रकार प्रतीक संवेगात्मक दशा पर निर्भर है। कुछ प्रतीक बाह्य विचारो को व्यंजित करते है; और अन्य आन्तरिक क्रियाओं को। प्रतीक केवल उसी दशा मे प्रयुक्त नहीं होता जब कोई संवेगात्मक भाव अपने वास्तविक रूप मे ज्ञात मन तक नहीं आ पाता; वैज्ञानिक विचार भी प्रतीकात्मक रूप मे अभिव्यक्त किया जा सकता है। इस प्रकार सिलबरर ने प्रतीक शब्द का प्रयोग अत्यन्त विस्तृत अर्थ मे किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे 'प्रतीक' चेतन भावों-विचारों या क्रियाओं को नहीं व्यक्त करता; यह केवल अज्ञात मन के भावों, संवेदनाओं, अभिलाषा, कामना, प्रेरणा और कल्पना का वाहन मात्र है।

प्रतीकवाद के संबंध मे सिलबरर ने अज्ञात मन के प्रभाव की उपेक्षा की।

यदि उन्होंने इसका ध्यान रखा होता तो उनकी देन अत्यन्त मूल्यवान होती। यद्यपि सिलबरर ने बाद मे दमन-यंत्र को मानसिक कार्य-पद्धति की एक प्रणाली के रूप मे स्वीकार कर लिया, तथापि आरंभ मे वह अज्ञात मन की विषय-वस्तुओं और प्रक्रियाओं पर एकदम ध्यान नही दे सके। जोन्स ने सिलबरर की आलोचना की है : "समस्या के इस पक्ष की अवहेलना के कारण ही उन्होंने कहा कि प्रतीक की सार्वभौमिकता, सत्यता तथा बुद्धिग्राह्यता मे अन्तर उसपर पड़े हुए संवेदात्मक तत्त्वों के अनुसार होता है क्योंकि प्रतीक विशेष रूप से सार्वभौमिक होते है। अज्ञात मन से सापेक्षिक परिचय न होने के कारण उन्होंने आदिम मन की संवेगात्मक प्रकृति की उत्पादक सीमा का अवमूल्याकन किया। फिर भी यह सत्य है कि मौलिक रूप से उन्होंने इसे एक सीमा तक स्वीकार किया।"[१]

निर्णायक बुद्धिहीनता का सिद्धांत पारस्परिक सम्बन्ध की व्याख्या देने मे असमर्थ है। यदि प्रतीकवाद 'निर्णायक बुद्धिहीनता, का परिणाम है, जैसा सिलबरर का कथन है, तो यह क्योंकर परस्पर संबंध सूचक नही है ? वस्तुतः प्रतीक मे परस्पर संबंध का सिद्धांत कार्य नहीं करता। प्रतीक से किसी विषय-वस्तु का प्रतिनिधित्व होता है; उस वस्तु से प्रतीक का प्रतिनिधित्व नही होता। दृष्टांत के लिए स्वप्न के राजा-रानी द्वारा पिता-माता का प्रतिनिधित्व होता है; यह नही होता कि पिता-माता द्वारा राजा-रानी का प्रतिनिधित्व हो।

फ़िस्तर के अनुसार प्रतीक के दो रूप होते है : चेतन और अचेतन। चेतन प्रतीक द्वारा सामाजिक क्रियाओं की तरह एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से आदान-प्रदान होता है। अचेतन प्रतीक अबोध है क्योंकि उसकी उत्पत्ति गूढ़ भावों मे होती है जो प्रदर्शन के लिए प्रतिबन्धित है। ऐसी वृत्तियाँ रूपक का प्रयोग करती है जिससे ये संतुष्ट हो सकें।

संक्षेप मे प्रतीक का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने के लिये हमे उन सभी प्रतीकों का ध्यान रखना है जो मानव मन की स्वाभाविक उद्भावनाएँ है, और वे जो व्यक्तिगत अज्ञात मन से निर्धारित होते है। दूसरे मे परिवेश महत्वशील है।

---

[१] ई० जोन्स :—पेपर्स ऑन माइकोएनिलिसस, पृष्ठ १९१

प्रस्तुत ग्रन्थ मे 'स्वप्न और प्रतीकवाद' के परिच्छेद मे स्वप्न-सम्बन्धी उन विभिन्न दृष्टिकोणों का समन्वय किया गया है जिन पर अपने विचार आधारित हैं। वस्तुतः सभी स्वप्न मूल रूप मे प्रतीकात्मक होते है। किसी भी स्वप्न का अर्थ-प्रयोजन उसके व्यक्त स्वरूप पर निर्भर नही रहता। हरएक स्वप्न मे कुछ गूढ़ अर्थ छिपा रहता है जो इसका मुख्य तथ्य होता है। यहाँ फ्रायड से इस बात पर सहमत होना संभव नही है कि जो वस्तुएं और घटनाएं स्वप्न मे दृष्टिगत होती है वे सीमित है और एक विशेष वर्ग की है। वास्तव मे जिन इच्छाओं का दमन किया जाता है और जिनकी तुष्टि स्वप्न मे होती है, वे विविध प्रकार की होती है। फ्रायड ने मनुष्य की सब इच्छाओ को काम-वासना मे ही ढ़ाल दिया; किन्तु युग का सिद्धान्त अधिक युक्तिसगत है। मानव स्वभाव बहुमुखी होता है, उसकी इच्छाएँ अनेकमुखी होती है। स्वप्न के प्रतीक का महत्व धार्मिक, नैतिक, सामाजिक और शारीरिक होता है। एक ही प्रतीक का अर्थ दो स्वप्नदृष्टाओ के लिये भिन्न-भिन्न होता है और उस व्यक्ति-विशेष के स्वभाव और परिस्थिति पर निर्भर रहता है। प्रतीक का अर्थ निर्धारित करने मे वंश-परम्परा और वातावरण का भी महत्व है। सापेक्ष प्रतीको के अतिरिक्त ऐसे भी प्रतीक है जो स्वतः अपने आप अज्ञात मन की भाव-प्रतिमाओ के अनुरूप लक्षित होते है। इनकी अनुभूति तत्काल ही मानवीकृत रूप मे अनुभव की जाती है।

स्वप्न-प्रतीक का वर्गीकरण इस ग्रथ मे कायिक, मानसिक, धार्मिक और नैतिक रूपो मे किया गया है। फ्रायड ने कायिक, युग ने मानसिक एवं धार्मिक, और स्टेकल ने धार्मिक और नैतिक प्रतीको को प्रमुख माना है। नैतिक प्रतीक का अस्तित्व काम-प्रतीक से अलग सभव नही है। ये नैतिक मन (सुपर इगो) की प्रभुता मात्र के द्योतक हैं। स्वप्न-प्रतीकों की ही व्याख्या से मानवीय व्यक्तित्व का पूरा परिचय मिलता है।

'कला और प्रतीकवाद' के परिच्छेद मे यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि कला अज्ञात मन के व्यक्तिगत और जातीय तथ्यों का प्रतीकात्मक प्रदर्शन है। प्रतीकात्मक कला मे फ्रायड की दृष्टि से व्यक्तिगत भाव-इच्छा-कल्पनाओं की अभिव्यक्ति होती है क्योंकि मनोविश्लेषण मे अज्ञात मन का स्वरूप दमन-सिद्धांत पर आधारित है। युंग के दृष्टिकोण से वह कला प्रतीकात्मक है

जिसमे मानव की जातीय विशेषताओ की प्रतिच्छाया दृष्टिगत हो। जातीय विशेषताओ का सकेत सवेगात्मक और वृत्ति-संबंधी इच्छाओं की ओर है जो पूर्वजो से प्राप्त की गई हैं और सार्वभौम है। भाव-प्रतिमाएँ प्रारंभ से उपस्थित रहती है और कलाकार की व्यक्तिगत अनुभूतियो से पुष्ट होकर जीवन ग्रहण कर लेती है। कलाकार की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ उद्दीपन का काम करती है। दमित वेदनाभरे भाव से कला को स्थिर विषय मिलता है। वस्तुतः कला मे दोनो ही तथ्यो का समागम होता है। एक को स्वीकार करना और दूसरे को स्वीकार न करना भ्रामक है। फ्रायड ने कला के सबध मे व्यक्तिगत तथ्य पर बल दिया है; युग ने जातीय पर। कलात्मक रचनाओं मे दोनो तथ्यो का समन्वय है।

कला को काममूलक इच्छाओं और उनके परिमार्जन तक ही सीमित करना भ्रामक है। मानव मे अन्य प्रकार की अनेक तीव्र इच्छाएँ होती हैं और उनका प्रदर्शन कला मे होता है। पूर्व और पाश्चात्य के प्राचीन साहित्य मे प्रेम-गाथाएँ भरी हैं और चित्रकलाएँ स्त्री-लोच और सौन्दर्य की गरिमा के गान है, तब भी कुछ चित्रकलाएँ है जो अन्य प्रकार की इच्छाओं और तत्सबधी सवेगात्मक अनुभूतियो की प्रदर्शन है। पाश्चात्य चित्रकलाओं और शिल्पकलाओ मे शरीर के गठन और अगोपांग द्वारा आत्मप्रतिपादन वृत्ति की अभिव्यक्ति होती है 'मै पूर्ण व्यक्ति हूँ, मेरी ओर देखो'। पूर्वीय कला द्वारा अज्ञात मन की आध्यात्मिक प्रवृत्ति का दिग्दर्शन होता है। वह शक्ति जिसकी प्रेरणा द्वारा कला का निर्माण होना है, उसका काम (सेक्स) से सबधित होना आवश्यक नही है; यह सवेगो की सामान्य मानसिक शक्ति है। ये सवेग सस्कृत काव्य मे 'रस' नाम से प्रसिद्ध है। कला मे विभिन्न प्रकार के संवेगों-उद्वेगों का प्रदर्शन होता है। रचनात्मक वृत्ति की सहायता से उनकी अभिव्यक्ति कलात्मक रचनाओ मे होती है। अतएव कला मे सामान्य मानसिक अनुभूतियो की छाया मिलती है। इसी से सौन्दर्य व्यक्तिगत और कला सार्वभोम मानी गई है। कला आन्तरिक अनुभूतियों के सामान्य सत्यों का 'अनैच्छिक प्रतीकीकरण' है।

'मानसिक रोग और प्रतीकवाद' के परिच्छेद मे यह स्थापित हुआ है कि मानसिक रोगो के सभी लक्षणो का प्रतीकात्मक मूल्य होता है। यह बहुत कुछ

युंग की प्रतीक की धारणा के अनुरूप है—यह कि प्रतीक वह वस्तु है जिसके बारे मे कुछ नहीं जाना जाता; प्रसंग अज्ञात होता है। मानसिक रोग के प्रतीकों द्वारा अज्ञात मन की अतृप्त इच्छाओं और भाव-कल्पनाओं की अभिव्यक्ति होती है। सामान्यतः जीवन मे प्रकृत इच्छाओं पर सामाजिक वातावरण का प्रतिबंध रहता है। इच्छाओं को तुष्ट करने की सुविधा नही रहती। सामाजिक प्रतिबंध और सीमाएँ असमायोजन के मूल कारण हैं जिनसे मानसिक रोग होता है। मानसिक रोग के लक्षण भिन्न-भिन्न प्रकार की भाव-ग्रथियों के प्रतीक है। जो भाव-ग्रंथियाँ आभ्यन्तर मे निर्मित होती है वे कई प्रकार की होती है। इसी से मनोविज्ञान-क्षेत्र मे प्रचलित भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों का समन्वय इस ग्रंथ मे हुआ है। मानसिक रोगों मे विभिन्न प्रकारों के प्रतीकों का पृथक्-पृथक् अर्थ होता है। इसमे लक्षण और इच्छाओं मे प्रतीकात्मक संबंध होता है। जो प्रकट और व्यक्त है वह प्रतीकेय (प्रकट किये जाने वाला) से भिन्न है। विकृतावस्था की अभिव्यक्तियाँ मूल इच्छाओं और वेदनाओं के बाह्य आडंबर है।

प्रतीक के स्वरूप और प्रकृति के आधार पर मानसिक रोग के लक्षणों को तीन वर्गों में बाँटा गया है: पहला, वे प्रतीक जो शरीर-संबंधी है—वमन, नसों का अकड़न, लकवा, भय से कपन इत्यादि; दूसरे मे प्रतीक भाव-विचार के रूप मे होते हैं; और तीसरे मे प्रतीक मानसिक प्रतिमाओं के रूप मे होते है—जैसे भ्रमात्मक कल्पनाएँ और भ्रान्ति भरे चित्र। मानसिक रोग के लक्षणों का निदान आवश्यक है और इसका प्रयोजन है छिपे हुये भाव-वेदनाओं और इच्छाओं को सतह पर लाना। रोग के लक्षण दमन की हुई इच्छाओं के प्रतीक है, और नयी भाव-कल्पनाओ के भी जिनके बारे मे मस्तिष्क हर समय कल्पना किया करता है। कुछ मानसिक रोग के लक्षणो का विवरण सरल होता है; कुछ का कठिन। मनोविक्षेप के लक्षणों का विवरण जटिल होता है।

'धर्म और प्रतीकवाद' के परिच्छेद मे धार्मिक आस्था की मनोवैज्ञानिक रूप-रेखा के अध्ययन का प्रयास नवीन मनोविज्ञान के सिद्धान्तों पर किया गया है। संभवतः यह धर्म और विज्ञान के बीच संयोजक का काम करता है। इस प्रकार के धार्मिक सिद्धान्त कि आत्मा नित्य है, आत्मा का आवागमन होता है, मनोविज्ञान क्षेत्र मे सामूहिक अज्ञात मन की धारणा मे निहित है। धर्म की 'त्याग की धारणा' की व्यंजना फ्रायड की सुख और वास्तविकता

सिद्धान्तों मे हुई है, अथवा यह नैसर्गिक प्रेम के लिए सांसारिक प्रेम का त्याग है। इन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का अन्वेषण हुआ, यद्यपि इनका स्पष्टतः प्रयोग धार्मिक सिद्धान्तों का वैज्ञानिक स्तर पर विश्लेषण करने के लिये नही किया गया है।

दैव प्रतिमा जिसकी पूजा-आराधना की जाती है 'दैव भाव-प्रतिमा' का प्रतिरूप है। यह आभ्यन्तर मे उपस्थित है; परन्तु जब तक प्रकृत इच्छाओं के संघर्ष से यह उत्तेजित नहीं होती, इसकी बाह्य अभिव्यक्ति नहीं होती। काम-इच्छा अज्ञात आध्यात्मिक अनुभूति के लिए उत्तेजन-स्वरूप हो सकती है; और यह कामवृत्ति को निम्न स्तर से उच्च स्तर पर परिमार्जित करने मे संभव है। तब परवर्गी से मिलन की आकांक्षा ईश्वर-मिलन की इच्छा मे परिणित हो जाती है। धर्म अज्ञात मन की कार्य-पद्धति है। धर्म और कामशक्ति मे आत्मीयकरण करना अथवा यह विवरण देना कि धर्म केवल कामवृत्ति का परिमार्जित रूप है, भूल है। ईश्वर पिता का स्थानापन्न नही; यह अज्ञात मन की 'दैव भाव-प्रतिमा' का प्रतिरूप है। हरेक व्यक्ति मे अज्ञात आध्यात्मिक तृष्णा होती है जिसके विकास होने पर व्यक्ति धार्मिक बनता है।

प्रश्न है : 'दैव भाव-प्रतिमा' से क्या तात्पर्य है ? युग ने इसका समाधान नही किया है। यह मानसिक प्रतिमा आध्यात्मिक अनुभूति की प्रतिकृति है जो हरेक काल मे हरेक व्यक्ति मे मिलती है। ईश्वर पर आश्रित रहना पिता पर आश्रित रहने की व्यवस्था को कायम बनाये रखना है। धर्म के संबंध मे फ्रायड का 'मातृ-पितृ-ग्रंथि सिद्धांत' और 'द्विभाव सिद्धांत' विश्लेषण के लिये अनुपयुक्त है।

पौराणिक कथानक भी कैसी काल्पनिक क्यो न हों, इनके द्वारा मानव के स्वभाव का प्रदर्शन होता है—अज्ञात मन की उन इच्छाओं और आवश्यकताओं का जिनके बारे मे कुछ ज्ञान नही। पौराणिक कथाओं का संबंध मानसिक अवस्थाओं से है और इनके द्वारा अज्ञात मन की भाव-प्रतिमाओं का प्रतिनिधित्व होता है। इडीपस और एलेक्ट्रा, सूर्य-कथा, दुष्यंत और शकुन्तला, विश्वामित्र और मेनका की कथाएँ इनके अच्छे दृष्टांत है। कुछ पौराणिक कथाएँ मानव के व्यक्तिगत अज्ञात मन के नाटक हैं। विभिन्न गाथाओं द्वारा

मानव की वृत्तियों और इच्छाओं का प्रतिनिधित्व होता है। प्रश्न है : आभ्यन्तर का बाह्यीकरण करने की आवश्यकता क्यों हुई। कारण है कि अज्ञात मन मे अभिव्यक्ति के लिये विद्रोह होता है। इसी से एक या दूसरे रूप मे हरेक काल और हरेक व्यक्ति में अभिव्यक्ति के लिये अज्ञात मन की निधियाँ व्यवस्था करती हैं।

इस ग्रंथ के अंतिम परिच्छेद मे भाषा की संवेगात्मक पृष्ठभूमि के अध्ययन का प्रयास हुआ है और यह भी कि व्युत्पत्ति की दृष्टि से काव्य की भाषा अज्ञात मन का प्रतीकात्मक प्रदर्शन है। दैनिक क्रियाएँ स्वभाव में सरल हैं; तब भी प्रतीकात्मक मूल्य-महत्व से वंचित नहीं होतीं। इनमे जीवन की भाव-ग्रंथियों का निर्देशन होता है।

सारांश यह कि मनुष्य की असीमित विचार-शक्ति एवं अनुभूतियों की विविधता के कारण मन सभी क्रियाओं अथवा प्रतिक्रियाओं की कल्पना प्रतीक के रूप मे करता है। प्रतीकों का अध्ययन हमे अज्ञात मन के क्षेत्र मे ले जाता है और इसका प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि मनुष्य के विचार तथा उसकी क्रियाएँ अचेतन (अज्ञात) की अभिव्यक्ति मात्र है।

स्वप्न और प्रतीकवाद

आधुनिक मनोविज्ञान मे स्वप्न के अध्ययन को महत्व दिया गया है। सदियों से इसमे मानव की विशेष रुचि रही और स्वप्न की जो व्याख्या करे उसका सम्मान होता रहा है। प्राचीन और मध्यकालीन युग मे स्वप्न की अनुभूतियों पर विचार करना गुह्यविद्या का विषय माना जाता था और यह विश्वास प्रचलित था कि स्वप्न का वास्तविक कारण दैवी शक्ति अथवा प्रेरणा है; निद्रावस्था मे शरीर से विलग होकर इधर-उधर रमते आत्मा की अनुभूतियाँ ही स्वप्न है। परन्तु आधुनिक मनोविज्ञान मे इसका कोई महत्त्व नही रहा कि स्वप्न का दैवी मूल्य है और यह भविष्य-सूचक है। एक मानस-शास्त्री को यह कदापि मान्य नहीं हो सकता कि मानवीय सत्ता से पृथक् कोई दैवी शक्ति भी है जो स्वप्न का कारण है, या यह कि स्वप्न भविष्य-सूचक है। यही नही, कायिक सिद्धात का भी स्वप्न-विश्लेषण के संबंध मे महत्व अब नही रहा— यह कि स्वप्न शारीरिक क्रिया है या यह शरीर-सबधी उत्तेजन-प्रतिक्रिया है। कायिक सिद्धांतवादियों का कथन है कि सुप्तावस्था मे शरीर पर जिन उत्तेजनाओं का प्रभाव पड़ता है उनसे लघु मस्तिष्क के विभिन्न अणु अश्रंखलित रूप से उत्तेजित हो जाते है और स्वप्न इन्हीं उत्तेजनाओं का मानसिक चित्र है। इसके समर्थन मे स्ट्रम्पल ने लिखा है: "स्वप्न या तो विशुद्ध प्रतिनिधित्व नियम के अनुसार होना है, अथवा शारीरिक उत्तेजनों के नियमों के अनुसार जो ऐसे प्रतिनिधित्व के सहयोगी होते है। यह विचार, तर्क, सौन्दर्यात्मक अथवा नैतिक निर्णयों से पूर्णतः अप्रभावित रहता है।"[१] किंतु यह सिद्धांत असंगत प्रतीत होता है कि स्वप्न मे केवल शरीर से संबंधित उत्तेजनाओं अथवा बाह्य घटनाओं का चित्रण होता है। आधुनिक

[१] फ्रायड :—इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स

मनोवैज्ञानिकों को यह भी मान्य नही है कि स्वप्न का कोई संबंध बाह्य उत्तेजनों से होता भी है (शूबर्ट) तथा यह दार्शनिक दृष्टिकोण कि 'स्वप्न तो उच्च आदर्श जीवन की ओर मानसिक जीवन की उड़ान हैं' (फिट्शे)। वस्तुतः शारीरिक और दार्शनिक व्याख्याएँ वैज्ञानिक दृष्टि से नहीं मानी जा सकतीं।

भैषज्य मनोविज्ञान मे स्वप्न के बारे मे एक नया दृष्टिकोण प्रसूत हुआ और स्वप्न-विवरण के संबंध मे एक नयी वैज्ञानिक युक्ति अन्वेषित हुई। उसमे यह स्थापित किया गया है कि स्वप्न अज्ञात मन की अभिव्यक्ति का ऐसा माध्यम है जिससे अज्ञात मन की भाव-ग्रंथियों का अनुमान लगता है और वस्तुतः स्वप्न का मानसिक महत्व होता है। मनोविज्ञान के विकास के वर्तमान युग मे यह सार्वभौम रूप मे स्वीकार हुआ है कि "स्वप्न एक निश्चित मानसिक प्रक्रिया है, जिसका निज का मनोवैज्ञानिक इतिहास है और जिसका माप अन्य मानसिक प्रक्रियाओं की भांति सही-सही संभव भी है।"[१] इस प्रकार स्वप्न निष्क्रिय, काल्पनिक, तत्वहीन असंगत तथ्यों का असबद्ध जमघट नही है; बाह्य रूप मे यह जैसा भी अप्रासंगिक, विलक्षण लगे, यह ऐसी महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति है जिनका निश्चित अर्थ होता है और जिनका जीवन से संबंध होता है और जिनका प्रभाव पड़ता रहता है। इसमे स्वप्न-दृष्टा की आंतरिक ग्रंथियों-संघर्षो का प्रतिबिब मिलता है। फ्रायड के दृष्टि-कोण से स्वप्न अज्ञात मन मे प्रवेश करने का मार्ग है। स्टेकल के दृष्टिकोण से यह 'सूचक स्तंभ' जीवन की ओर इंगित करता है। हैवलॉक एलिस का विवरण है : "स्वप्न संवेग एवं अपूर्ण-अविकसित विचारो का विशाल-विस्तृत जगत् है जिसके अध्ययन से हमे मानसिक जीवन के आदिम विकास के स्तरों का अनुमान होता है।"[२] रिवर्स का कथन है : "स्वप्न अनेक इच्छाओं के परस्पर संघर्ष की अभिव्यक्ति अथवा ऐसी क्रियात्मक वृत्तियों का संघर्ष है जिनमे कुछ इच्छाओं के रूप मे और शेष प्रकृति मे भय के रूप मे है।"[3] अर्थात्, स्वप्न के माध्यम से जागृतावस्था के मानसिक द्वंद्वों को सुलझाने का सुझाव मिलता है। एडलर ने लिखा है : "इस संबंध मे निश्चयात्मक रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि स्वप्न किसी व्यक्ति-विशेष की जीवनशैली एवं उसकी

---

[१] फ्रायड:—इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स

[२] हैवलॉक एलिस:—दि वर्ल्ड ऑफ ड्रीम्स

[3] रिवर्स:—कॉन्फ्लिट एंड ड्रीम, पृष्ठ १७

वर्त्तमान समस्याओं के मध्य किसी अन्य जीवनशैली की माँगों के बिना ही सेतु-निर्माण का कार्य करता है।"[1] अर्थात्, स्वप्न द्वारा बाल्यावस्था मे निर्मित जीवनशैली तथा वर्त्तमान समस्याओं के बीच संतुलन स्थापित होता है। अतएव स्ट्रम्पेल, वुंट इत्यादि शरीर शास्त्रियों की स्वप्न की मानसिक महत्ता की ओर भले ही उदासीनता अथवा कटुता का भाव रहा हो, वस्तुतः स्वप्न महत्वपूर्ण मानसिक प्रक्रिया है। स्वप्न सदैव अर्थयुक्त होता है; इसका अर्थ गूढ़ और छुपा रहता है।

अधिकतर स्वप्न प्रतीकात्मक होते हैं। स्वप्न के स्वरूप का समर्थन फ्रायड, युग, स्टेकल तथा औटोरैंक की रचनाओं मे पर्याप्त मिलता है। मन की प्रतीकात्मक प्रक्रिया से अवगत होने पर यह सहज ही प्रमाणित हो जाता है कि कोई भी स्वप्न हास्यास्पद या असंगत नही है। स्वप्न मे अज्ञात मन की इच्छाओं का परिवर्त्तित रूप मे प्रदर्शन होना प्रतीक के अध्ययन का कारण बना। स्वप्न के प्रतीकात्मक स्वरूप का अन्वेषण 'साहचर्य-विधि' द्वारा हुआ और अनुभव और प्रयोगात्मक प्रमाणों मे इसकी पुष्टि हुई। इस प्रकार यह स्पष्ट हुआ कि जिन विचारों और कथा-वस्तुओं की आवृत्ति स्वप्न के भाव-कल्पनाओं मे होती है वे सदैव किसी न किसी अज्ञात मन की गूढ़ इच्छाओं से सम्बद्ध रहती है और इनका बार-बार उन्मेष प्रनिबंधित इच्छाओं की अभिव्यक्ति के लिये ही होता है। मनोविश्लेषण मे स्वप्न की कथाएँ आदिम इच्छाओं की प्रतीक मानी गयी हैं जो प्रकृति से काम-संबंधी होती है। सामाजिक दृष्टि से वर्जित, अवांछनीय होने के कारण इनकी अभिव्यक्ति या तुष्टि पर ज्ञात मन का प्रतिबंध रहता है। नैतिक प्रतिबंधक जो द्वारपाल के रूप मे है अज्ञात इच्छाओं को चेतन स्तर पर प्रवेश होने से रोकता है। फ्रायड ने इस मानसिक व्यवस्था को एक रूपक द्वारा स्पष्ट किया है। यह प्रतिबधक सीमाप्रात मे रूसी समाचार प्रतिबंधक की तरह कार्य संपादन करता है जो अपने पाठकों के हाथ केवल ऐसे पत्र ही लगने देता है जो पूर्ण परीक्षण के पश्चात् निरापद सिद्ध हुये हों। यही कारण है कि अज्ञात मन की भावनाओं और संवेदनाओं को छद्मवेष मे प्रवेश करना पड़ता है और इस प्रकार स्वप्न मे काल्पनिक दृश्य मिलते हैं जिनका कोई प्रत्यक्ष अर्थ नहीं होता; अर्थ परोक्ष होता है। स्वप्न की विषय-वस्तुओं का अर्थ वैज्ञानिक व्याख्या का प्रयास किये

---

[1] एडलरः—ह्वाट लाइफ शुड मीन टु यू

जाने पर ही स्पष्ट होता है। मनोविश्लेषण की दृष्टि से इसका महत्व नहीं है कि मानव स्वप्न मे क्या देखता है; स्वप्न के पृष्ठभूमि मे छिपे भाव-तथ्यों का महत्व होता है और इनकी खोज की जाती है। स्वप्न-प्रतीकों की व्याख्या सदैव व्यक्ति की छद्म इच्छाओं के प्रसंग मे ही होनी चाहिये।

विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान मे भी इस बात का अनुमोदन किया गया है कि स्वप्न प्रतीकात्मक होते हैं। इस मत के प्रतिपादक युंग के सिद्धांत के अनुसार स्वप्न-प्रतिमाएँ प्रतीकात्मक है; वास्तविक नहीं। अधिकतर स्वप्न-तथ्यों का दिग्दर्शन प्रतीक रूप मे होता है। यह दार्शनिक सत्य है और मनोवैज्ञानिक भी। जर्मनी के प्रसिद्ध दार्शनिक इमैनुयल कान्ट का कथन है कि अनुभूति का विषय कभी वास्तविक या तात्त्विक नहीं होता। यह सदैव प्रतिभासित होता है। विशेषकर विश्लेषकों ने इस बात की पुष्टि की है कि मानव जाति की आदिम प्रकृत इच्छाएँ कभी अपने भौतिक रूप मे अभिव्यक्त नहीं हो पाती क्योंकि उनकी स्वतंत्र व्यंजना पर सामाजिक मान्यताओं का प्रतिबंध रहता है। इसी से प्रतिबंधित प्रकृत इच्छाओं की अभिव्यक्ति स्वप्न मे छद्मरूप मे होती है। छद्मवेश के होने से सब प्रकार का सामन्जस्य-समझौता बना रहता है और निद्रा मे किसी प्रकार का विघ्न नहीं पड़ता। स्वप्न के प्रसग मे युंग ने यह भी अनुसंधान किया है कि निष्कासित इच्छाओं के अतिरिक्त अज्ञातमन की भाव-प्रतिमाओं का भी मानवीकरण होता है। स्वप्न मे सदैव अतीत, वत्तर्मान और भविष्य की ओर प्रतीकात्मक निर्देशन रहता है।

स्वप्न की प्रतीकात्मक प्रकृति के बारे की खोज सामान्यत: आधुनिक मनोविज्ञान की देन समझी जाती है। किंतु मानव को शताब्दियों से इस तथ्य का ज्ञान रहा। मिश्रदेश के निवासियों की स्वप्न-व्याख्या तो जगत् प्रसिद्ध है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने इस समस्या पर एक नये दृष्टिकोण से विचार कर वैज्ञानिक व्याख्या मात्र दी है। परन्तु इसके फलस्वरूप स्वप्न की धारणा मे क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हो गया। प्रचलित और वर्त्तमान सिद्धांत यह है कि स्वप्न की उद्भूति मन के उस भाग से होती है जिसके विषय मे मनुष्य अनभिज्ञ है। वह कुछ जानता-समझता नहीं है। स्वप्न-तथ्यों का स्वत: कोई महत्व नहीं होता। महत्व की बात यह है कि इनके द्वारा अज्ञात रहस्यों की अभिव्यक्ति होती है और जिनका ज्ञान स्वप्नद्रष्टा को स्वत: नहीं होता।

फ्रायड और युंग ने सम्यक् रूप से स्वप्न की प्रतीकात्मक प्रकृति पर बहुत बल दिया है। अंतर यह रहा कि फ्रायड ने स्वप्न को अतृप्त इच्छा की अभिव्यक्ति बतलाया है जिसका कार्य नैतिक निषेध को धोखा देना और निद्रा मे विघ्न न उठने देना है और युग ने इसका आध्यात्मिक महत्व बताते हुए इसे वर्त्तमान का भी नाटक माना है। स्वप्न मे प्रतीक का प्रयोग होने का कारण यह है कि अज्ञात मन प्रकृत है और इसकी भाषा भाव-प्रतिमा की भाषा है। फ्रायड के अनुसार स्वप्न उन्हीं इच्छाओं से संबंधित होता है जिन इच्छाओं का अतीत मे दमन हुआ है। अर्थात्, स्वप्न मे उन्हीं इच्छाओं की तुष्टि होती है जिनकी स्वीकृति सामाजिक परम्परा तथा आभ्यन्तरिक सीमाओं के कारण नहीं की गई है। युग के विचार से स्वप्न अधिकतर वर्त्तमान के प्रसंग मे रहता है। इसमे जातीय विशेषताओं का निरूपण होता है और यह मानव स्वभाव-सा है। अर्थात्, "स्वप्न मे सत्य, दर्शन, भ्रम, आधारहीन भाव-कल्पना, स्मृति, योजना, असंबद्ध अनुभव, दृश्य तथा अन्य अनेक तथ्यों का निरूपण होता है।"[१] युंग ने स्वप्न के विषय को इतना व्यापक और समृद्ध इसलिये माना कि जिस अज्ञात मन की अभिव्यक्ति स्वप्न मे होती है वह बहुत समृद्ध है। युंग के अनुसार अज्ञात मन मे उन सभी तथ्यों का समागम है जिन्हें मानव ने पूर्वजों से पैतृक सम्पत्ति के रूप मे प्राप्त किया है। फ्रायड ने मन के उस निचले स्तर की ओर ध्यान ही नहीं दिया जिसे युग के शब्दों मे 'सामूहिक अज्ञात मन' कहते हैं और जिसकी अभिव्यक्ति स्वप्न मे विशेषतः होती है।

स्वप्न-प्रतीक के संबंध मे दो समस्याएँ प्रमुखतः उठती है : एक, यह कि स्वप्न-सामग्री, कथा-वस्तुएँ छद्मरूप क्यों धारण करती हैं, मानव अपनी इच्छाओं-भावनाओं का अवलोकन स्वप्न मे प्राकृतिक रूप मे क्यों नहीं करता, अथवा अज्ञात मन अपनी अभिव्यक्ति के लिये प्रतीकात्मक शैली ही क्यों अपनाता है। दूसरे, यह कि स्वप्न किस प्रकार प्रतीकात्मक बन जाता है। मनुष्य मे भावों और इच्छाओं को विकृत और विचित्र रूप किस प्रक्रिया से प्राप्त होता है। इस संबंध मे मनोविश्लेषण शास्त्र से उन इच्छाओं का उल्लेख किया है जो ज्ञात मन से वर्जित और अवांछनीय समझी जाती है। इन इच्छाओं का यह स्वभाव है कि वे प्रकट होने के लिये निचले स्तर से सदैव प्रयास करती रहती

[१] युंग:—मार्डन मैन इन सर्च ऑफ ए सोल, पृष्ठ १३

हैं। फलस्वरूप निगृहीत इच्छाएँ विकृत होकर परिवर्तित रूप मे प्रकट होती हैं। इस परिवर्तन का उद्देश्य अनैतिक इच्छाओं के विशेष गुण को रूपान्तरित करके उन्हें ग्राह्य बनाना है। यह व्यवस्था न होने पर अनेक अवांछनीय इच्छाएँ अज्ञात मन मे संगृहीत हुई पड़ी रहतीं और अज्ञात मन उनके बोझ से सदैव दबा रहता। स्वप्न-प्रतीक द्वारा अज्ञात और ज्ञात मन के मध्य एक प्रकार का सामञ्जस्य स्थापित होता है। स्वप्न और अज्ञात मन मे परस्पर प्रतीकात्मक संबंध होता है, अथवा स्वप्न-सामग्री, कथा-वस्तुएँ अज्ञात मन के मूल तथ्यों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। स्वप्न मे प्रत्यावर्तन होता है और इस प्रकार प्राचीन आदिम प्रकृत इच्छाएँ भी व्यक्त होती रहती है। प्रतीक रूप मे प्रकट होने का कारण प्रत्यावर्तन भी है। मानसिक क्षेत्र मे निरंतर उपस्थित रहने वाली आदिम भाव-प्रतिमाएँ भी स्वप्न मे प्रतिबिंबित होती हैं।

स्वप्न मे प्रतीकीकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने के लिये फ्रायड के 'स्वप्न-क्रिया' संबंधी समस्त नियम-सिद्धातों का उल्लेख करना आवश्यक है। स्वप्न-क्रिया की धारणा का इस प्रसंग मे बहुत महत्व हैं। फ्रायड की स्वप्न-क्रिया मे उन सभी प्रक्रियाओं का विवेचन किया गया है जिनके कारण मूल तथ्यों को नितांत परिवर्तित रूप मिलता है। स्वप्न मे उत्तेजन की पुनरावृत्ति रूपान्तरित करके होती है।

युंग के 'साइकॉलजी ऑफ अन्कॉन्शस' नामक ग्रंथ मे स्वप्न के प्रतीकात्मक होने का स्पष्ट विवेचन किया गया है। स्वप्न प्रतीकात्मक क्यों होता है इस क्यों मे 'क्या' और 'कैसे' समाविष्ट हैं। स्वप्न के प्रतीकात्मक होने का कारण यह है कि वे समझे न जा सकें और स्वप्न की मूल इच्छाएँ पहचानी न जा सकें, अज्ञात रहें। व्यक्ति मे प्रतीकात्मक अभिव्यंजना की शक्ति सामूहिक अज्ञात मन मे प्रस्तुत आदिम भाव-प्रतिमाओं द्वारा प्राप्त होती है। मनुष्य जब भी स्वप्न-लोक या भाव-कल्पना मे विभोर होता है, वह प्रतीक का उपयोग करता है।

जैने के अनुसार मानसिक विच्छेद के कारण स्वप्नावस्था मे प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होती है। एडलर ने स्वप्न को आत्मप्रतिपादन वृत्ति की संतुष्टि माना है। स्वप्न, व्यक्ति के शैशवावस्था मे निर्मित जीवनशैली[१] के अनुरूप

---

[१] पद्मा अग्रवाल:—मनोविश्लेषण और मानसिक क्रियाएँ, पृष्ठ २११

होते हैं। इसी प्रकार अन्य वैज्ञानिकों ने भी स्वप्न-प्रतीकीकरण के उद्देश्य, मूल तथ्यों, साधन और क्रिया-व्यापारों के संबंध मे संतोषप्रद सिद्धांत स्थिर करने का प्रयास किया, किंतु उनके निष्कर्ष सार्वभौम न बन सके।

फ्रायड के निबंध 'ड्रीम सिम्बालिज़म' मे प्रतीक की मुख्य चार विशेषताएँ स्पष्ट की गयी है। पहली, यह कि स्वप्नद्रष्टा स्वप्न मे अभिव्यक्ति के लिये प्रतीक-शैली का उपयोग करता है। निद्रावस्था मे ही नहीं, जागृतावस्था मे भी व्यक्ति इन प्रतीकों से अनभिज्ञ रहता है। निद्रावस्था मे मन निष्क्रिय रहता है—यह मान लेने पर यह कहना हास्यास्पद प्रतीत होता है कि स्वप्न मे प्रतीकीकरण द्वारा अभिव्यक्ति होती है। किंतु यह भूल है। यह विचार भ्रामक है कि निद्रावस्था मे सम्पूर्ण मन निष्क्रिय हो जाता है। निद्रावस्था मे ज्ञात मन की क्रियाएँ निश्चल हो जाती है, किंतु अज्ञात मन सदैव कार्यरत, सक्रिय रहता है। अज्ञात मन तो स्वभावत: सक्रिय है। निद्रावस्था मे तो यह अधिकांश क्रियाशील हो जाता है। परिणामस्वरूप अज्ञात मन की प्रताड़ित, कुंठित कामना-कल्पनाएँ मनमानी क्रिया-प्रतिक्रियाएं करने लगती है और एक दूसरे मे विस्थापित-परिवर्त्तित होती रहती है। अवांछनीय से वांछनीय और कामजन्य इच्छाओं को कामशून्य बनाने के लिये अज्ञात मन स्थानान्तरण, रूपान्तरण, संक्षिप्तीकरण एव विस्थापन की प्रक्रियाओं का प्रयोग सतत रूप से करता रहता है। इस प्रकार इच्छाओ का ऐसा स्थानापन्न होता है और ऐसा रूप मिलता है जो ज्ञात मन को मान्य हो।

दूसरी विशेषता यह है कि प्रतीक का प्रयोग स्वप्न तक ही सीमित नही होता। यह कला और काव्य, पौराणिक आख्यान और परियों की कथा, भाषा और गीत, व्यंग और विनोद और सामान्य आदान-प्रदान मे भी दृष्टिगत होता है। स्वप्न-प्रतीक तो मानव के सम्पूर्ण भाव-विचार क्षेत्र का एक अंश मात्र है। प्रतीक का विस्तार वृहत है; यह सार्वभौम है। यदि किसी चित्र या काव्य का सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो उससे या तो कलाकार के व्यक्तिगत जीवन का प्रतिबिंब मिलता है या सामान्य भावात्मक अनुभूति का। कलाकार की कृत्तियां उसके व्यक्तिगत अथवा जातीय अज्ञात भावनाओं और इच्छाओं का प्रदर्शन करती है। फ्रायड के पश्चात् युंग ने भी स्वप्न-प्रतीक एवं पौराणिक प्रतीक के बीच एक साधर्म्म की स्थापना की। तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि परियों की कथाओं तथा पौराणिक आख्यानों मे एक ही प्रक्रिया

कार्यशील रहती है। पौराणिक तथा स्वप्न-लोक की कल्पना मे इतना निकटवर्त्ती संबंध है कि अब्राहम ने तो 'स्वप्न को व्यक्ति-विशेष का पुराण-गाथा' कहा है। वस्तुतः स्वप्न एक प्रकार से पौराणिक आख्यानों का पुनर्जीवन है। जिसमे पौराणिक प्रतीकों को समझने की क्षमता है, वह स्वप्न-प्रतीकों का सहज ही अर्थ लगा लेता है। युग के 'साइकॉलजी ऑफ अनकॉन्शस' नामक ग्रंथ मे इसके अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। फ्रायड ने लिखा है : "प्रतीक के अध्ययन मे हमे अभिव्यक्ति की अत्यंत प्राचीन एवं अप्रचलित शैली से परिचय मिलता है जिसके कुछ अश विभिन्न क्षेत्रों मे विखरे अवशेष रहे है। यह एक प्रकार की प्राचीन किंतु अप्रचलित आदिम भाषा है। यह मानव जाति की अत्यंत आदिम एवं मौलिक कल्पनाओं की अभिव्यक्ति है।"[1] इस प्रकार प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के सबध मे सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसके द्वारा मानव जाति की मौलिक एवं तात्विक भाव-कल्पना की अभिव्यक्ति होती है, आदिम अवस्था की हो अथवा आधुनिक सभ्यता की। व्यक्त की पृष्ठभूमि मे अव्यक्त का अन्वेषण वस्तुत. एक प्रमुख कार्य है, विशेषरूप से उन मनीषियों के लिये जो मानव स्वभाव के पारखी हैं। सस्कृति से प्रकृत इच्छाएँ परिवर्तित हो जाती है क्योंकि मनुष्य को विकास की विभिन्न अवस्थाएँ पार करनी पड़ी है और इसमे उसका जीवन सरल से जटिल, समान से भिन्न हो गया है। व्यवहार और मनोवृत्ति प्रत्यक्ष न रहकर परोक्ष और प्रतीकात्मक हो गयी है। इस सत्य की पुष्टि युग ने भी की है : "उस चेतन स्तर पर पहुँचने के लिये जो अचेतन विषय-वस्तुओं के समानान्तर है हमे कुछ ही शताब्दी पीछे पयर्टन करना होगा।"[2] यह इस सत्य की ओर इंगित करता है कि वर्त्तमान अज्ञात मन की सामग्रियाँ किसी समय चेतन स्तर पर थीं। संभवतः इसी कारण प्राचीन टैबूओं और पौराणिक आख्यानों का निर्माण हुआ है।

स्वप्न-प्रतीक की तीसरी विशेषता यह है कि यह काम-भाव तक ही सीमित है भले ही अन्य क्षेत्रों मे प्रयुक्त प्रतीक काम-भाव तक सीमित न हो। कुछ ऐसे भी स्वप्न हैं जो अन्य प्रकृत भावों के द्योतक है। युंग का दृष्टिकोण वैज्ञानिक और तर्कयुक्त है कि स्वप्न मे केवल निगृहीत काम-इच्छाओं की अभिव्यक्ति नहीं होती। स्वप्न के कथानक-चित्र का अपना अलग मूल्य होता

---

[1] फ्रायड:—लेक्चर्स ऑन साइकोएनिलिसस

[2] युंग, सी० जी०—साइकॉलजी एण्ड रेलिजन, पृष्ठ ६६

है। व्यक्तिगत भाव-इच्छा के अतिरिक्त जातीय प्रतिमाएँ होती हैं जिनका प्रदर्शन स्वप्न मे होता है।

स्वप्न की चौथी विशेषता यह है कि प्रतीकीकरण स्वयं स्वतंत्र प्रक्रिया है। नैतिक निषेध न रहने पर भी स्वप्न मे मूल तथ्य विकृत होते रहते हैं जिससे स्वप्न की व्याख्या समस्या बन जाती है। इसी से फ्रायड ने यह स्थापित किया कि प्रतीकीकरण 'स्वतंत्र पद्धति' है और नैतिक निषेध की ही तरह इसका कार्य स्वप्न को विकृत बनाना है। अबतक नैतिक निषेध ही स्वप्न के वास्तविक तथ्यों को विकृत करने का एकमात्र कारण माना जाता था; विचार और अनुभव के आधार पर फ्रायड ने अपने ग्रंथो मे यह नवीन अन्वेषण घोषित किया। आगे चलकर उन्होंने यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया कि प्रतीकीकरण की प्रक्रिया नैतिक निषेध के सहयोग मे और स्वतंत्र रूप मे दोनों ही प्रकार से कार्य कर सकती है। इस प्रकार प्रतीकीकरण 'स्वप्न-क्रिया' मे मुख्य पद्धति रही और प्रतीक का अर्थ समझे विना स्वप्न की व्याख्या-विवेचना संभव न रह गयी। प्रतीक रूप मे विचार करना मानव के स्वभाव की सदैव से विशेषता रही।

स्वप्न-प्रतीक के कामुक स्वभाव पर पर्याप्त विवाद-आलोचना हुई है। वस्तुतः मानव मे काम के अतिरिक्त और भी अनेक वृत्तियाँ क्रियमाण होती हैं। इसी से सभी प्रतीको का संबंध काम-भाव से ही नही होता। फ्रायड ने भी यह अनुभव किया कि उनका दृष्टिकोण सीमित और संकुचित है। संभव है इसी से उन्होंने अपने पिछले ग्रंथों मे यह स्पष्ट इंगित किया कि उन्होंने 'काम' (सेक्स) शब्द का प्रयोग व्यापक और वृहत् अर्थ मे किया है और इसके अन्तर्गत सभी प्रकार का आकर्षण मातृप्रेम से लेकर परलिंगी तक निहित होता है। तब भी फ्रॉयड के कामवृत्ति सिद्धान्त पर आक्षेप संभव है। जहां कहीं व्यवहार-संबंधी अतिक्रमण अथवा विकृत व्यक्तित्व का उल्लेख हुआ है, फ्रायड ने वस्तुतः इस शब्द का प्रयोग सीमित-संकुचित अर्थ मे ही किया है। परन्तु यह बात मान्य नहीं है कि मानव की सभी आकांक्षाएँ, धार्मिक निष्ठा, और सौन्दर्य-भाव का उद्गम कामवृत्ति से हुआ है। बालक की अबोध क्रियाएँ कामवृत्ति का सूचक नहीं हो सकतीं; प्रौढ़ की ही तरह उसमे यह वृत्ति क्रियाशील नहीं होती। पौधे के लिये बीज की आवश्यकता होती है और बीज मे ही पौधे को उपजाने की शक्ति अन्तर्हित होती है। तब भी

बीज को पौधा समझना नितांत भूल है। मानव स्वयं बहुमुखी है। यदि फ्रायड ने इसकी समीक्षा-विवेचना करके स्वप्न की व्याख्या की होती तो अधिक युक्तिसंगत रहती। कामवृत्ति भी एक वृत्ति है, पर यह एकमात्र वृत्ति नहीं है।

इस निष्कर्ष से युंग, फिशर, रिवर्स आदि सभी मनोवैज्ञानिक सहमत हैं और इस मनोवैज्ञानिक सिद्धात पर कि स्वप्न मे प्रदर्शित सभी इच्छाएँ कामवृत्ति संबंधी होती हैं सदैव से आक्षेप होता रहा। फ्रायड के ग्रंथों का गूढ़ अध्ययन करने पर भी यह नही स्पष्ट हो पाता कि स्वप्न-प्रतीक सदैव काम-संबधी क्यों होते है। वस्तुत: मानव मन मे जितनी वृत्तियाँ हैं उतने प्रकार के प्रतीक भी होते है। स्वप्न मे काम-प्रतीक, धार्मिक प्रतीक, नैतिक प्रतीक और मानसिक प्रतीक मिलते है। युग का विश्वास मानव के बहुमुखी स्वभाव मे था; इसी कारण उन्होंने अनेक प्रवृत्तियों का अस्तित्व माना है और तद्नुसार मानव के व्यवहार और अनुभूतियों के संबध मे विस्तृत और गूढ़ विवेचन किया है। युंग की दृष्टि से 'लिबिडो' मानसिक शक्ति का सूचक है और इसका प्रवाह विभिन्न दिशाओं मे होता रहता है। लिबिडो का उपयोग धार्मिक, सामाजिक और नैतिक—अर्ध **प्रकृत और अर्ध अर्जित** आवश्यकताओं के लिये किया जा सकता है। जिस दिशा मे जिस परिमाण मे लिबिडो का प्रवाह होता है उसी के अनुपात के आधार पर स्वप्न-प्रतीक का विवरण देने का प्रयास किया जाता है। फ्रायड ने लिबिडो और कामशक्ति को तद्रूप समझा; युग को लिबिडो मे कामहीन तथ्य भी निहित मिले। इस प्रकार लिबिडो एक व्यापक शब्द है और इसका उपयोग अन्य प्रसंग मे भी किया जा सकता है। लिबिडो जीवन है। व्यक्ति-विशेष का आचरण इस मूल तथ्य पर निर्भर है कि उसका लिबिडो किस दिशा मे किस परिमाण मे प्रवाहित होता है। जिस व्यक्ति के लिबिडो का प्रवाह विशेष अंश मे धर्म की ओर होता है, वह धार्मिक मनोवृत्ति का समझा जाता है; जिसका आत्मप्रतिपादन की तुष्टि मे, वह अभिमानी; जिसका कामवृत्ति की ओर वह कामुक माना जाता है। युंग का लिबिडो बर्गसन की 'एलन वाइटल' की धारणा के अनुरूप वह प्रकृत शक्ति है जो अर्धचेतन मे पुनर्जीवन और सम्यक् प्रदर्शन के लिये सदा प्रयत्नशील रहती है। स्वप्न मे स्वप्नद्रष्टा के व्यक्तित्व की छाया मिलती है। स्वप्न व्यक्तिगत जीवन मे रमने की अवस्था है।

रिवर्स ने भी फ्रायड के स्वप्न के संबंध मे प्रतिपादित काम-सिद्धांत का खंडन किया है। जिस प्रकार मनुष्य श्वेत वर्ण मे सब वर्णों को न देख केवल श्वेत वर्ण का ही अवलोकन करता है, उसी प्रकार फ्रायड का स्वप्न-प्रतीक का विवेचन एकांगी रहा। मानव की जीवन-सबंधी प्रेरणाएँ बहुमुखी होती है और इनमे अनेक वर्ण और छाया सम्मिश्रित है। पृथक्-पृथक् प्रवृत्तियाँ पृथक्-पृथक् रूप से क्रियमाण रहती है। आंशिक अवस्था को पूर्ण समझना भूल है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत भेद भी होता है। एक व्यक्ति मे एक, और दूसरे मे दूसरी वृत्ति की प्रभुता रहती है। स्वभाव मे एक व्यक्ति दूसरे से पृथक् रहता है। एक ही स्वप्न पृथक्-पृथक् व्यक्तियों के लिये भिन्न-भिन्न अर्थ रखता है। दृष्टात के लिये :

> "एक नववधु स्वप्न देखती है कि एक अपरिचित व्यक्ति हाथ मे छुरा लिये उसका पीछा कर रहा है। वह भयभीत होकर जग जाती है।"

फ्रायड की व्याख्या के अनुसार यह स्वप्न काम-भाव से सबधित है। परन्तु यह अर्थ उस व्यक्ति के प्रसंग मे नही लागू होता जिसमे भय का भाव होता है या जिसमे रचनात्मक प्रवृत्ति की प्रधानता है। सभव है उस व्यक्ति-विशेष ने कुछ भूल की है और उसमे अपराध का भाव उत्पन्न हो गया है। अपराध-भाव होने से तथा 'नैतिक मन' से ताडना मिलने के कारण वह स्वप्न मे देखती है कि एक अपरिचित हाथ मे छुरा लिये दंड देने के लिये उसका पीछा कर रहा है। उस स्त्री का यह स्वप्न हीनत्व-ग्रन्थि का भी सूचक हो सकता है; स्वभाव से भयभीत होने के कारण उसने यह स्वप्न देखा। स्वप्न की व्याख्या कभी भी निश्चित नियम-सिद्धात के आधार पर नहीं की जा सकती। एकांगी होने के कारण स्वप्न की व्याख्या के संबंध मे फ्रायड का 'इच्छापूरक सिद्धांत' और एडलर का 'प्रभुता के लिये प्रयास सिद्धांत' सफल न हो सका। वस्तुतः स्वप्न की व्याख्या मानव की किसी एक वृत्ति के प्रसंग मे कभी भी सभव नहीं है।

इस प्रकार फ्रायड के अनुसंधानों और एकांगी दृष्टिकोण के आधार पर यह निष्कर्ष निकला कि प्रत्येक स्वप्न-प्रतीक का अपना निश्चित अर्थ होता है। युंग ने इसका विरोध किया और स्वप्न-प्रतीक को कोई नियत अर्थ देना

रिवर्स :—कान्फिल्क्ट एन्ड ड्रीम

स्वीकार न किया। स्टेकल ने भी अपने 'इंटरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स' नामक ग्रथ मे यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है : "किसी भी स्वप्न-प्रतीक की सामान्य सार्थकता नहीं होती। स्वप्न-प्रतीक का अर्थ निर्धारित करने के लिये हमे कुछ सामान्य सिद्धान्तों की आवश्यकता प्रतीत होती है; किंतु विशेषज्ञ को सदैव इस बात से सजग रहना है कि वह किसी सामान्य सिद्धांत को स्वप्न की रहस्यमयी भाषा को समझने की अमोघ कुंजी न समझे।" किसी वस्तु, चित्र या शब्द का निश्चित-नियत अर्थ देना संगत नही जान पड़ता। ऐसा होने पर स्वप्न की व्याख्या की सम्पूर्ण समस्या ही हल हो जाती। स्वप्नदृष्टा सहज ही फ्रायड के ग्रंथों मे दी हुई प्रतीकों की सूची द्वारा अपनी भाव-ग्रंथियों का ज्ञान कर लेता और इस प्रकार अपने को विक्षिप्तता से मुक्त कर लेता, क्योंकि भाव-ग्रंथियों का ज्ञान करना अपने को उनसे मुक्त करना है। किंतु मानव-स्वभाव जटिल है; इसे समझना आसान नही। मानवीय मानस अनेक मे एक है। स्वप्न का सफल विश्लेषण करने के लिये सूक्ष्म निरीक्षण और कठिन प्रयास आवश्यक होता है। फ्रायड का भी कथन है : "यह ऐसा सरल कार्य नहीं जैसा एकबारगी प्रतीत होता है।"

इसलिये स्वप्न-प्रतीक का कोई निश्चित अर्थ मान्य नही है। मानव स्वभाव की भाँति स्वप्न-प्रतीक भी गतिशील है। युंग ने लिखा है : 'सुनिश्चित प्रतीकात्मक अर्थो को मानना अन्धविश्वासपूर्ण विधान होगा। वस्तुतः कोई निश्चित प्रतीकात्मक अर्थ ही नहीं होता। कुछ प्रतीकों की पुनरावृत्ति होती है, किन्तु सामान्य वक्तव्य के अतिरिक्त कुछ और नहीं हस्तगत होता। दृष्टांत के लिये यह भ्रामक है कि जब सर्प स्वप्न मे दृश्य हो इसका अर्थ लिग ही है; यह स्वीकार न करना भी भ्रामक है कि किसी के लिये इसका अर्थ यही होता है।"[१] हरेक प्रतीक का अर्थ एक से अधिक होता है और यह बहुत कुछ स्वप्नद्रष्टा की मानसिक अवस्था के अनुरूप होता है। इसके उदाहरण मे युंग ने एक नवयुवक रोगी के एक साधारण स्वप्न का वर्णन किया है :

> "मै अपनी माँ और बहिन के साथ सीढ़ी से ऊपर जा रहा था। मकान के सिरे पर पहुँचने पर मुझसे कहा गया कि मेरी बहिन गर्भवती है।"

---

[१] सी० जी युंग:—कलेक्टेड पेपर्स ऑन ऐनिलिटिकल साइकॉलजी, पृष्ठ २१७–१८

युंग का निरपेक्ष तर्क यह है कि यदि 'सीढ़ी' काम-क्रिया का प्रतीक है तो माँ और बहिन को प्रतीक न मानकर वास्तविक कैसे माना जा सकता है! जब स्वप्न-चित्र प्रतीकात्मक है तब कुछ चित्रांश को प्रतीकात्मक और कुछ को अप्रतीकात्मक मानने का हमे अधिकार नहीं है। यदि 'सीढ़ी चढ़ना' का प्रतीकात्मक अर्थ है तो माँ, बहिन और शिशु का भी प्रतीकात्मक अर्थ होगा। रोगी ने स्वप्न के कुछ अंश के प्रसंग मे 'स्वतंत्र संबंध' व्यक्त किये। माँ के प्रसंग मे उसने बताया 'मैंने अरसों से उन्हें नहीं देखा, बहुत दिन हो गये। यह मेरी धृष्टता है। माँ की ओर ध्यान न देकर मैंने भूल की। यहाँ माँ से उस वस्तु-भाव का प्रतिनिधित्व होता है जिसके विस्मरण के ध्यान मात्र से रोगी पश्चाताप से भर उठता है। जब रोगी से पूछा गया, 'वह क्या है'—वह घबड़ाकर बोल उठा—'कार्य'। बहिन के प्रसंग मे उसने कहा—'बहुत दिन हुये जब मैं उससे मिला था। जब कभी उसके बारे मे सोचता हूँ, मिलने की इच्छा प्रबल हो उठती है। जब मैंने उससे बिदा ली, वह मुझे स्मरण है। बड़े स्नेह से उसे प्यार किया; पहली बार यह महसूस किया कि स्त्री को प्यार करने का क्या अर्थ होता है।' रोगी को यह तुरन्त स्पष्ट किया गया कि 'उसकी बहिन' स्त्री-प्रेम का प्रतिनिधि है, 'सीढ़ी' जिसके प्रसंग मे ऊपर चढ़ने की बातें रहीं, जीवन की सफलता का द्योतक है और 'शिशु' से नये प्रसून का, अथवा वंश के पुनर्जीवन का संबध है।"[१]

उपर्युक्त दृष्टांत मे युग ने फ्रायड की स्वप्न मे प्रयोग हुये प्रतीकों की व्याख्या का खंडन विशेष वैज्ञानिक और सुदर रूप से किया है। युंग के स्वप्न-विश्लेषण से इस बात की पुष्टि होती है कि स्वप्न द्वारा निगृहीत इच्छाओं की छद्मरूप मे तुष्टि से अधिक स्वप्नद्रष्टा की सामाजिक, नैतिक और कर्त्तव्य की ओर उदासीनता का भाव प्रदर्शित होता है। सारांश है कि प्रतीक के नियत अर्थ नहीं रहते; केवल सामान्य व्यापक अर्थ की पुनरावृत्ति होती रहती है। मैथ्यू का कथन युक्तिसंगत है: "केवल एक वस्तु दूसरी वस्तु का प्रतिनिधित्व करती हो, यह व्यक्तिगत समस्या को सुलझाने के लिये पर्याप्त नहीं। स्वप्न के एक शब्द की व्याख्या के लिये दूसरा शब्द स्थानापन्न करना चित्र-प्रतीक के लिये

[१] सी० जी युंग:—कलेक्टेड पेपर्स ऑन ऐनीलिटिकल साइकॉलजी, पृष्ठ २२९

वैसा ही तत्वहीन है जैसे कि यह स्वीकार करना कि स्वप्न केवल शारीरिक तृष्णा का काल्पनिक चित्र प्रदर्शन है।"[१]

स्वप्न की व्याख्या करने पर यह भी प्रमाणित होता है कि एक ही प्रतीक से एकसाथ कई इच्छाओं की तुष्टि हो सकती है। यह कार्य अज्ञात मन की 'अति सकल्पित' कार्य-पद्धति का है कि कई इच्छाएँ एकसाथ समन्वित हो जाती है, जिससे इच्छाओं का सक्षेप मे प्रदर्शन हो सके और वास्तविक तथ्य अधिक से अधिक गूढ़ और छद्मवेषी हो जाय। इससे मन अतिशय प्रदर्शन द्वारा समन्वय करता है। दृष्टांत के लिये 'सीढ़िओं पर चढ़ना' द्वारा स्वप्न-द्रष्टा की कई इच्छाओ की अभिव्यक्ति होती है। प्रथम, यह ऊँची-ऊँची आकांक्षाओं का पूरक है जिसका संकेत शिशु-जन्म की आशा मे है; दूसरे, यह कामवृत्ति की तुष्टि है जिसका प्रमाण बहिन के प्रति संवेगात्मक आकर्षण है और शिशु-जन्म का सदेश; तीसरे, यह नैतिक मन की तुष्टि है। 'सीढ़ी पर चढ़ना' स्पष्ट रूप से इस बात का सूचक है कि स्वप्नद्रष्टा का नैतिक विकास पर्याप्त हुआ है। इसकी पुष्टि माॅ के प्रसग मे दी प्रतिक्रियाओं से पूर्णतः हो जाती है। माँ से नैतिक मन का प्रतिनिधित्व होता है। फ्लुगल ने भी एक रोचक स्वप्न का दृष्टांत दिया है :

"गायक वाद्य का स्वर ठीक करने के लिये आया। वह वाद्य के अंदर से बहुत से बीज निकालने मे व्यस्त था।"[२]

'वाद्य' से स्वप्नद्रष्टा का प्रतिनिधित्व होता है, 'स्वर मिलाने वाला गायक' विश्लेषक का प्रतिनिधि है। इस कारण स्वप्न का वह चित्र 'गायक वाद्य का स्वर ठीक करने के लिये आया' रोगी और विश्लेषक के परस्पर सबंध के प्रसंग मे है। 'बीज' से तात्पर्य्य जन्म देने की कायिक क्रिया से है। इस स्वप्न के तीन अर्थ रहे : एक, शिशुजन्म की इच्छा; दूसरा, काम-संबंध; तीसरा, कामेच्छा का निवारण जो अजाने मे उसके मष्तिष्क मे जम गई थी। स्वप्न का अर्थ है कि विश्लेषण द्वारा स्वप्नद्रष्टा के रोग का निवारण अवश्यमभावी है। इस प्रकार इस स्वप्न मे चार प्रकार की इच्छाओं की

---

[१] मैथ्यू :—डेप्थ साइकॉलजी, पृष्ठ १४४

[२] फ्लुगल:—थ्योरिज ऑफ साइकोऐनिलिसस फ्रौम एन आउटलाइन ऑफ मार्डन नालेज, पृष्ठ ३६९

अभिव्यक्ति मिलती है : चिंता और अधिक कार्य से निवृत्ति, कामेच्छा से निवृत्ति, विश्लेषक के सहयोग से शिशु-जन्म, और विश्लेषक के साथ काम-संबध।

स्वप्न प्रतीकात्मक होते है इसकी चेतना फ्रायड को प्रारंभ से ही थी और इसी कारण उन्होंने स्वप्न के दो स्तरों 'व्यक्त अंश' और 'अव्यक्त अंश' के बारे मे बतलाया है। अव्यक्त अंश स्वप्न का मूल वास्तविक तथ्य होता है। जो कुछ स्वप्नद्रष्टा वर्णन करता है वह स्वप्न का व्यक्त अंश होता है। जेम्स का कथन है कि अव्यक्त अंश स्वप्नद्रष्टा के मानसिक जीवन का भीतरी भाग है और इसमे वह तर्कहीन, अविच्छिन्न विषय और अद्भुत् विशेषताएँ नही होतीं जो व्यक्त अंश मे बहुधा व्यापक रहती है। व्यक्त अंश अव्यक्त अंश के गूढ़ भाव-विचार की अध्यस्त रूप मे अभिव्यक्ति है।"[1] व्यक्त अंश वास्तविक नही होता; यह अव्यक्त अंश का बाह्य रूप है, जैसे सोमित असीमित का। फ्रायड का कथन है : "व्यक्त और अव्यक्त अंश दो पथक् भाषा मे एक ही विषय-वस्तु का वर्णन है, अथवा स्वप्न के मूल विषय-वस्तु अथवा स्वप्न की भाव-कल्पना का अन्य रूप मे अनुवाद है जिसके प्रतीक और सम्मेलन के नियमों को मूल और अनुवाद की तुलना करके हमे अवश्य सीखना चाहिये।"[2]

प्रतीकात्मक स्वप्न का उद्गमस्थान अज्ञात मन है। इसीलिए स्वप्न-प्रतीक के प्रसंग मे अज्ञात मन के विषय मे उल्लेख करना आवश्यक है। फ्रायड के शब्दों मे "अज्ञात मन की इच्छाएँ स्वप्न के आदिकारण है और यह इसके निर्माण के लिये मानसिक शक्ति प्रदान करता है।"[3] स्वप्न अज्ञात मन की प्रच्छन्न इच्छाओं की पूर्त्ति है। सभी मनोवैज्ञानिकों ने अज्ञात मन को मानव के सम्पूर्ण क्रिया-व्यापार का प्रवर्त्तक माना है। युंग ने मन की तुलना एक बड़े सागर से की है जिसमे ज्ञात मन केवल एक द्वीप सा है। फ्रायड के अनुसार अज्ञात मन ज्ञात मन और बाल्यावस्था के विस्मृत अनुभूतियों तथा अन्य घटनाओं का संबंध मात्र है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि अनुभूति कैसी-भी धुंधली हो वह पूर्ण रूप से मेटी-विस्मृत नही की जा सकती; उसकी कुछ न कुछ छाप मानव के क्रिया-व्यापार और जीवन को अज्ञात रूप से अजाने प्रभावित करती

---

[1] फ्रायड:—इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स

[2] फ्रायड:—इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स, पृष्ठ २६८

[3] फ्रायड:—न्यु इन्ट्रोडक्टरी लेकचर्स, पृष्ठ ३०

ही रहती है। अतीत की अनुभूतियाँ अज्ञात मन मे संगृहीत रहती हैं और सम्पूर्ण व्यक्तित्व को संचालित करती है। सचमुच अज्ञात मन ही मन का वास्तविक भाग है : "इसकी आंतरिक प्रकृति के विषय मे हमे वैसा ही अल्प ज्ञान है जैसे बाह्य जगत की वास्तविकता के बारे मे, और चेतना द्वारा हमे इसके बारे मे वैसी ही अपूर्ण सूचना मिलनी है जैसी कि इंद्रियों द्वारा बाह्य जगत की।"[1] अज्ञात मन समृद्ध है। फ्रायड के अन्वेषण से यह सिद्ध हो गया है कि अज्ञात मन ऐसी विभूतियों, वर्जित इच्छाओं का संग्रहालय है जो समाज की दृष्टि से वर्जित हैं। स्वभाव से सक्रिय होने के कारण इच्छाएँ अभिव्यक्ति चाहती है। इसमे पौराणिक टाइटन्स का स्मरण हो आता है जिन्हें बलशाली देवताओं ने पर्वत के नीचे दाब दिया, फिर भी यह भय बना रहा कि उनकी करवट से पृथ्वी डगमगा उठेगी। 'नैतिक निषेध' द्वाररक्षक का कार्य करता है और यह निगृहीत इच्छाओं की तुष्टि पर रोक लगाए रखता है। निगृहीत तथा दमन करने वाली—दो विरोधी वर्ग की इच्छाओं मे संघर्ष होता है। निगृहीत इच्छाएँ मूलवासना प्रकृति की होती है और दमन करने वाले नैतिक मन से विरोधी होने के कारण प्रतिद्वंद्वी है। फलस्वरूप आभ्यन्तरिक क्षेत्र मे विद्रोह-विप्लव की अनुभूति होती है और निद्रावस्था मे वर्जित इच्छाओं की अभिव्यक्ति छद्मवेष मे होती है।

मूलवासना की प्रकृत इच्छाएँ 'सुख-सिद्धांत' से सचालित होती रहती हैं, इन इच्छाओं की तुष्टि का परिणाम कुछ भी क्यों न हो। अहं, 'वास्तविकता सिद्धांत' से संचालित होता है; यह समाज की रुढ़ि-परम्परा से नियमित रहता है। अहं का विकास वातावरण के सम्पर्क से होता है; यह विवेकपूर्ण होता है; समाज की रुढ़ि-परम्परा से नियमित रहता है। इसी से यह उन इच्छाओं को प्रवेश नहीं करने देता जो सामाजिक ओर सांस्कृतिक दृष्टि से मान्य नहीं है। ऐसी परिस्थिति मे स्वप्नद्रष्टा को अपने पर प्रतिबंध रखना पड़ता है और यही कारण है ये इच्छाएँ प्रत्यक्ष के बदले अध्यस्त रूप मे प्रकट होती है। वास्तव मे स्वप्न की मूल सामग्री मूलवासना (इड) से प्राप्त होती है। व्यक्तित्व के नैतिक भाग को ठेस न पहुँचे इसके लिये स्वप्नद्रष्टा के मूल भावों की अभिव्यक्ति मे छद्मता लाई जाती है। लोवी ने स्वप्न का उद्गम

---

[1] फ्रायड:—इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स

अर्धचेतन मन माना है; किंतु उन्हें यह संगत नहीं जान पड़ा कि स्वप्न फ्रायड की मूलवासना (इड) तक ही सीमित है। लोवी के मत से सुप्तावस्था मे स्वप्नद्रष्टा का मूलवासना की ओर पूर्णरूपेण प्रत्यावर्तन नहीं होता; वह केवल उस दिशा के समीप रहता है। दृष्टांत के लिये लोबी ने निम्नांकित वृतांत दिया है।

> "मुझे एक बड़े सकरे रास्ते से जाना पड़ा जिसे मैं बड़ी कठिनाई से पेट के बल रेंगकर सँभाल सका। जब मैं रसोईघर मे पहुँचा मैं बी की माँ से मिला और उनकी कन्या के लिये पूछा। मैंने सोचा कि वह दूसरे कमरे मे सोई है। परन्तु उसकी माँ ने मुझसे कहा कि वह पाँच बजे तक मकान नहीं लौटेगी और वह सितम्बर से नियमित रूप से काम पर जा रही है। मैं क्रोध मे चिल्ला पड़ा—यह बात उसने मुझसे क्यों गुप्त रखी—वह झूठी है, बेवफा है। मेरे हृदय को उसने धक्का पहुँचाया।"[१]

यदि इस स्वप्न का विश्लेषण किया जावे तो किसी वास्तविक घटना का उसी रूप मे अवलोकन नहीं होता। स्वप्न-स्थान भी वास्तविक नही है, केवल धोखा देने का जो प्रसग है उसमे कुछ सत्यता है। लोवी के इस स्वप्न-व्याख्या पर कि स्वप्न का उद्गम अर्धचेतन मन है, आक्षेप हुआ। वास्तव मे स्वप्न का मूल तथ्य मूलवासना (इड) मे ही निहित है चाहे किसी भी रूप मे अभिव्यक्त हो, जो मानव मन का सबसे निचला भाग है। विरोध के अनुपात मे इसकी अग्राह्य भाव-संवेदनाएँ विकृत होती है। नैतिक निषेध का नियंत्रण इनकी अभिव्यक्ति पर होता है। जब प्रतिबंध अधिक रहता है तब स्वप्न का अव्यक्त अंश अद्भुत और अस्पष्ट रूप ग्रहण कर लेता है; जब प्रतिबंध अल्प होता है, स्वप्न का अव्यक्त अश सहज ही ग्राह्य हो जाता है।

अभी तक स्वप्न के प्रतीकात्मक स्वभाव पर विचार हुआ है और इसकी व्यापकता को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। हमे अज्ञात मन की उन अन्य प्रक्रियाओं पर भी विचार करना होगा जिनका प्रभाव प्रतीक पर पड़ता है। 'संक्षेपण' 'विस्थापन' और 'नाट्कीयकरण' आदि कुछ प्रक्रियाओं का विवरण फ्रायड के 'इंटरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स' नामक ग्रंथ मे मिलता है। उनका उल्लेख प्रासांगिक है।

---

[१] एस लोवीः—फाउन्डेशन ऑफ ड्रीम इन्टरप्रिटेशन, पृष्ठ २८

स्वप्न की विकृति के लिये प्रथम प्रक्रिया संक्षेपण की है। स्वप्न का अव्यक्त अंश बहुरंगी और समृद्ध होता है। इसलिये अभिव्यक्ति के पूर्व उसका संक्षिप्त होना एक प्रकार से अनिवार्य रहता है। यह स्वप्न की भाव-कल्पना की विशेषता है कि इसमे भाव. घटना और विचार का चित्रण विस्तार से नहीं होता; केवल उसकी रूप-रेखा मिलती है। वस्तुतः मनुष्य मे अनेक अव्यवस्थित भाव-विचार और अतृप्त इच्छाएँ रहती है जिनमे कुछ वर्जित, कुछ गूढ़, व्याख्या के योग्य, और कुछ समानधर्मी होती है। फलस्वरूप बहुत-सी लोप हो जाती है और अल्पांश मे ही स्वप्न-रूप मे प्रदर्शित होती है। जिनमे स्थान, काल और व्यक्तिगत विशेषता की दृष्टि से साम्य होता है, उनकी अभिव्यक्ति एक साथ होती है। यह समन्वय क्योंकर और कैसे होता है! इसका प्रयोजन अवांछनीय भाव-इच्छा को वांछनीय रूप देना है। जिस प्रकार परिहास मे भाव-इच्छाओ की अभिव्यक्ति की योजना संक्षेप मे की जाती है, उसी प्रकार स्वप्न मे भी जो वर्णन स्वप्नद्रष्टा देता है उसकी अपेक्षा स्वप्न का मूल तथ्य कहीं अधिक विस्तृत और गूढ़ रहता है। इस प्रकार विश्लेषण करने पर स्वप्न का अव्यक्त अंश व्यक्त अंश से अधिक समृद्ध और वृहत् मिलता है। जिस प्रकार एक क्षेत्र के प्रतिनिधि से उस क्षेत्र के सभी नागरिकों का प्रतिनिधित्व होता है उसी प्रकार व्यक्त अंश से अव्यक्त अंश का प्रतिनिधित्व होता है। अभिव्यक्ति से सदैव संतोष मिलता है। इसी से प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति को एक प्रकार की 'स्थानापन्न तुष्टि' माना गया है।

विस्थापन प्रक्रिया की सहायता से जो भाव-इच्छाएँ निंदनीय है, वे कम निंदनीय हो जाती है। संभव है साधारण और अर्थहीन घटनाएँ स्वप्न मे बड़े महत्व और मूल्य की प्रतीत हों; जो बड़े महत्व और मूल्य की है, वे निरर्थक दृश्य हों और केवल क्षणिक भाव-विचार से संबंधित समझी जावें। 'बोटैनिकल मोनोग्राफ' इसका उत्कृष्ट दृष्टांत है। फ्रायड ने इस विस्थापन का वर्णन नित्शे के शब्दों मे 'मूल्यों का स्थान-परिवर्त्तन' कहा है।

विस्थापन की प्रक्रिया मानसिक दौर्बल्य और विक्षेप की अवस्था मे भी क्रियमाण रहती है जिसमे महत्वपूर्ण वस्तु-घटना का विस्थापन कम मूल्य की वस्तु-घटना से होता रहता है और व्यक्ति वास्तविकता के बारे मे अंधकार मे रहता है। इसका ध्यान व्यक्ति को नहीं रहता; न तो उसे इसका ज्ञान ही रहता है कि इस विस्थापन की पृष्ठभूमि मे महत् मानसिक इतिहास छिपा है।

यह तो 'लिबिडो' की विशेषता है कि यह अपने को उन तथ्यों से निर्लिप्त कर लेता है जो अधिक महत्व के हैं और कम महत्व के विषयो को अतिशयोक्ति द्वारा अधिक महत्व देने लगता है। इस प्रकार अध्यवसाय द्वारा वास्तविक तथ्यों का अन्वेषण असंभव हो जाता है। एक प्रकार के विस्थापन मे अध्यवसाय द्वारा प्रतिनिधित्व होता है; दूसरे मे व्यक्त अश मे आंशिक अभिव्यक्ति होती है। जिम तथ्य के लिये अध्यवसाय का प्रयोग होता है इससे उसका संबंध बहुत बाह्य और सुदूर होता है। विस्थापन सामान्यन: सवेकात्मक आकर्षण का स्थानान्तरण है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप अव्यक्त अंश की अभिव्यक्ति असबद्ध रूप मे होती है और व्यक्त अश और अव्यक्त अश का परस्पर सबंध बहुत अस्पप्ट और दूरवर्त्ती हो जाता है। युग का कथन है: "यह बनावटी सबध गूढ़, छिपे तथा तीव्र सवेगात्मक सबंध का आवरण मात्र है।"

संक्षेपण और विस्थापन की प्रक्रियाओं के शिल्प-कौशल के कारण मानव की इच्छाओं की अभिव्यक्ति विपरीत वस्तुओं और घटनाओं द्वारा व्यक्त होना प्रारंभ हो गई है। अव्यक्त अंश इस रूप मे दृष्टिगत होता है जो स्वप्नद्रष्टा को नितांत अर्थहीन और अस्पप्ट विदित होता है। इमका कारण इच्छाओ का विचित्र स्वभाव है, अथवा स्वप्न के लिये निगृहीत और अज्ञात इच्छाएँ उत्तरदायी होती हैं; वर्त्तमान और चेतन इच्छाओ के कारण स्वप्न की अनुभूति नही होती। चेतन इच्छाएँ तभी प्रभावशाली हो सकती है जब ये अचेतन स्तर से सबधित हो। 'स्वप्न-क्रिया' मे अव्यक्त अनुभूतियों-तथ्यों से व्यक्त का विवरण मिलता है; 'स्वप्न-व्याख्या' मे व्यक्त अनुभूतियों का विश्लेषण करके अव्यक्त अनुभूतियो से परिचित होने का प्रयास होता है।

नाट्कीयकरण प्रक्रिया के क्रियमाण रहने मे स्वप्न मे प्रत्येक भाव-इच्छा-विचार प्रतिमा के रूप मे प्रकट होता है। अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप मे रहती है। यह वर्णमाला-संबधी न होकर चित्रलेखीय होता है। व्यक्ति और घटना का संकल्प-विकल्प प्रतिमा के रूप मे सरलता से हो जाता है; सूक्ष्म विचार का चित्र-रूप मे अभिव्यक्तीकरण, जैसे मानवीय संबंध का, कठिन रहता है। स्वप्न के अव्यक्त अंश की प्रतिमा-रूप मे अभिव्यक्ति की शैली प्राचीन है।

मनोविश्लेपण मे कुछ प्रतीकों का उल्लेख किया गया है जिनका प्रयोग स्वप्न तक ही सीमित नहीं होता; इनका प्रयोग अन्य क्षेत्रों मे भी मिलता है। इनकी

प्रामाणिकता पौराणिक आख्यान मे प्रचुर मात्रा मे विद्यमान है। 'जल मे प्रवेश करना' और 'जल के बाहर आना' जन्म के प्रतीक होते है: 'राजा-रानी' माता-पिता के लिये है; 'यात्रा' मृत्यु का सूचक है; 'वस्त्र' नग्नावस्था के लिये; मैदान, कमरा, महल, किला, संदूक, जेब, तितली, गिरजाघर स्त्री के लिये; और घड़ी, पिस्तौल, सूई, चाकू, पेंसिल, गुम्बज पुरुष के लिये है। इस प्रकार प्रतीक बहुतेरे है और वास्तविक वस्तुओं की संख्या कम होती है। एक ही भाव-विचार की अभिव्यक्ति अनेक रूपों मे देखकर यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि प्रतीकों की क्योंकर प्रचुरता है जब कि भावनाएँ और संवेदनाएँ अल्प प्रकार की ही होती है। इसका कारण, जैसा फ्रायड ने स्पष्ट किया, यह है कि प्रतीको द्वारा किसी भी भाव-इच्छा की अभिव्यक्ति नहीं होती; इसके द्वारा कुछ विशिष्ट भाव-इच्छा की ही अभिव्यंजना होती है। फ्रायड के ग्रंथों मे प्रतीक का अभिप्राय अधिकांश शरीर के अंगों और क्रियाओं से होता है; मानसिक क्रिया-व्यापार से नही होता।

स्वप्न-प्रतीक और पौराणिक आख्यान के प्रतीको मे अभिव्यक्ति की दृष्टि से बहुत कुछ साम्य होता है। मनोविश्लेषण के अनुयायी औटोरैंक का भी यही मत है। फ्रायड के स्वप्न-प्रतीक की सूची मे 'जल' जन्म का प्रतीक माना गया है; पौराणिक आख्यान मे जो जल से बालक के जीवन की रक्षा करता है वह उसकी माँ है। यहूदी बालक से पूछा गया "मोजेज की माँ कौन है"— 'राजकुमारी'। 'राजकुमारी ने तो उसे केवल जल से बाहर निकाला था'— 'वह यही कहती थी।' इस प्रकार पौराणिक आख्यान मे भी 'जल' जन्म का प्रतीक माना गया है। पौराणिक आख्यान इस बात का प्रमाण है कि स्वप्न-प्रतीक आकस्मिक और निराधार नही होते। इसका प्रमाण दैनिक जीवन मे भी मिलता है। विकास की दृष्टि से 'जल' को जन्म का प्रतीक मान लेने के लिये दो महत्वपूर्ण संकेत भी हैं: एक, सभी स्थल के स्तनपायी जीव जल मे रहने वाले जन्तुओं से उत्पन्न हुये हैं; दूसरे, हरेक जीव प्रारंभ मे जल ही मे बसता है, अथवा जल से उत्पन्न होता है। अभिप्राय है कि कायिक विकास की दृष्टि से भी 'जल' जन्म का ही प्रतीक है। किंतु युग ने 'जल' को अज्ञात मन का व्यापक प्रतीक माना है। 'जल की बाढ़' अज्ञात मन की प्रभुता का द्योतक है। 'नदी मे स्नान करना', 'समुद्र की उत्ताल तरंगों के बीच अपने को अथाह विस्तृत जल से घिरे पाना' इत्यादि का अर्थ है स्वप्नद्रष्टा

अज्ञात मन मे गोते लगा रहा है । स्टेकल ने भी 'जल' को मानसिक प्रतीक माना है ।

'राजा-रानी' माता-पिता का प्रतीक है । परियों की कथा का प्रारंभ ही—'किसी समय एक राजा और रानी थी', इस प्रकार होता है । इसका सकेत माता और पिता की ओर है । फ्रायड के अनुयायी अब्राहम ने माँ के प्रतीक के बारे में अन्वेषण किया और यह निष्कर्ष निकाला कि 'मकड़ा' मॉ का प्रतीक है ।[1] मकड़े का भय माँ के प्रति 'अनाचार इच्छा' के भय के भाव का द्योतक है। युग ने यह अन्वेषण किया कि राजा-रानी के द्वारा माता-पिता का प्रतिनिधित्व नही होता; ये मातृ सूचक 'मदर इमेजो' और पितृ सूचक 'फादर इमेजो' के प्रतिनिधित्व मात्र है । ये प्रतिमाएँ आभ्यन्तरिक है जो प्रत्येक व्यक्ति मे उपस्थित रहती है । इनसे सामान्यत. मानवीय बन्धुत्व की अभिव्यजना होती हैं । प्रश्न यह उठता है : माता-पिता के प्रतीक द्वारा वास्तविक माता-पिता का प्रतिनिधित्व क्योंकर नही होता ! इसका कारण यह है कि अज्ञात मन की भावात्मक कल्पनाओं का संबंध यथार्थ वस्तुओं से नही होता; इनका सबंध आत्मनिष्ठ प्रतिमाओं मात्र से रहता है ।

'यात्रा' मृत्यु का प्रतीक होता है। यात्रा के स्वप्न वस्त्र के स्वप्न से अधिक प्रचलित होते है । शिक्षालय मे जब अबोध शिशु तोतली बोली मे अपने मृत माता-पिता के बारे मे पूछता है, उससे कहा जाता है 'वे यात्रा के लिये गये है' । कवि ने दूसरे लोक के लिये, जहाँ से पथिक नहीं लौटता, 'यात्रा' प्रतीक का ही प्रयोग किया है । दैनिक जीवन मे 'अंतिम यात्रा' का प्रायः प्रसंग आता है और जो प्राचीन विशेषकर मिश्रदेश की रीति-रिवाजों से परिचित हैं, उन्हें यह ज्ञात है कि मृत लोक की यात्रा का क्या अर्थ होता है। इस प्रकार 'यात्रा' प्रतीक का कायिक महत्व रहता है । इसका संकेत शरीर की क्षणभंगुरता की ओर होता है । वस्तुतः यात्रा के स्वप्न का सामान्यतः शारीरिक या कायिक महत्व होता है ।

निद्रा मे हृदय की धड़कन से रेलगाड़ी का स्वप्न दृश्य होता है । इसलिये 'रेलगाड़ी' हृदय की धड़कन का प्रतीक है और व्यक्ति को जो संवेदनाएँ होती हैं

---

[1] कार्ल अब्राहम:—सेलेक्टेड पेपर्स

उनकी व्यजना है। इसी प्रकार 'वायुयान' की भी व्याख्या की गयी है। 'पुल'[1] मृत्यु का प्रतीक होता है। पहले 'पुल' पुरुष के काम-अग का प्रतीक माना जाता था। फेरेन्कजी ने इस प्रतीक के बारे मे विशिष्ट अध्ययन किया और इसे एक नियत अर्थ प्रदान किया। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि पुल का स्वप्न अधिकतर वे ही स्त्रियाँ देखती है जो पुरुष बनने की बलवती इच्छा पर विजय नही पा सकी है और इसलिये मृत्यु का आवाहन आभ्यन्तर मे करती रहती है।

इमी प्रकार 'उड़न' स्वप्न की भी प्रतीकात्मक व्याख्या दी गयी है। फ्रायड की व्याख्या के अनुसार 'उडन' स्वप्न काम-सबधी होता है, अथवा यह काम-सबधी सघर्ष का प्रतीक होता है। प्रारभ मे हैवलॉक एलिस ने अपने 'दि वर्ल्ड ऑफ ड्रीम्स' नामक ग्रथ मे 'उडन' स्वप्न को श्वास लेते समय मास-पेशि के हल्न-चल्न क्रिया का प्रतीक सिद्ध किया और इस प्रकार इसका प्रयोजन मुख्यत: सीने के उतार-चढाव का द्योतक माना गया; बाद मे उन्होंने फ्रायड की ही तरह प्रमाणित किया कि 'उडन' स्वप्न का अर्थ काम-भाव से ही सबधित होता है और यह उन्होंने अपने बाद के प्रकाशित ग्रथ 'दि माइकॉलजी ऑफ सेक्स' मे स्पष्ट किया है। हैवलॉक एलिस ने एक दृष्टात दिया है

> "यह प्रिय और सुखद स्वप्न था। मै एक विशाल वायुयान पर उड रही थी, और भी वायुयान साथ मे थे। मै दैत्य के डैनो पर दीवार पर बैठी मक्खी की तरह सतुलन खोये उड़ रही थी।"[2]

यह स्वप्नद्रष्टा की काम-रजित अवस्था का प्रतीक है। ऐसे अनेक दष्टात हैवलॉक एलिस के ग्रथ मे दिये गये है और उन सभी का सबध कामेच्छा से ही होता है। एडलर की व्याख्या मे 'उडन' स्वप्न आकाक्षा और सफलता से सबधित होता है।

उडन क्रिया की तरह 'सीढी' और 'सीढी चढ़ना' भी काम के प्रतीक है। एडलर के दृष्टिकोण से ये भी उन्नति-सूचक है। 'दत-उन्मूलन पीडा' फ्रायड के दृष्टिकोण से काम-क्रिया का प्रतीक है; युग के अनुसार इसका सकेत शिशु-जन्म की ओर है। सामान्यत: शिशु-जन्म का अर्थ ही एक दाँत खोना है।

---

[1] फेरेन्कजी:—फरदर कन्ट्रिब्युशन टु द थ्योरी एन्ड टेकनिक ऑफ साइकोऐनिलिसस

[2] हैवलॉक एलिस:—दि साइकॉलजी ऑफ सेक्स, पृष्ठ ३४५

यह भी प्राचीन विश्वास है कि गर्भवती स्त्री के दाँतों मे जब दर्द होता है तब शिशु बालक होता है।

'वस्त्र' नग्नावस्था का प्रतीक माना गया है। हैवलॉक एलिस ने भी फ्रायड की इस व्याख्या का अनुमोदन किया है। जब स्त्रियाँ वस्त्र का स्वप्न देखती है, इससे पुरुष का प्रतिनिधित्व होता है; क्योकि दोनों ही से उष्णता प्राप्त होती है। इसी अर्थ मे पौराणिक कथानकों मे भी इस प्रतीक का प्रयोग हुआ है: 'भविष्य मे मै ही केवल तुम्हारा आवरण बना रहूँ'। स्टेकल ने 'वस्त्र' को मातृ-पित स्नेह का द्योतक माना है: "मेरी माँ मुझे आंचल मे ढकना चाहती है। यह छोटा है, मुझे उष्ण नही रख सकता।"[१] एडलर के अनुसार स्वप्न मे अपने को वस्त्र मे सुसज्जित न देखने का अर्थ है कि स्वप्नद्रष्टा मे भय का यह भाव है कि उसकी कमी दीख न जावे।

इसी प्रकार 'तीन' की सख्या भी एक प्रतीक है जिसका संबंध धर्म, पौराणिक कथानक, कला, स्वप्न—सभी क्षेत्रों मे काम-भाव मे स्थापित किया गया है। इसका उद्भव अज्ञात मन की कामेच्छा से हुआ है। सामान्यतः सख्या की व्युत्पत्ति वैज्ञानिक उपयोगिता के लिये होती है। मनोविश्लेषण मे सख्या 'तीन' विशेष सवेगात्मक महत्व की मानी गयी है और इससे स्त्री और पुरुष दोनो के काम-भाव की अभिव्यक्ति होती है। पुटनम ने एक दृष्टांत दिया है:

> "शरीर की गठन मे बहुत कुछ एक-सी तीन बालिकाएँ छात्रावास का एक कमरा ले लेती है जिसमे पहले एक रोगिणी रहती थी। उनमे आपस मे एक घड़ी और पिन के लिये झगड़ा होता है जो प्रवेश द्वार पर लटक रही थी। रोगिणी ने यह कहकर छीना कि उसका हक उनसे अधिक है और उन लोगो के आने के बहुत दिन पूर्व से वह वहाँ पर थी।"[२]

इस स्वप्न का संबंध 'अनाचार इच्छा' से है। संख्या प्यादे मात्र हैं। ऐसे स्वप्नों का संवेगात्मक महत्व सदैव गूढ़ होता है। फ्रायड ने संख्या के प्रतीकों का पुष्टीकरण धार्मिक कथाओं, पौराणिक कथानकों और लोकगीतों द्वारा किया है। इसी प्रकार चार की संख्या की भी महत्ता स्वप्न मे विशेष रहती है।

---

[१] स्टेकल :—इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स, पृष्ठ १०४

[२] जे० जे० पुटनम :—ऐड्रेसेस ऑन साइकोऐनिलिसस, पृष्ठ ४२७

स्वप्न और प्रतीकवाद

विभिन्न मनोवैज्ञानिकों के दृष्टिकोणों, सिद्धांतों और व्याख्या विवेचनों को ध्यान मे रखकर स्वप्न के प्रतीकों को चार वर्गों मे बाँटा जा सकता है: कायिक, मानसिक, धार्मिक और नैतिक। विवरण के आधार पर फ्रायड द्वारा उल्लेखित प्रतीक कायिक वर्ग के है; युग ने मानसिक और धार्मिक वर्ग के प्रतीकों का उल्लेख किया है, क्योंकि उनके अनुसार स्वप्न मे अज्ञात मन की भाव-प्रतिमाओं की अभिव्यंजना होती है; स्टेकल ने नैतिक प्रतीकों का अन्वेषण किया और नैतिक मूल्यों के संसर्ग मे स्वप्न-तथ्यों की व्याख्या की।

स्करनर और वालकेल्ट के अनुसार कायिक प्रतीक शरीर के विभिन्न अंगों तथा शारीरिक क्रियाओ से संबंधित होते है। शरीर का जो अंग उत्तेजित होता है उससे संबंधित प्रतीकों द्वारा उसकी अभिव्यंजना की जाती है। शरीर-संबंधी उत्तेजनाओं का रूपान्तरण वृहत रूप मे हो जाता है। यह चित्रण प्रतीकात्मक रूप मे होता है और व्याख्या का प्रयास करने पर भी अर्थ पूर्णत: स्पष्ट नही होता। स्वप्न की भाव-कल्पना की सहायता से मानव के सम्पूर्ण शरीर का चित्रण एक मकान के रूप मे होता है और मकान के हरेक भाग से शरीर के हरेक अंग की ओर संकेत होता है। कमरे की छत से, जो घृणास्पद रेगनें वाले जन्तुओ की तरह मकड़ों से घिरी है, सिर के ऊपरी भाग की व्यंजना होती है। दरवाजों से शरीर की रन्ध्रों की ओर संकेत होता है। अगीठी मे भरी अग्नि की लपक से फेफड़े की अभिव्यक्ति होती है। रिक्त टोकरी हृदय को व्यक्त करती है। तथा थैले के आकार की वस्तु या अन्य कोई खोखली वस्तु मूत्राशय इत्यादि के प्रतीक है। इस प्रकार एक ही प्रतीक से स्वप्न मे विभिन्न अगों का प्रतिनिधित्व भी होता है। यह प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति, विस्थापन तथा रूपान्तरण स्वप्न मे क्यों होता है! निद्रा मे अहं निष्क्रिय नही हो जाता; वरन् स्वप्नदृष्टा को अनेक रोमांचकारी अनुभूतियाँ होती हैं। अहं के सक्रिय रहने से शरीर-संबंधी उत्तेजनों का उचित रूपान्तरण स्वप्न की अनुभूति की निरन्तरता बनाये रखने के लिये होता है।

इस प्रकार स्वप्न-व्याख्या के लिये एक सूची-सी तैयार हो जाती है और स्वप्न प्रतिमाओं द्वारा शरीर-संवेदनों, अंग-अवस्थाओं और अन्य उत्तेजनों के विषय मे निष्कर्ष निकाला जा सकता है। परन्तु स्करनर और वालकेल्ट के इस शारीरिक व्याख्या का विशेष समर्थन नहीं हुआ; बल्कि यह तत्वहीन माना गया। फ्रायड ने इसपर आक्षेप किया: "यह प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति

स्वप्न-व्याख्या की प्राचीन विधि की ओर इंगित करता है। भेद केवल यह है कि इसमे व्याख्या मनुष्य के शरीर तक ही सीमित है।"[1] वस्तुत: शरीर-संबंधी उत्तेजनाएँ सदैव उपस्थित रहती है और मस्तिष्क मे इनका आवाहन जागृतावस्था से अधिक निद्रावस्था मे होता है। प्रश्न उठता है: मस्तिष्क निरंतर स्वप्न क्यो नहीं देखता और यह इसका दैनिक अनुभव क्यों नहीं है, अथवा सभी अंगों के स्वप्न क्यों नहीं आते ! शरीर-सिद्धांत के विरोध मे यह भी आक्षेप है कि इसमे स्वप्न-प्रक्रिया निष्प्रयोजनात्मक प्रक्रिया मानी गयी है। यह फ्रायड के स्वप्न के 'इच्छा-पूरक' सिद्धांत के पूर्णत: विपरीत है। इस प्रकार यह व्याख्या वैज्ञानिक नही है। फिर भी स्करनर और वालकेल्ट के स्वप्न-सिद्धांत का महत्व है। इसका महत्व मुख्य रूप से यह है कि इसमे स्वप्न के मूल तथ्यों की विशेषताओं की ओर सकेत है जिनकी व्याख्या आवश्यक है और जिनसे नये ज्ञान की प्राप्ति अवश्यमभावी है। फ्रायड का भी कथन है: "यह निर्विवाद है कि स्वप्न मे शरीर के अगों और क्रियाओं का प्रतीकीकरण होता है। स्करनर का यह स्वप्न कि नवयुवकों की दो पंक्तियों का आमने-सामने पुल पर खड़े होकर एक दूसरे पर आक्रमण करना, फिर अपने स्थान पर लौटना तथा अत मे स्वप्नद्रष्टा का पुल पर बैठना और जबड़े से एक लम्बा दाँत खीचना; फिर वालकेल्ट का स्वप्न जिसमे दो दलों ने भाग लिया और अंत मे दाँत निकालने की क्रिया हुई—ऐसे जिन स्वप्नों की भरमार दोनों लेखकों ने कर दी है उनके कारण स्करनर के सिद्धांत मे निहित गूढ़ तथ्यों को बिना समझे अर्थहीन नही कहा जा सकता।"[2] फ्रायड के अनुसार भी कायिक प्रतीकों द्वारा अधिकतर शरीर, इसकी क्रियाओं और इससे संबंधित घटनाओं और जनन-मरण की अभिव्यक्ति होती है:

> "स्वप्नद्रष्टा अपनी बहिन और उसकी दो सखियों से मिला। उसने अपनी बहिन से तो नहीं, पर उन दोनों से हाथ मिलाया।"[3]
>
> "एक यात्री ने सिगरेट पीते हुये निरपेक्ष ढंग से सदूक खोला और कहा इसमे कोई भी वस्तु देखने की नही है। कर पदाधिकारी को विश्वास हो गया; फिर सोचा देख ही लिया जाय और उसे ऐसी वस्तुएँ

---

[1] फ्रायड:—द इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स, पृष्ठ २२१

[2] फ्रायड:—दि इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स, पृष्ठ २३

[3] फ्रायड:—लेक्चर्स ऑन साइकोऐनिलिसस, पृष्ठ १६५

मिलीं जिनपर प्रतिबंध था। यात्री ने लाचार होकर कहा 'ये तो रहेंगी ही'।"[१]

इन स्वप्नों मे प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हुई है और व्याख्या करने पर इनको फ्रायड ने शारीरिक काम-क्रिया से ही सबंधित पाया। युग ने ही नहीं, स्टेकल और केपलन ने भी इस पर आक्षेप किया और सबका ध्यान व्यक्तिगत भेद की ओर आकृष्ट किया। स्टेकल का यह सिद्धांत था कि हरेक व्यक्ति के स्वप्न-प्रतीक का निजी महत्व होता है। इससे प्रतीक-सिद्धांत मे बहुत प्रगति हो गयी।

अब तक यह उल्लेख किया गया है कि फ्रायड और उनके समर्थकों के अनुसार 'जल' कायिक प्रतीक है, अथवा यह 'जन्म' की अभिव्यक्ति है। जब स्टेकल ने इसकी व्याख्या का प्रयास किया उन्हें इसमे मानसिक अवस्था की अभिव्यजना दृष्टिगत हुई :

"मैंने एक विशाल जल का सोता देखा। इसमे बहुत सी धाराएँ थीं। एक धारा ऊपर की ओर और दूसरी नीचे की ओर बहती थी। लगता है एक तीसरी धारा भी थी। किंतु सतह पर प्रवाहरहित शांत जल था।"[२]

व्याख्या की जाय तो यह स्वप्न-प्रतिमा जिसमे जल की विभिन्न धाराएँ दृश्य होती है मानव मन की विभिन्न वृत्तियों की द्योतक स्पष्ट सिद्ध होती है।

"मै एक बड़े तालाब मे तैर रहा हूँ। आश्चर्य है कि जल के अदर तैरने का अभ्यास न होने पर भी मैंने गोता लगाया और नीचे जाकर शेल-फिश और सी-वीड ले आया।"[3]

इस स्वप्न से यह इंगित होता है कि स्वप्नद्रष्टा को अपनी विस्मृति पर क्षोभ है। किंतु उसे मन-रूपी तालाब मे गोता लगाने मे कठिनाई न पड़ी। कीमती खज़ाना उसे मिला। मन की गहराई और समुद्र की गहराई सदैव सदृश होती है।

---

[१] फ्रायड :—लेक्चर्स ऑन साइकोऐनिलिसस, पृष्ठ १६६

[२] स्टेकल:—दि इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स, पृष्ठ ११३

[3] स्टेकल:—दि इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स, पृष्ठ ११४

स्टेकल ने फ्रायड के ही एक रोगी के स्वप्न की व्याख्या की है जिससे स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार स्टेकल की स्वप्न-व्याख्या फ्रायड से भिन्न रही :

> "ग्रीष्म ऋतु मे झील के पास रहते वह अपने को झील के श्याम जल मे वहाँ पर फेक देती है जहाँ पीतवर्ण चाँद का प्रतिबिंब पड़ता है।"[1]

फ्रायड के ग्रंथों मे 'जल' जन्म का प्रतीक माना गया है। इस कारण जल मे पड़े रहने से तात्पर्य्य 'जन्म' से है। 'पीला चाँद' श्वेत स्राव का प्रतीक है जिसमे शिशु का जन्म होता है। अर्थात्, यह स्वप्न इस बात का द्योतक है कि रोगी मनोविश्लेषण की चिकित्सा द्वारा पुनर्जीवन की आकांक्षा रखता है। स्टेकल की व्याख्या के अनुसार इस स्वप्न द्वारा विश्लेषक के प्रति स्वप्नद्रष्टा की अश्रद्धा के भाव की अभिव्यक्ति होती है। उसके लिये 'श्याम जल' मन का प्रतीक है। 'जब तक ग्रीष्म का आगमन न होगा, वह श्याम जल मे पड़ी रहेगी'—इसका अर्थ है जब तक ग्रीष्म नही आ जाता और वह चिकित्सक से मुक्त नही होती, वह ज्ञात मन मे अज्ञात मन की स्मृतियों और वेदनाभरी अनुभूतियों का पुनरावाहन नहीं कर सकती। 'पीले चाँद' से फ्रायड की ओर संकेत था क्योंकि वह सूर्य नही था जो उसके जीवन मे उष्णता और प्रकाश लाता; वह तो पीला निर्जीव चाँद था जिसमे मोहक शीतलता भी नही थी। इसका समर्थन तब होता है जब रोगी चिकित्सक की ओर संकेत करके कहती है—"मै तो उस समय की बाट देख रही हूँ जब तुम अवकाश पर होगे और मै झरने के समीप पर्वत के स्वच्छ वायु मे विचरण करूँगी। तभी मै अपने मन के उन गूढ़ भावों को प्रदर्शित करूंगी जिन्हे तुमसे छिपा रखा है। मेरे आभ्यतर मे तुम्हारे अहं की ही छाया है।"

स्वप्न मे 'गांठ खोलने का प्रयास' जटिल समस्या को सुलझाने का प्रतीक होता है, 'पहरेदार' चेतन क्रिया का, और 'अजायबघर' मस्तिष्क का जिसमे स्मृतियाँ एकत्रित हुई है। मस्तिष्क का द्वारपाल ज्ञात मन है और इसका कार्य मस्तिष्क मे संचित अतुल धन-राशि की रखवाली करना है। 'मोटर के यंत्र' से मन की जटिलता व्यक्त होती है। 'घड़ी का घंटा' अज्ञात मन के क्रियात्मक स्वभाव का द्योतक है। औटोमोबाइल का स्वप्न इस ओर इंगित

[1] स्टेकल:—दि इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स, पृष्ठ ११५

करता है कि किस प्रकार मानव की बलवती संवेगात्मक इच्छाएँ अभिव्यक्ति का नवीन रूप प्राप्त करती हैं।

मानसिक प्रतीकों के विषय पर युंग ने विशेष प्रकाश डाला है। उनका तो यह मूल सिद्धांत ही रहा कि गूढ़ स्तर पर अनुभव की हुई मानसिक अवस्थाओं की अभिव्यक्ति सामान्यत: स्वप्न मे होती है, अथवा सामूहिक अज्ञात मन की 'भाव-प्रतिमाओं' का स्वप्न मे चित्रण होता है :

> "एक अपरिचित स्त्री उसके सम्मुख आई। कभी तो उसे दोषी ठहराती है, कभी ताड़ना करती है, और कभी प्रेम-भाव प्रदर्शित करती है।"

'अपरिचित स्त्री' स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' का द्योतक है। यह पुरुष मे स्त्रीत्व की विशेषता है। हरेक व्यक्ति मे पुरुष-गुण और स्त्री-गुण विद्यमान होते है। ज्ञात और अज्ञात मन पूरक है, विरोधी नहीं। जब पुरुष मे स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' का प्राधान्य रहता है, उसमे पुरुषत्व का अभाव मिलता है और उसकी मखौल होती है; जब स्त्री मे पौरुष सूचक 'एनिमस' की प्रधानता रहती है उसमे स्त्री-सुलभ कोमलता आकर्षण और लोच नही रहती। परन्तु यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि पुरुष की प्रतिमा स्त्री मे और स्त्री की प्रतिमा पुरुष मे अनिवार्य्य है। कायिक विकास की दृष्टि से भी पुरुष-गुण का बीज स्त्री मे और स्त्री का पुरुष मे होना स्वाभाविक है और यह प्राकृतिक नियम है। काम-विज्ञान मे भी यह प्राकृतिक माना गया है। स्त्री के हौरमोन्स और पुरुष के हौरमोन्स की प्रधानता के अनुरूप यह निर्धारण होता है कि व्यक्ति पुरुष वर्ग का है या स्त्री वर्ग का। भाव-प्रतिमाएँ मानसिक क्षेत्र के आवश्यक अंग हैं। मनुष्य अपने प्रकृत स्वभाव की अवहेलना नहीं कर सकता; वह एक प्रकार से उसका दास है। इस संबंध मे एक मोहक दृष्टांत है :

> "वह बहुत सी स्त्रियों से घिरा है। खुलकर हास्य-विनोद, व्यंग्य-कटाक्ष करना चाहता है। पिता की उपस्थिति होने से उसने उन लोगों से कहा 'अभी रुको, पिता को बिदा दे दूँ'।"

यह स्वप्न इतना सरल साधारण नही जैसा बाह्य रूप मे दृष्टिगत होता है। यह इस बात का द्योतक है कि स्वप्नद्रष्टा का व्यक्तित्व अज्ञात मन से संचालित है। किंतु अज्ञात मन की इच्छाओं के वश मे वह एकांगी रूप से नहीं है कि वह

अपने आदर्शों और मूल्यों की अथवा नैतिक मन के आदेशों की पूर्ण अवहेलना कर बैठे। पिता रूढ़ि-परम्परा, अध्यात्म, तर्क-दर्शन का प्रतिरूप है। स्वप्नद्रष्टा मे कर्त्तव्य और दायित्व की चेतना बनी रही। चेतना होते हुये भी आदर्श और मूलवासना (इड) संबंधी इच्छाओं के संघर्ष मे वह अज्ञात मन की स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' की ही ओर झुका।

"एक पुरुष ने स्वप्न मे देखा कि एक अपरिचित स्त्री उसका पीछा कर रही है। वह गोलाकार चक्कर काटने लगता है।"

'अपरिचित स्त्री अज्ञात मन की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है; उसे प्रलोभन मे फाँसना चाहती है। वह उसे चकमे देती है और अन्ततोगत्वा अपने जाल मे फांस लेती है।

"स्वप्नद्रष्टा, चिकित्सक, वायुयान चालक और अपरिचित रमणी वायुयान मे भ्रमण कर रहे है। एकाएक एक गेंद से शीसा टूट जाता है जो कि वायुयान के लिये अनिवार्य यंत्र है। वायुयान नीचे गिर जाता है।"[१]

इस प्रसंग मे चिकित्सक, वायुयान चालक और अपरिचित रमणी अनहं (नौन इगो) की विशेषता के प्रतीक है। सभी अपरिचित है और उनको कोई ज्ञान नही है। जिस अज्ञात मन का इसमे मानवीकरण हुआ है, उसने चाहा कि भौतिक बधन से भागकर हवा मे दौड़ लगावें। पर वह गिर पड़ता है। इसका अभिप्राय है कि मनुष्य कभी भी प्रकृत इच्छाओं की पूर्त्ति नहीं कर सकता और इस कारण उनके साथ अपना एकीकरण नही स्थापित करना चाहिये। इससे व्यवहार-व्यक्तित्व मे विच्छेद हो जाता है। यह स्वप्न इस बात का सूचक है कि उस व्यक्ति पर अज्ञात मन की प्रभुता है।

"वह समुद्र के तट पर बैठा है। समुद्र मे भयंकर तूफान आता है और कगारा काटता बीच की सब वस्तुओं को बहा लेता है। तब वह अपने को एक सुनसान द्वीप मे बैठे पाता है।"

इस दृष्टांत मे समुद्र 'सामूहिक अज्ञात मन' का प्रतीक है जो अग्राह्य है और जिसके बारे मे मानव का ज्ञान सदैव से अधूरा रहा। मन का यह भाग समुद्र-सदृश गहरा है और इसमे बहुत समृद्ध 'भाव-प्रतिमाएँ' हैं जो युगों से मानव की निजी पैतृक सम्पत्ति रही है। समुद्र कगारा तोड़ता सभी वस्तुओं

---

[१] सी० जी० युंग :—इन्टेग्रेशन ऑफ पर्सनैलटी, पृष्ठ १३७

को अपने साथ बहा लेता है—यह इस बात का सूचक है कि अज्ञात मन की अवांछनीय इच्छाएँ प्रकट हुई है और ज्ञात मन मे उनकी बाढ़-सी है। इस प्रकार का तूफान असंगत है और यह व्यक्तित्व के आकस्मिक परिवर्त्तन की ओर इंगित करता है। अज्ञात मन के भाव का विस्फोट न होने से स्वप्न-द्रष्टा एकांत स्थान पर जाने के लिये बाध्य हुआ। सभव है कि व्यक्तिगत भाव-इच्छाओं की अभिव्यक्ति नग्न रूप मे हो जाने से उसे क्षोभ-ग्लानि हुई और उसने अपने को सबसे सुदूर निर्जन स्थान मे रखना चाहा। यह भी सभव है कि सर्जनात्मक शक्ति का बीज जो निचले स्तर मे अन्तर्हित है, उससे वह एकात-एकाकी जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य हो गया है जो नयी रचना का स्रोत है। अन्तोत्गत्वा स्वप्नद्रष्टा एकांतवासी बनता है।

> "माँ एक बर्तन से दूसरे मे जल डाल रही है। यह कार्य वह बड़ी विधि के साथ सम्पादन करती है मानो सब के लिये बडे महत्व का है। तब वह पिता से वहिष्कृत किया जाता है।"[1]

इस स्वप्न मे युग की व्याख्या के अनुसार पिता सामूहिक चेतना अथवा रूढ़ि-परम्परा का प्रतीक है; माँ सामूहिक अज्ञात मन का, जो मानव के जीवन का स्रोत है। पुरुषो मे स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' बड़ी बली होती है और इसी से माँ जो उसका प्रथम स्वरूप है जन्म से ही पुत्र को बडी प्रिय लगती है। माँ की ओर अत्यधिक आकर्षण रहता है। बहन और अन्य युवतियों के सम्पर्क मे आने पर इसका विस्थापन होता है और युवक माँ के स्थान पर अन्य युवतियों के प्रति विमुग्ध होता है। यह मानसिक सत्ता जीवनदायक है जो पिता के आदर्शो के विरोध मे क्रियमाण रहती है। तभी तो वह पिता से वहिष्कृत किये जाने का स्वप्न देखता है। पिता से वहिष्कृत होना जाति के बाहर होना है। माँ का एक बर्त्तन से दूसरे बर्त्तन मे जल डालना मानसिक सत्ता को जीवन-दान देना है। अधिकतर युवक अपनी मातृ सूचक 'मदर इमेजो' के अनुरूप पत्नी चुनता है।

'जाल के मकड़ा' द्वारा अज्ञात मन की केन्द्रीय प्रक्रिया की अभिव्यक्ति सुन्दर रूप मे हुई है। अविच्छिन्न पर यह चुबक का कार्य करता है और एक-एक कर सब एकत्रित कर लेता है। जिनसे केन्द्रीय भाग का चित्रण होता है वे

---

[1] सी० जी० युंग:—इन्टेग्रेशन ऑफ पर्सनैलटी, पृष्ठ ११३

'मन्डल सिम्बौलिज्म' हैं। व्यक्तिगत अज्ञात मन लजालू की तरह केन्द्र के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता है—कुछ आकर्षित, कुछ भयभीत, भागा-भागा सा रहता है—फिर भी उसी के इर्द-गिर्द। केन्द्रीय प्रक्रिया अदृश्य है; केवल लौकिक प्रतीक के रूप मे ही इसकी अभिव्यक्ति हो सकती है।

इस भाँति युंग ने स्वप्न के अनेक दृष्टांत दिये हैं जिनमे मानसिक सत्ताओं का सुन्दर चित्रण मिलता है। वस्तुत: स्वप्न मे भावात्मक प्रतिमाओं का स्वाभाविक और स्वत: प्रदर्शन होता है जिनके द्वारा केन्द्रीय प्रक्रिया की विशेषता का भली-भाँति परिचय मिलता है। इन भाव-प्रतिमाओं की, जिन रूपों मे स्वप्न मे अभिव्यक्ति हो, व्याख्या करके अज्ञात मन के बारे मे ज्ञान किया जा सकता है।

फ़िस्टर ने अपने ग्रंथ मे सिलबरर के एक 'क्रियात्मक प्रतीक' का दृष्टात उद्धृत किया है :

"मै एक गुब्बारे मे यात्रा के लिये निकला। फ्रौएन्फेल्ड के पड़ोस के खेत मे मै टोकरी से निकल ऊपर चढ़ने लगा। रास्ते के टिकट के लिये मै एक सौ फ्रॉक्स खर्च कर चुका था। मुझसे कुछ और माँगा गया क्योंकि यात्रा निश्चित योजना से लबी हो गयी थी। मुझे भय था कहीं आठ सौ या हज़ार फ्रॉंक्स न देना पडे। मुझे लगा यह मुझसे कहा जा रहा है। चिता घेरी, इतना धन कहाँ से लाऊँ। सब तो राइफल क्लब मे खर्च कर दिया है और मौसम अच्छा न होने से कुछ कमा भी न सका। मेरा साथी एम भी मेरे साथ था। अकस्मात् देखा कि उसी टोकरी मे इंजीनियर एन भी बैठे है जिनका शरीर हिलने से गुब्बारा भी हिल सकता था। मेरी निद्रा खुल भी गयी।"[१]

गुब्बारा की यात्रा विवाह का प्रतीक है। फ्रौएन्फ़ेल्ड मे डेरा डालना वर्त्तमान स्थिति का द्योतक है। पत्नी को विवाह-बंधन अप्रिय है। परिवार मे धन का अभाव है और धन रहने पर ही प्रेम रहता है। इस स्वप्न का अभिप्राय है : विवाह संबंध बनाये रखने के लिये अधिक धन आवश्यक है और इसी से पारस्परिक प्रेम मे वृद्धि होती है जो मेरे वश की बात नहीं। यह स्वप्न 'प्रतिबंध प्रतीक' मात्र है। स्वप्न की सभी वस्तुएँ—पात्र, टोकरी,

---

[१] फ़िस्टर:—दि साइकोएनेलिटिक मेथड, पृष्ठ ३९६

फ्रौएन्फेल्ड, धन, शूटिंग, मित्र, इंजीनियर इत्यादि—प्रतिबंध सूचक हैं। इनके द्वारा यह भी प्रकट होता है कि क्योंकर स्वप्नद्रष्टा अपना प्रेम-भाव नही त्यज पा रहा है। प्रतिबध-प्रतीकों द्वारा अधिकतर एक ओर आकर्षण-भाव की अभिव्यक्ति होती है और दूसरी ओर विरोध-भाव की।

उपर्युक्त दृष्टांत कायिक और मानसिक प्रतीकों के हैं। इनके अतिरिक्त धार्मिक प्रतीक भी मिलते है। धार्मिक प्रतीकों के बारे मे विवेचना युग और स्टेकल के ग्रंथों मे मिलती है। धर्म-अधर्म नीति-अनीति के तथ्यो का स्वप्न मे पृथक रूप से अवलोकन करना दूरदर्शिता है। युग ने ऐसे कई स्वप्नों का उल्लेख किया है जिनमे अज्ञात मन की आध्यात्मिक प्रवृत्ति की छाया स्पष्ट दृष्टिगत होती है। इन स्वप्नों को धार्मिक वर्ग का समझना दोष नही। 'अग्नि' देवत्वगुण का प्रतीक होता है। 'क्वैटरनिटी' धार्मिक सम्प्रदाय का द्योतक होता है। जब स्वप्नद्रष्टा जलती मोमबत्तियाँ विशिष्ट व्यवस्था मे सजी विचित्र चार पिरैमिड की भाँति कोण के आकार मे रखी हुई देखता है तब यह सख्या चार की प्रतीकात्मक महत्ता का द्योतक है। 'संख्या चार' की धार्मिक महत्ता होती है। यह अविभाजित गोलाकार, पुष्प, कमरे का चौखूटा स्थान, चतुर्भुज, ग्लोब, घड़ी, सुरचित बाग जिसके बीच मे फौवारा हो, नाव अथवा वायुयान मे चार उपस्थित व्यक्ति, मेज़ के चारों ओर चार कुर्सी, चार रंग, आठ अरों की पहिया, गोल टोपी, चार नेत्रों का भालू, चौखूटा कारागार और घड़ी जिसका चक्र बत्तीस भागों मे बटा हो—के रूप मे प्रकट होता है। इस 'सख्या चार' की महत्ता पर स्वप्न मे बहुत बल दिया गया है और इसका उद्गम अज्ञात मन मे ही माना गया है। धार्मिक ग्रंथों के अध्ययन से यह पुष्टि होती है कि 'संख्या चार' का धार्मिक महत्व होता है। आदिकाल से गोलाकार का अर्थ है देवता। ग्रीक दार्शनिक प्लेटो के समय से ही गोलाकार की प्रतिमा 'सम्पूर्ण' का द्योतक मानी गयी है। एम्पेडौकिल्स ने केवल चार तत्त्वों का अस्तित्व स्वीकार किया है। प्राचीन काल मे यह दृढ़ विश्वास प्रचलित था कि ईश्वर ने पहले चार तत्त्वों के निर्माण मे ही अपने को व्यक्त किया। 'गोलाकार' का चार भाग मे विभाजन होता है। 'सख्या चार' सत्य के अंश को प्रकट करता है। यह प्राचीन ऐतिहासिक प्रतीक है और इस प्रकार इसका संबंध सदैव विश्व के रचैयता ईश्वर से है। क्वैटरनिटी प्रतीक का एक दृष्टान्त है जिसकी व्याख्या करने पर इसकी धार्मिक महत्ता स्पष्ट हो जाती है :

"स्वप्न मे गोलाकार दिखाई पडा। गोलाकार सूर्य मे परिवर्त्तित हो गया और स्वप्नद्रष्टा के चारो ओर घेरा बना लिया। फिर घड़ी के रूप मे दिखलाई पडा—एक गोलाकार जिसमे केन्द्रीय भाग था चौकोर शहर के रूप मे प्रकट हुआ और तब चौकोर गोलाकार के चाल मे होता हुआ विलीन हो गया।"[१]

यह स्वप्न रोगी के मानसिक क्षेत्र मे परिवर्त्तन और प्रौढता का द्योनक है। उसमे आध्यात्मिक दृष्टि से परिवर्त्तन हुआ है। इसी प्रकार गिरजाघर का स्वप्न[२] भय से मुक्ति पाने के लिये व्यक्ति का धर्माश्रित होना इगित करता है। यह धर्म द्वारा जीवन के दो विपरीत भागो मे समन्वय लाने का प्रयास है। वह स्वप्न जिसमे अपरिचित युवती सहमत नहीं होती और चली जाती है, इसका सूचक है कि स्वप्नद्रष्टा मे धार्मिक परिवर्त्तन हुआ है, अथवा स्वप्नद्रष्टा ने अपने को स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' के चगुल से स्वतत्र कर लिया है।

स्टेकल ने इस संबध मे सुदर दृष्टात दिया है। स्वप्न ऐसे सजीले नवयुवक का है जिसमे नवयुवतियो का ध्यान आकर्षित करने का विशेष गुण था और उस सहारे वह अपने व्यक्तित्व की प्रकृत मागो को आमोद-प्रमोद से बहला लेता था। परन्तु वास्तव मे वह दैवी कोप से डरता था। नवयुवक स्वप्न देखता है :

"कक्षा मे मेरी धर्म-ज्ञान की परीक्षा होने वाली है; मै इसके लिये तयार नही था। शिक्षक के पास एक बड़ा मोटा रजिस्टर है जिसमे मेरे करतूतों का पूरा ब्योरा है। चिता और धड़कन के साथ मै जग जाता हूँ।"[3]

इस स्वप्न का धार्मिक महत्व है और यह दैव के प्रति अज्ञात मन के भय के भाव का द्योतक है। निद्रावस्था मे नीति-भाव जागृत हुआ। उसे अनुभूति हुई कि कोई उससे उसके आचरण का विवरण पूछ रहा है, जिसके लिये वह तैयार न था और उसे चिंता हुई।

---

[१] सी० जी० युंग :—इन्टेग्रेशन ऑफ पर्सनैलटी

[२] सी० जी० युग :—साइकॉलजी एन्ड रेलीज़न, पृष्ठ ४२

[3] स्टेकल :—इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स, पृष्ठ ६४

एक और दृष्टांत है जिसमे स्त्री अपनी पुत्री से विमुख थी :

"मैंने अपनी छोटी पुत्री को देखा। वह दुबली-पीली हो गई है और हाथ जोड़कर मानो विनती कर रही है—'माँ! मेरे पास आओ'।"[१]

"मै धर्म-पाठ की कक्षा मे बैठा हूँ और शिक्षक मेरी परीक्षा लेना चाहता है। प्रसंग की आवश्यक बाते भूल गयी है। तब शिक्षक हम सबको कुछ रोचक बातें सुनाता है। मै सब नोटबुक मे लिख लेता हूँ और अपने ड्रावर मे बंद कर देता हूँ।"[२]

'नोटबुक' स्मृति का द्योतक है और 'ड्रावर' अज्ञात मन का। स्वप्न से यह प्रदर्शित होता है कि शिक्षक ने स्वप्नद्रष्टा से जो कुछ धर्म की कथाएँ कही उसे वह चेतना स्तर पर भूल गया। परन्तु उसकी अमिट छाप अज्ञात मन पर पड़ चुकी थी। उसके अज्ञात मन मे आध्यात्मिक भावनाएँ थी जिनसे ज्ञात मन परिचित नही था। इस प्रकार यह स्वप्न अज्ञात मन की धार्मिक भाव-ग्रंथियो की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है।

फ़िस्टर ने जो स्वप्न का वर्णन किया है उसका विवरण धर्म और काम दोनों ही प्रसगो मे दिया जा सकता है। यह स्वप्न तीस-वर्षीय स्त्री का है जो सिफलिस रोग से ग्रस्त थी। उसने स्वप्न देखा :

"मै एक रमणीय फौवारा से जल पी रही हूँ। मेरा हाथ प्याले का काम कर रहा है। जल स्वच्छ है, परन्तु उसमे मच्छ और काई है। फौवारा नाव सदृश जान पड़ा—अकस्मात् मै उसपर खड़ी हो गयी और उस इमारत को गिरजाघर समझकर उसकी एक ओर की दीवार की सफाई कर दी, यद्यपि यह विशेष गंदी न थी। इस रिज़रवायर मे मैं ऊपर चढ़ती ही गई। गिरने का भय बराबर था। मेरे पति वहाँ खड़े थे। आश्चर्य यह था कि उन्होंने मेरी सहायता नहीं की। जब मै चिंता से भरी चोटी पर पहुँची, सब साफ-स्वच्छ हो चुका था। दीवार और भी ऊँची चली गयी थी। मै चबूतरे पर पहुँच गयी। दीवार गायब हो गयी और चिंता मे घबड़ाकर मै एक बुरी गंध के नाले मे गिर गई। एक बार मै चोटी पर पहुँच चुकी थी जब पास्टर पी

---

[१] स्टेकल :—इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स

[२] स्टेकल :—इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स, पृष्ठ ९२

स्वयं चिंतित होते। धैर्य्य बाँधे मेरी चिंता हटाने का वह प्रयास कर रहे थे। उन्होंने मेरे साथ नीचे की ओर मे सफर की जहाँ मुझे हवा मिल सकी। आँखें भी मलकाया, परन्तु वह भय से काँप रहे थे। तदुपरांत अंधकार कम हुआ और मेरे मन मे यह विचार उठा कि यहाँ चलने के लिये स्थान नही हैं। किसी प्रकार हमलोग साथ बढ़े। नीचे की ओर एक सुदर बाग था। आधौ ही दूरी पर थी कि मुझे आभास हुआ कि यह उसी पहाड़ी के सदृश है जिसपर मै रहती थी। नीचे मेरे पति मुस्कुराते खड़े थे।"[1]

इस स्वप्न मे जल, नाव, पास्टर आदि का अर्थ, धर्म और काम दोनों ही भाव से संबंधित हो सकता है। धार्मिक भाव-कल्पना विशेष रोचक है। गिरजाघर के सम्मुख फौवारा सदृश रिज़रवायर था। प्याले के सदृश हाथ प्रार्थना-भाव की ओर इंगित करता है। चबूतरे पर खड़ा होना और सच्चे सेवक की तरह झाड-पोंछ करना धर्मचारी की सेवा-भावना का द्योतक है। ईडन के बाग मे उसका और उसके पति का स्वागत हुआ।

अब उन स्वप्नो के सबध मे विचार करना है जिनका नैतिक महत्व होता है। स्टेकल ने इस वर्ग के स्वप्नो की व्याख्या विशेषतः की है। 'दाहिना' और 'बाँया' का सकेत नैतिक भाव-कल्पना की ओर है और ये सामाजिक संबंध और जीवन के मूल्यों की ओर के झुकाव को इगित करते है। 'दाँया' उत्कृष्ट कार्य का द्योतक है; 'बाँया' अपराध का। 'दाँया' विवाह और मानवीय पवित्र सबंधों को अभिव्यक्त करता है; 'बाँया' अनाचार इच्छा और विकृत कामवृत्ति का प्रतिरूप है। 'दाँया' वफादारी और रूढ़ीवादी को व्यक्त करता है; 'बाँया' विद्रोह की प्रवृत्ति को। इन प्रतीकों के महत्व की ओर फ्लुगल ने भी ध्यान आकर्षित किया है। फ्लुगल का कथन है: "दाँया माता-पिता और उनके स्थानापन्नों के प्रति वफादार रहने की सामान्य मानवीय प्रवृत्ति है; 'बाँया' युवकों की अन्य व्यक्तियों के प्रति विद्रोह की मनोवृत्ति की ओर इंगित करता है।"[2] इसी प्रकार 'थैला' जीवन-यात्रा मे पाप के बोझ का प्रतीक है। बात यह है कि स्टेकल के अनुसार स्वप्न का उद्येश्य अधिकतर 'ऐनेगौगिक' होता है। मानव का प्रकृत

[1] फ़िस्टर :—दि साइकोऐनेलिटिक मेथड, पृष्ठ २५१

[2] फ्लुगल :—मैन, मौरल्स एन्ड सोसाइटी, पृष्ठ २८५

झुकाव ऊपर की दिशा, अथवा उच्च मूल्यों की ओर रहता है। यही कारण है कि आदर्श अहं का विकास होता है। वस्तुतः स्वप्न स्टेकल के शब्दो मे 'कैटेगौगिक' और 'ऐनेगौगिक' के समन्वय का प्रयास है। स्टेकल ने अनीति की पृष्ठभूमि मे नीति का प्राबल्य पाया और इसी से उन्हें स्वप्नों मे मूलतः धार्मिक और नैतिक भाव दृष्टिगत हुये। स्टेकल के स्वप्न-प्रतीकवाद का नीति और धर्म पर अवलंबित होना स्वप्न के सिद्धांत के लिए एक नवीन देन रही।

"वन मे मैंने एक पशु हलाल किया। जब मेरा उसके रखवालों से साक्षात् हुआ, मुझे भय लगा। मैंने उसकी तुरत खाल निकाली और चाहा कि उसे जमीन मे गाड़ दूँ। पर इतना समय नहीं था कि उसकी कब्र खोदी जा सके। तब मेरे मन मे यह विचार उठा कि भीतरी चमड़े को बाहर करूँ और बाहरी फर के साथ उसे काम मे लाऊँ। मैंने ऐसा ही किया और लबादा पहन लिया। यह बहुत ही सुंदर और मुलायम था। रखवाला न जान सका कि मैंने क्या किया है।"[१]

इस स्वप्न का महत्व-मूल्य नैतिक है। स्वप्नद्रष्टा अपराध-प्रकृति पर विजय पाने के लिये इच्छुक था और वह अपने अमानुषिक विचारों और इच्छाओं का दमन करना चाहता था। इसीसे वह स्वप्न मे एक स्नेही माँ का नाटक खेलता है। स्टेकल के कथन मे सर्वत्र यही स्पष्ट मिलता है कि जितना अधिक मनुष्य जाग्रतावस्था मे प्रवृत्तिशील होता है उतना ही अधिक वह निद्रावस्था मे नैतिक और धार्मिक भाव-विचारों मे गोता लगाता रहता है। अपने ग्रंथ 'इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स' मे स्टेकल ने यह स्पष्ट किया है कि स्वप्न के पात्र भिन्न-भिन्न गुणों—उद्वेग, प्रेम, पाप-पुण्य इत्यादि—के प्रतीक होते है। साधारणतः जिसके प्रति अवज्ञा का भाव होता है उस व्यक्ति का स्वप्न बार-बार देखना आश्चर्यजनक होता है। स्टेकल के अनुसार ऐसे व्यक्ति किसी गुण या विचार के प्रतीक हैं।

अब ऐसे स्वप्नों को उद्धृत करना है जो बहुमुखी प्रकार के है :

"मै एक बड़े गोल बाग मे था। बाग के पीछे एक ढालू ढूहा था। मै इसके चोटी पर चढ़ गयी। मैंने देखा कि जल बहुत दूर तक फैला है। मंद वायु कुछ बढ़ी और अपनी क्षुद्रता का अनुभव किया। मैं विचार

---

१ स्टेकल :—इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स, पृष्ठ ६७

मे मग्न हो गयी। मेरा पैर फिसला। मै गिरने वाली ही थी कि मैंने अपने को एक अपरिचित के हाथों मे पाया।"

'चोटी पर चढ़ना' स्वप्नद्रष्टा की आकांक्षा का सूचक है; 'जल का विस्तार' अज्ञात मन की समृद्धता का; वायु' हृदय की धड़कन का; और 'पैरों का फिसलना' आचरण की दृष्टि से पतित होने का सूचक है। अपरिचित व्यक्ति द्वारा युवती की पौरुष सूचक 'एनिमस' का प्रतिनिधित्व होता है। यह स्त्री मे पुरुषत्व की विशेषता है। युवती के 'एनिमस' का बाह्यीकरण अपरिचित व्यक्ति के रूप मे हुआ और उसकी रक्षा हो गयी।

यह स्वप्न इस मनोवैज्ञानिक सत्य का द्योतक है कि एक ही स्वप्न मे भिन्न-भिन्न वर्गों के प्रतीकों का समागम हो सकता है। जैसे 'गोल' अज्ञात मन की धार्मिक आध्यात्मिक क्रिया का प्रतीक है—इस कारण यह धार्मिक वर्ग का प्रतीक हुआ। 'वायु का बहना' कायिक प्रतीक है, क्योंकि यह शारीरिक संवेदन, हृदय की धड़कन का प्रतीक है। 'पैर का फिसलना' नैतिक प्रतीक है। इसमे आचरणहीन होने की सूचना है। और 'सागर का जल' मानसिक प्रतीक है।

"मै विशाल समुद्र मे तैर रही हूँ। एकाएक मुझे अनुभव हुआ कि जल मे लहरें उठ रही है। तूफान का पूरा लक्षण था। किनारे की ओर पहुँचने का प्रयास किया; न पहुँच पायी। लहरों का थपेड़ा खाते आगे बढ़ी। डूबने ही वाली थी कि देखा एक जहाज मेरी ओर आ रहा है। आशा बंधी। उल्लास हुआ और मै जग गयी। लहरें 'गोल आकार' मे थीं।"

इस स्वप्न मे आदर्श भाव और मूलवासना के संघर्ष मे आदर्श भाव की विजय होती है। समुद्र का तूफान, लहरों के थपेड़े अज्ञात मन के हलचल के द्योतक है और इस प्रकार यह मानसिक प्रतीक का दृष्टांत है। इस स्वप्न का संकेत मनुष्य के नैतिक और धार्मिक आदर्शों की ओर भी है। स्वप्नद्रष्टा की समुद्र के तूफान के साथ मुठभेड़ जन्म-क्रिया का द्योतक है और इस प्रकार यह कायिक प्रतीक रहा। सागर मे लहरों का गोल आकार लेना अज्ञात मन की धार्मिक क्रिया का द्योतक है। वस्तुतः स्वप्न की व्याख्या बहुत कुछ स्वप्न-द्रष्टा के स्वभाव और परिस्थिति पर निर्भर करती है।

स्वप्न और प्रतीकवाद

स्वप्न-प्रतीकों के विवरण और वर्गीकरण के पश्चात् स्वप्न-व्याख्या की विधियों के मूल्याकन के प्रश्न पर विचार करना प्रसग के अनुकूल है। व्यावहारिक दृष्टि से मनोवैज्ञानिक क्षेत्र मे फ्रायड की स्वप्न-व्याख्या विशेष वैज्ञानिक है और इससे स्वप्न की समस्या पर नये दृष्टिकोण से विचार हो सका है। स्वप्न-व्याख्या की दो प्रमुख विधियाँ है : 'अबाध मन: आयोजन विधि' और 'प्रतीक विधि'। यो तो स्वप्न-व्याख्या बहुत कुछ स्वप्नद्रष्टा द्वारा दिये स्वतंत्र सबधो पर निर्भर होती है, परन्तु इसमे कुछ ऐसे तथ्यों का भी समागम है जो स्वतत्र रूप से क्रियमाण रहते है। प्राय. ऐसी भी वस्तु-घटनाओं का चित्रण स्वप्न मे मिलता है जिनके बारे मे स्वप्नद्रष्टा शात रहता है और किसी प्रकार का स्वतत्र सबध नही दे पाता। वस्तुत: ऐसी संरचनाएँ अज्ञात भाव-कल्पनाओं के प्रतीक होते है और उनकी व्याख्या भी तद्नुकूल ही होती है। फ्रायड का कथन है : "हमे यह विदित है कि प्रतीकों का अनुवाद किसी प्रकार संभव है! स्वप्नद्रष्टा इनका मुक्त रूप से प्रयोग करता है, किंतु वह यह नहीं जानता। सभव है स्वप्न का अर्थ स्वप्न-व्याख्या के पूर्व ही स्वप्न सुनते मात्र स्पष्ट हो जाय जब कि स्वप्नद्रष्टा मे आश्चर्य का ही भाव उठे।"[१] मनोविश्लेषण मे 'अबाध मन: आयोजन' और 'प्रतीक विधि' एक दूसरे पर निर्भर नही मानी गयी है। प्रतीक-विधि मे स्वप्न के विषय-वस्तु-भाव-विचार को अन्य विषय-वस्तु-भाव-विचारो से स्थानापन्न किया जाता है जो अधिक स्पष्ट, अर्थयुक्त और सत्य हों। इस प्रकार विश्लेषक स्वप्नद्रष्टा के मन के गूढ़ भाव-इच्छा से अवगत हो जाता है। प्रतीकों के बारे मे पूर्ण ज्ञान होने पर ऐसे स्वप्नो की व्याख्या वृहत् रूप मे सहज ही दी जा सकती है, जिसमे प्रतीको का प्रयोग अधिकाश होता है। हरेक प्रतीक का एक स्थिर अर्थ मान लेने के कारण व्याख्या और भी सरल हो गयी है। स्वप्न मे प्रतीकों की प्रचुरता देखकर फ्रायड ने यह सिद्धांत स्थापित किया कि प्रतीकों के ज्ञान बिना स्वप्न-व्याख्या सभव नही है। किंतु स्वप्नद्रष्टा को प्रतिक्रिया देने के लिये तत्पर करना आसान कार्य नहीं, क्योंकि उसकी मनोवृत्ति कामात्मक होती है; उसके आभ्यन्तरिक क्षेत्र मे विरोध होता है। इस प्रकार फ्रायड और उनके अनुयायियों ने प्रतीक के स्वभाव, मूल तथ्यों और प्रक्रियाओं के निरूपण का प्रयास भले ही किया हो, वे किसी प्रकार से कोई निष्कर्ष न निकाल सके।

---

[१] फ्रायड :—न्यु इन्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स, पृष्ठ २३

फ्रायड की स्वप्न-व्याख्या विधि पूर्णतः विश्लेषणात्मक है—यह कि स्वप्न के तथ्य पूर्वागत अनुभूति अथवा बचपन की 'दुखःपूर्ण अनुभूतियाँ' मात्र है। फ्रायड ने स्वप्न की वस्तु-घटनाओं को वास्तविक तथ्यों का परिवर्त्तित रूप माना है, परन्तु उन्होंने यह कही उल्लेख नही किया है कि ये अज्ञात मन की आभ्यन्तरिक सत्ताओं के प्रतीकात्मक रूप हैं। युंग ने स्वप्न-व्याख्या मे 'विश्लेषणात्मक' और 'रचनात्मक' विधियों का समन्वय किया और इसी से यह स्थापित किया कि स्वप्न सदैव प्रयोजनशील होता है। स्वप्न का व्यक्तिगत और आभ्यन्तरिक गूढ़ अर्थ क्या है यह स्वप्नद्रष्टा के व्यक्तिगत विश्लेपण अथवा प्रश्नावली और स्वप्न-तथ्यो के महत्व का ज्ञान होने पर ही जाना जा सकता है। दृष्टांत के लिये, यह कि किस भाव-इच्छा को वास्तव मे व्यक्त करने के लिये अज्ञात मन ने सर्प को चुना है और यह स्वप्न मे दिखाई देता है। 'सर्प' कभी भी एक ही भाव-इच्छा-संवध का द्योतक नही हो सकता। अमुक प्रतीक का अमुक ही अर्थ नही होता। यह वस्तुतः स्वप्नद्रष्टा का जीवन के प्रति रुख, उसकी परिस्थिति इत्यादि के प्रसंग मे निर्धारित होता है। विश्ले-षणात्मक दृष्टि से यह पुरुष के काम-अंग का द्योतक है; रचनात्मक दृष्टि से यह खतरे का सूचक हो सकता है। मानव मे सर्प के प्रति स्वाभाविक भय रहता है; यह इसलिये नहीं है कि यह पुरुष के काम-अंग का प्रतीक होता है। युग का कथन है: "सर्प प्रतीक किसी भी भाव मे सबंधित हो, इसका प्रतीकात्मक मूल्य विशेषतः आयु, अवस्था और जीवन की परिस्थितियों पर निर्भर करता है। सर्प द्वारा युवक की दमन की हुई कामेच्छा इंगित होती है, क्योंकि काम-भावना जाग्रत होने पर बचपना नहीं रह जाता; इससे प्रौढ़ की दमित मृत्यु-इच्छा भी इंगित होती है।"[१] इसके समर्थन मे फ़िस्टर का कथन है: "सामान्यतः स्वप्न-प्रतीक के अनेक अर्थ होते है। सर्प और पुरुष मे एकत्व स्थापित करना हास्यास्पद है। यह तो पत्नी की विषैली जिह्वा के प्रसंग मे भी प्रयोग किया गया है।"[२] वस्तुतः 'सर्प प्रतीक' मानव के पशु-स्वभाव का द्योतक है। हरेक स्वप्न मे अतीत का पुनरावाहन और भविष्य की ओर संकेत मिलता है। हैवलॉक एलिस ने इसका समर्थन करते हुये यह स्पष्ट कर दिया है कि

[१] फ़िस्टरः—दि साइकोऐनेलिटिक मेथड, पृष्ठ २९१

[२] फिस्टरः—दि साइकोऐनेलिटिक मेथड, पृष्ठ २९२

स्वप्न मे भविष्य और भूत की अनुभूतियाँ वस्त्र के ताने-बानें की तरह बिनी रहती हैं।

"मैंने एक सुंदर-मोहक अजायबघर मे प्रवेश किया। यहाँ पर बहुत सुंदर पुरातन चित्र रखे थे। मैंने अपने प्रिय का चित्र चाहा। अंत के कमरे मे एक बड़ा चित्र मिला, जिसपर लिखा था 'मात प्रेम'।"[1]

इस स्वप्न का संबंध अतीत से है, क्योंकि इसमे स्वप्नद्रष्टा अपने बचपन की अनुभतियों के अजायबघर मे भ्रमण करता दिखाई पड़ता है। स्वप्न का संबंध भविष्य से भी है, क्योंकि उसका कहना है कि 'विवाह से मै दुःखी होऊँगा; मेरी पत्नी माँ के रिक्त स्थान की पूर्ति कभी नहीं कर सकती'।

स्वप्न की व्याख्या के संबंध मे हैवलॉक एलिस ने 'स्वप्न सम्मिश्रण विधि' का अनुसंधान किया है। उनका कथन है कि जो व्यक्ति अपने स्वप्न की विशेषताओं का अध्ययन करता है, वह सम्मिश्रण विधि का प्रयोग करता है। उन्होंने स्वप्न-विश्लेषण और स्वप्न-संश्लेषण विधियों का विवरण देते हुये एक की तुलना भूगर्भ विद्या से की है और दूसरे की भूगोल से। जिस प्रकार भूगर्भ विद्या के अध्ययन का विषय पृथ्वी मे छिपे ज़ौहर का पता लगाना है, उसी प्रकार स्वप्न-विश्लेषण द्वारा अज्ञात मन मे छिपी निधियों का पता लगता है; भूगोल की तरह स्वप्न-संश्लेपण से वास्तविक घटना के बारे मे और वास्तविक मानसिक अवस्था का पता लगता है। हैवलॉक एलिस के सम्मिश्रण विधि मे विश्लेषण और संश्लेषण का समन्वय है। इसी से हैवलॉक एलिस द्वारा प्रतिपादित विधि अधिक गूढ़ समझी जाती है। सिलबरर के सिद्धांत के अनुसार विश्लेषण आध्यात्मिक विधि द्वारा भी किया जाता है। आध्यात्मिक विधि द्वारा उच्च मानसिक प्रवृत्तियाँ-प्रक्रियाएँ, जैसे धार्मिक तथा नैतिक, प्रकाश मे आती हैं। जिन किन्हीं विधियों को भी हृदयंगम किया जाय, स्वप्न-व्याख्या द्वारा स्वप्नद्रष्टा की समस्याओं और मानसिक अवस्थाओं का पूर्णतः अनुमान लग जाता है। इसी से कहा गया है—'अपना स्वप्न कहो, यह बतला दूंगा, तुम क्या हो'।

स्वप्न की व्याख्या मे भाव-प्रतिमाओं का भी प्रसंग उठता है। इस कारण इस विषय पर अलग से विचार करना आवश्यक है। सामूहिक अज्ञात मन

[1] स्टेकल:—दि इन्टरप्रिटेशन ऑफ ड्रीम्स, पृष्ठ १२७

मे अनेक भाव-प्रतिमाएँ होती हैं, जैसे स्त्रैणता सूचक 'एनिमा', पौरुष सूचक 'एनिमस', मातृ सूचक 'मदर इमेजो', पितृ सूचक 'फादर इमेजो' और आत्म-प्रतिमा इत्यादि। स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' और पौरुष सूचक 'एनिमस' से क्रमबद्ध पुरुष मे स्त्री-गुण की अनुभूति और स्त्री मे पुरुष-गुण की अनुभूति का प्रदर्शन होता है। स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' की प्रभुता होने से पुरुष संवेगात्मक, तर्कहीन तथा विचारहीन बनता है; पौरुष सूचक 'एनिमस' की प्रधानता रहने पर स्त्रियाँ विद्रोहात्मक बनती है। व्यक्ति मे प्रस्तुत इन प्रतिमाओं का बाहुल्य स्वप्न मे होता है। मातृ सूचक 'मदर इमेजो' की प्रधानता होने पर पुत्र का आकर्षण माँ की ओर होता है और वह माँ की तरह पत्नी पाने की कामना करता है; पितृ सूचक 'फादर इमेजो' का प्राधान्य होने पर कन्या पिता की ओर आकर्षित होती है और वह पिता की तरह पति पाने की कामना करती है। आत्म-प्रतिमा (सोल इमेज) स्वभाव मे काम-भाव की प्रतिरोधी होती है। यह व्यक्तिगत 'परसोना' की विशेषताओ से सीधे सबंधित रहती है। यदि 'परसोना' आध्यात्मिक है तो आत्म-प्रतिमा स्वभाव से संवेगात्मक होगी। परसोना का संबंध व्यक्ति के वाह्य रुख से होता है; आत्म-प्रतिमा का संबध आभ्यन्तरिक से होता है। वस्तुतः सभी प्रतिमाएँ अज्ञात मन के प्रतिरूपक है और इनमे यह स्पष्ट होता है कि स्वप्नद्रष्टा का अज्ञात मन चेतना का पूरक है। भाव प्रतिमाएँ जातिगत विशेषताएँ है और सामान्य तथ्यों के रूप मे है जो मानव के जीवन, उनके क्रिया-व्यापार को एक निश्चित रूप देती है। अज्ञात मन की भाव-प्रतिमाएँ निर्धारित और निश्चित है। इनका महत्व और अर्थ प्रसंग के अनुसार नहीं होता। ये अति प्राचीन हैं और इनका निश्चित अर्थ होना एक प्रकार से स्वाभाविक है। इसीसे युग की विचारधारा मे प्रतीक निश्चित और गतिशील दोनों प्रकार के माने गये है। जिनसे केन्द्रीय प्रक्रियाओं अथवा जातीय विशेषताओं की अभिव्यक्ति होती है, उनका निश्चित अर्थ होता है; जिनका महत्व व्यक्तिगत विशेषता संबंधी है, उनका अर्थ व्यक्ति-विशेष के अनुसार होता है। इस प्रकार एक ही प्रतीक का अर्थ विभिन्न व्यक्ति के लिये विभिन्न होता है। फ्रायड की अज्ञात मन की धारणा युग के व्यक्तिगत अज्ञात मन की धारणा तक ही सीमित रह गयी। वस्तुतः स्वप्न व्यक्तिगत समस्या के अतिरिक्त जाति के इतिहास का भी चित्रण है। फ्रायड के विचार से स्वप्न एक मोहरा (फेकेड) मात्र है; युंग का मत इससे भिन्न है: "स्वप्न

साधारण घटनाओं का स्वाभाविक परिणाम है और इसे इधर-उधर ले जाने की योजना समझने का कोई कारण नहीं होता।"[1]

स्वप्न-प्रतीक की व्याख्या के संबंध मे पृथक विचार धाराएँ रहते, उपचार की दृष्टि से इसकी उपयोगिता सार्वभौम है। स्वप्न विक्षिप्त व्यक्तियों की मानसिक अवस्था के अध्ययन की कुंजी है। स्वप्न द्वारा रोगी की मानसिक अवस्थाओं का परिचय मिल जाता है। युग का कथन है : "स्वप्न के माध्यम से अज्ञात मन की विषय-वस्तुएँ, जो मानसिक दुर्बलता के कारण है, बिना अपवाद सतह पर आती हैं।"[2] फ्रायड ने अपने ग्रथ 'कलेक्टेड पेपर्स' मे डोरा के स्वप्न[3] का वृहत् विश्लेपण दिया है और यह अध्ययन इसका प्रमाण है कि स्वप्न की यथोचित व्याख्या द्वारा रोगी का उपचार भली-भाँति संभव है। विश्लेषण द्वारा चिकित्सक प्रतिरोध करने मे सफल होता है और रोगी स्वयं अपनी भाव-ग्रंथियों के स्वभाव-विशेषता को समझने लगता है। इसीसे भैपज्य मनोविज्ञान मे स्वप्न-व्याख्या अनिवार्य और आवश्यक मानी गयी है।

एक श्रेष्ठ कुल के युवक ने, जिसे मिचली का पहाड़ी रोग था, स्वप्न देखा :

"मै जल्दी मे हूँ, क्योंकि मुझे यात्रा के लिये शीघ्र ही प्रस्थान करना है। मैने अपना सामान ढूढ़ा, किंतु मुझे न मिला। समय निकल रहा है और रेलगाड़ी जल्दी ही छूटने वाली है। किसी प्रकार सामान ढूढा और सड़क की ओर तीव्र वेग से बढ़ा। ध्यान आया एक ब्रीफ केस जिसमे आवश्यक पर्चे थे, भूल गया हूँ। हाँफते हुये मकान की ओर बढ़ा और लेकर स्टेशन की ओर दौड़ा। दौड़ा-भागता प्लेटफार्म की ओर पहुँचा और देखा रेलगाड़ी धुआँ देती निकल गयी। गाड़ी बड़ी लंबी थी और यह विचित्र ढंग से एस के आकार मे दौड़ रही थी। मेरे मन मे विचार उठा कि यदि सचालक सतर्क न रहा और सीधे करते समय गति तेज रखी तो पीछे के डब्बे टेढ़े होने से रेलगाड़ी उलट जायगी। संचालक ने गाड़ी की गति बढ़ाई। मै चिल्लाने ही वाला था कि पीछे

---

[1] सी जी० युंग:—साइकॉलजी एन्ड रेलिजन, पृष्ठ ३१

[2] सी० जी० युंग:—मार्डन मैन इन सर्च ऑफ ए सोल, पृष्ठ ३

[3] फ्रायड—कलेक्टेड पेपर्स, भाग ३

के डब्बे भयंकर रूप से भिड़े और रेलगाड़ी से दूर फेंक गये। बड़ी भयंकर दुर्घटना हुई। मैं भयभीत होकर उठ बैठा।"[1]

स्वप्न से रोगी की उच्च आकांक्षा प्रकट होती है। यह उसकी भविष्य की निश्चित असफलता का भी सूचक है। यह वस्तु-स्थिति कि संचालक बिना-बिचारे रेलगाड़ी को गति मे रखे है जब कि पीछे के डब्बे लड़े और उलट गये, मानसिक दुर्बलता के आक्रमण का प्रतीक है। वस्तुत: स्वप्नद्रष्टा सफलता की अंतिम सीढ़ी पर पहुँच चुका है और समयानुकूल यह था कि वह अपने पद से संतुष्ट रहता। परन्तु वह कुछ और चाहता है; वह आगे बढ़ने का प्रयास करता है, जिसके लिये वह अयोग्य है। वह असफल होता है। रेलगाड़ी की दुर्घटना इसका द्योतक है। मानसिक दुर्बलता चेतावनी रूप मे आई। रोगी को यह ज्ञात नहीं था कि उसका उन्नति का प्रयत्न निष्फल है। अज्ञात मन उसकी सीमाओं से परिचित था और इसकी प्रत्यक्ष छाप इस स्वप्न मे मिलती है। वस्तुत: इस स्वप्न मे मानसिक दुर्बलता का कारण व्यक्त होता है, भविष्य मे होने वाली घटना की ओर संकेत मिलता है, और इसमे उपचार का निर्देश स्पष्ट है।

इस प्रकार स्वप्न के प्रतीकों की व्याख्या आंतरिक अवस्था को समझने की कुंजी है और इनसे मानव के बारे मे अनुभव और दूरदर्शी ज्ञान होता है। एक प्रकार से मानव की मानसिक अवस्था, स्वभाव-स्वरूप तथा उसके आंतरिक संघर्ष और भाव-ग्रथियों को समझने के लिये प्रतीकों की व्याख्या की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है। प्रतीकों द्वारा उस अज्ञात मन का सच्चा चित्र अंकित होता है जो मानव के क्रिया-व्यापार का निर्धारक है, रचना का स्रोत है, और जीवन मे उत्पन्न सभी संघर्षों का संग्रहालय है।

---

[1] सी० जी० युंग :—माडर्न मैन इन सर्च ऑफ ए सोल, पृष्ठ ४

कला और प्रतीकवाद

हर प्रकार की कला, काव्य हो या चित्र, संगीत हो या नृत्य, उसका मनोवैज्ञानिक आधार होता है। कला का सर्जन उस विशिष्ट स्थिति मे होता है जब कलाकार अपने को वाह्य जगत् से समेटकर कल्पना-लोक मे विचरण करने लगता है। कला का उद्‌गम आभ्यन्तरिक उद्वेग और द्वंद्व-संघर्ष मे निहित होता है। इसी से यह आत्मपरक है और शिल्प, ध्वनि तथा अनुप्रास-योजना के स्थान पर मनोविज्ञान के अध्ययन का विपय विशेपरूप से बन गयी है।

कला और मनोविज्ञान मे अति घनिष्ट सम्बन्ध है। यह संबध ऐसा निकटवर्ती है कि कला का मूल्यांकन बिना मनोवैज्ञानिक क्षेत्र के अनुसंधानों के किया ही नहीं जा सकता। कला से मानव जीवन का संचालन करने वाले उन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों का उद्‌घाटन होता है जो केवल रंग और शब्दों की क्रीड़ा नहीं है। सूक्ष्म रूप से यह ध्यान मे रखना है कि कला की समस्या और इसकी प्रेरणा पर विचार-विनिमय नवीन मनोविज्ञान की अज्ञात मन की धारणा के प्रसंग मे ही किया जा सकता है। वास्तविक और मौलिक कला का संबंध चेतन संवेदन, प्रत्यक्षीकरण, स्मृति, विचार और तर्क की प्रक्रियाओं से नहीं होता; इसका उद्‌गम अज्ञात मन है जिसमे निहित तथ्य अथवा विपय-वस्तुएँ कला मे गुथी होती हैं। जबतक मनोविज्ञान सैद्धान्तिक रहा और इसमे आत्मा का ही केवल अध्ययन होता रहा, तबतक कला का वैज्ञानिक निरूपण नहीं हो पाया। दर्शकों का ध्यान रंग, आकार, उपमा, रूपक आदि रूढ़ि चिह्नों मे ही उलझा रहा और यह विचार नहीं किया गया कि इन सबकी पृष्ठभूमि मे किन मानसिक इच्छाओं, विप्लव-संघर्षों, उद्वेग, भाव-ग्रंथियों इत्यादि का संगम है। किंतु अब कला की प्राचीन निरूपण-पद्धति बदल गयी है। आधुनिक निरूपण-पद्धति के अनुसार सौन्दर्य, भाव मे निहित होता है। मन के

परस्पर विरोधी भाव सुख-दुख, उल्लास-विषाद अज्ञात मन मे उपस्थित होते है और उनकी अनुभूति सदैव सक्रिय रहती है। सौन्दर्य के मूल्याकन का विषय इसका वाह्य रूप नही होता, क्योकि कला वस्तुत वेदना और आह्लादपूर्ण सवेगात्मक अनुभूति है। मनोविज्ञान के आधुनिक तत्वान्वेषी की जिज्ञासा उस वृत्ति-विशेष तथा इससे सबद्ध सवेग की ओर होती है जिससे कलाकार का हृदय काव्य-रचना के समय परिप्लावित रहता है। कला की गाठ सवेग है; बौद्धिक ज्ञान नही। भाव-रस से सिक्त भाषा सच्चा काव्य है (रसात्मक वाक्य काव्यम्)। कला मे जो भाव व्यक्त है उसके लिये प्रयास नही किया जाता, अज्ञात मन से भाव स्वत उमडता है और कलाकार का व्यक्तित्व उसी रग मे रग जाता है। मनुष्य की सवेगात्मक अनुभूतियो का व्यवस्थित और साकार रूप कला मे दृष्टिगत होता है। रूस के दार्शनिक टाल्सटाय का कथन है: "कला ऐसी मानव क्रिया है जिसमे मूल रूप मे एक व्यक्ति किन्ही वाह्य लक्षणो, अपने मन की सवेदनाओ, और अनुभूतिया को अभिव्यक्त करता है और दूसरे लोग उन्ही भावो मे प्रभावित होकर उन्ही सवेदनाओ और उद्वेगो की अनुभूति करते है।"[१] यह विशेषता प्रमुखत प्राच्य कला की है। कालिदास और भवभूति के नाटक, सूरदास के काव्य और बौद्ध-कालीन शिलाएँ इसकी प्रमाण है।

मनोविश्लेषण और विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान मे कला-निरूपण के बारे मे विशेष अनुसधान हुये है। कला की व्याख्या के प्रसग मे फ्रायड का स्थान उल्लेखनीय है। उन्होने वैज्ञानिक दृष्टि से कला पर पहले-पहले विचार किया और विज्ञान और कला मे सबध दर्शाने का प्रयास किया। वस्तुतः विज्ञान और कला ज्ञान की दो अलग-अलग शाखाएँ है। मनोविश्लेषण के अनुयायी विल्हेल्म स्टेकल का कथन है --"अमुक कवि महान है अथवा साधारण, यह बात असगत है; इससे प्रयोजन सिद्ध नही होता। हमे तो उस प्रवृत्ति का अन्वेषण करना है जिससे प्रेरित होकर मानव रचना करता है।" मनोवैज्ञानिको का कार्य तो उन छिपी हुई वृत्तियों का परिचय प्राप्त करना है जिनसे कलाकार को निरतर प्रेरणा मिलती है। उनका आकर्षण चित्र या बिम्ब की सानुरूपता अथवा काव्य के शब्द, ध्वनि और लय की ओर नही रहता। जब कभी और

---

[१] डा० भगवानदास :—साइन्स ऑफ इमोशन्स्, पृष्ठ ४२७

जहाँ कहीं गूढ़ प्रकृत प्रवृत्ति अथवा भाव-संवेदनाओं का प्रदर्शन होता है और जिसके बारे मे कोई परिचय और ज्ञान नहीं रहता, सरल से सरल काव्य और चित्र भी मोहक प्रतीत होने लगते है। मनोवैज्ञानिको की जिज्ञासा तो इसमे है कि किस प्रकार और कैसे सामान्य व्यक्ति की अनुभूति से एक कलाकार की अनुभूति भिन्न होती है। उसका कार्य कला का मूल्यांकन करना नही है; कलात्मक कृतियों की पृष्ठभूमि मे क्रियमाण मानसिक प्रकियाओं का अन्वेषण करना प्रमुख कार्य होता है। युग का कथन है: "कला स्वतः क्या है—यह मनोविज्ञान का विषय नही, सौन्दर्यशास्त्र का विषय है।"[१]

अतएव कला की व्याख्या के लिये बीसवीं शताब्दी मे एक नयी पद्धति निकली। इस शताब्दी के प्रारभ तक यह विचारधारा कि कलाकार मे एक दैवी प्रतिभा होती है और यह अनुभव के परे का विषय है और काव्य-रचना करते समय उसे दैवी प्रेरणा मिलती है, मिट-सी गयी। आधुनिक मनोवैज्ञानिको ने दैवी प्रेरणा को आतरिक उद्गार मात्र माना है। फ्रायड और उनके अनुयाइयो के कला-सबंधी विवरण की ओर दृष्टिपात करने से यह पुष्टि हो जाती है कि अन्य अभिव्यक्तियों की तरह कला भी मानव वृत्ति-प्रवृत्ति का ही परिणाम है। यह विश्वास सार्वभौम है। वृत्तियो की प्रकृति के बारे मे हमे विभिन्न दृष्टिकोण मिलते है। कला भाव-वृत्ति का परोक्ष प्रदर्शन है। यह मानव की ही प्रकृत इच्छाओं का रूपान्तर माना गया है।

मनोविश्लेषण मे कला को भाव या उद्वेग का परिशोधित और परिमार्जित रूप माना गया है। 'परिमार्जन' अव्यक्त मानसिक प्रक्रिया या कार्य-पद्धति है जिस पर मानव का ऐच्छिक प्रभुत्व नही होता। यह उच्च स्तर की ऐसी वांछनीय प्रक्रिया है जिससे प्रकृत इच्छा परिशोधित हो जाती है, अथवा मानव की कामशक्ति का व्यय प्रकृत इच्छा की तुष्टि के लिये न होकर उच्च भाव, विचार, आदर्श, नीति, धर्म इत्यादि के लिये उपयोग किया जाने लगता है। फ्रायड ने अपने ग्रंथ 'सिविलज़ेशन एन्ड इट्स डिस्कन्टेंट' मे स्पष्ट लिखा है: "प्रकृत वृत्ति का परिमार्जन सांस्कृतिक विकास की प्रमुख विशेषता है। इसी से विज्ञान, कला, तथा आदर्श-संबंधी उच्च कोटि की मानसिक प्रक्रियाओं का सांस्कृतिक जीवन मे इतना महत्व है।"[२] परिमार्जन की यह प्रक्रिया मानसिक

---

[१] सी० जी० युंग:—कन्ट्रिब्युशन टु ऐनेलिटिकल साइकॉलजी, पृष्ठ २२५

[२] फ्रायड:—सिविलज़ेशन एन्ड इट्स डिस्कन्टेंट, पृष्ठ ६३

दौर्बल्य की प्रतिबंधित वृत्ति से भिन्न होती है। परिमार्जन द्वारा प्रकृत इच्छा पर प्रतिबंध नहीं लगाया जाता; इससे प्रकृत इच्छा का परिशोध मात्र ही होता है। कामशक्ति का प्रवाह ऐसी दिशा मे स्थानान्तरित हो जाता है जो सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि से मान्य हो। प्रकृत इच्छा का परिमार्जन पूर्णरूपेण कठिन होता है; एक सीमा तक परिमार्जन के पश्चात् वृत्ति का दमन होने लगता है। परिमार्जन बाल्यावस्था से होता है। अर्नेस्ट जोन्म का कथन है कि "प्रौढ़ावस्था मे वृत्ति का जो परिमार्जन होना है वह बाल्यावस्था के प्रारंभिक अर्धभाग के अनुपात मे बहुत अल्प है। वस्तुतः वालक का बाह्य एवं सामाजिक नियम-परम्पराओं मे बँधना, जो परिमार्जन का वास्तविक सार है, शिक्षा की प्रमुख और एकमात्र प्रक्रिया है।"[१] जो बालक 'परपीड़न' मनोवृत्ति पर विजय प्राप्त कर लेता है, संभव है वह बड़ा कलाकार बने। हैन्स सैक्स ने परिमार्जन की प्रक्रिया के प्रसंग मे अपराध-भाव की महत्ता पर बल दिया है। शार्प्स का कथन है कि "इष्ट वस्तु के प्रनि द्वेष से अह उद्वेलित नहीं होता। परिमार्जन तो चिंता की निवृत्ति, उसका नियन्त्रण और निराकरण है।"[२]

मनोविश्लेषण की दृष्टि से परिमार्जन का अर्थ है 'कामवृत्ति का परिशोधन'। कला कामवृत्ति का परिमार्जित निर्देशन है। कला द्वारा कामवृत्ति की तुष्टि होनी है। सामान्यतः मामाजिक दृष्टि मे इस वृत्ति का तुष्टीकरण अवाछनीय माना गया है और इस पर प्रारंभ से ही अधिक से अधिक प्रतिबध रखा गया है। इस कारण इस वृत्ति का स्वतः अजाने दमन होता रहता है। जो व्यक्ति अनुशासित, सांस्कृतिक वातावरण मे पला है, वह कामशक्ति का उपयोग कुछ ऐसे कार्यो के लिये करता है जो काम-भाव से सबंधित नहीं होते और इस प्रकार संभव है कि उसकी कामशक्ति का प्रवाह परार्थ कार्यो की ओर होने लगे। कामशक्ति कला का जीवन है। मनोविश्लेषण के अनुसार किसी प्रवृत्ति के परिमार्जन के लिये कुछ 'अनुन्मुक्त शक्ति' का होना नितांत आवश्यक है। कामशक्ति का स्थानान्तरण अथवा कामुक क्रियाओं से कला की ओर उन्मुख होना कामवृत्ति को एक प्रकार से सुसंस्कृत करना है। कला कामेच्छा के परिमार्जन का द्योतक है। ह्वाइटहेड ने लिखा है: "कलाकार की प्रकृत

---

[१] यिअर बुक ऑफ साइकोऐनिलिसस, पृष्ठ ११६

[२] यिअर बुक ऑफ साइकोऐनिलिसस, पृष्ठ ११८

इच्छाओं की परिमार्जित अभिव्यक्ति मोहक रूप मे कला मे होती है और इससे उसकी प्रकृत इच्छाओं की उन्नत और प्रतिनिधि रूप मे तुष्टि भी हो जाती है।"[१]

इस प्रकार सामान्यतः परिमार्जन सदैव रचनात्मक काव्य, चित्रकला, और शिल्पकला मे दृष्टिगत होता है। दृष्टिकोणों मे विभिन्नता प्रकृत इच्छाओं के प्रसंग मे विद्यमान होती है, जो अचेतन रूप से परिमार्जित होती रहती है। परिमार्जन आवश्यक है; अन्यथा मनुष्य अपने स्वभाव के आदिम प्रकृत अविकसित भाग का दास बना रहता। इसीसे कला को आदिम मन के शोध का प्रयास माना गया है। प्राचीन युग मे प्रचलित धार्मिक क्रियाएँ और जादू-टोने मे विवेकशून्य विश्वास मानव की वृत्ति के परिमार्जन का प्रमाण है। किंतु यह नियोजन बहुत आदिम और असंस्कृत रूप मे था। इसमे हमे प्रौढ़ता, गांभीर्य और विकसित सस्कृति की छाप नही मिलती। आधुनिक युग मे प्राचीन सम्प्रदाय का स्थानापन्न कला अथवा अन्य काव्यों से हुआ है। अज्ञात प्रकृत इच्छाओं की अभिव्यक्ति के लिये कला सुदर माध्यम है। वस्तुतः अचेतन सवेदनाएँ और भाव ही मानब मन के ताने-वाने है। जो प्राचीन और प्रतिबधित है, उसके प्रति अवज्ञा का भाव नही रखा जा सकता और न उसे मिटाया ही जा सकता है; मनुष्य के व्यक्तित्व पर इनका अमिट प्रभाव रहता है और इसीलिए इनका परिमार्जन अनिवार्य है। कलात्मक परिमार्जन विशेषकर ऐसे स्थलों पर दृष्टिगत होता है जहाँ दिवा-स्वप्नो की लड़ियाँ काव्य अथवा चित्रकला मे गुथी मिलती है।

आधुनिक युग मे अनेक प्रकार की 'स्थानापन्न तुष्टियाँ' है जो प्राचीन आदिम सक्रिय भावों के समाधान के लिये परम उपयुक्त है, क्योंकि विश्व के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन मे विशेष उन्नति हुई है और सामान्यतः जीवन भी समृद्ध हो गया है। शताब्दियों पहले मनुष्य की जो अनुभूतियाँ चेतन मे रहती थीं, वे अब अज्ञात मन की निधि बन गयी है। इस परिस्थिति मे मनुष्य अपनी इच्छाओं की तुष्टि के मूल साधनों से वंचित हो गया है और उनका स्थान आधुनिक सभ्यता और संस्कृति के साधनों ने ले लिया है। यह तो जीवन का सामान्य सिद्धांत है कि संस्कृति सदैव से इच्छाओं की स्वतंत्र तुष्टि मे बाधक रही। परन्तु आश्चर्य की बात है कि आदिम निवासियों के पास भी स्थानापन्न तुष्टि का साधन था। आदिम जीवन-प्रणाली के होते हुये भी वे इससे मुक्त नहीं थे। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि अज्ञात मन के

[१] ह्वाइटहेड :—साइकोऐनिलिसस, पृष्ठ ११६

विषय-वस्तुओं की अभिव्यक्ति सामान्य बात नहीं; यह अभिव्यक्ति चेतना की मान्यता होने पर ही संभव है। मानव प्रकृति यह है कि प्रकृत इच्छाओं की पूर्त्ति मे ही मनुष्य को चैन मिलता है। इस कारण अज्ञात मन सदैव किसी-न-किसी खोज मे लगा रहता है। अभिव्यक्ति का साधन न मिलने पर अज्ञात मन की इच्छाओं के विस्फोटन का भय रहता है। फ्रायड की 'स्थानापन्न तुष्टि' की धारणा विशेष महत्व की है। इससे हमे मानवीय क्रिया-कलापो के 'क्यों' और 'कैसे का उत्तर मिल जाता है।

परिमार्जन की प्रक्रिया से व्यक्ति का स्थानापन्न तुष्टि मिलती है। इसमे ज्ञात और अज्ञात मन के मध्य समायोजन स्थापित होता है। इस प्रकार इसमे कला के प्रसग मे दो लाभ है : एक, स्थानापन्न तुष्टि प्राप्त करना; दूसरे, ज्ञात और अज्ञात मे सामजस्य स्थापित करना। अन्य रक्षात्मक प्रक्रियाओं की तरह इसका प्रमुख ध्यय मूलवासना (इड) की प्रकृत इच्छाओं से मानव की सुरक्षा करना है। फ्रायड के अनुयायी अर्नेस्ट जोन्स ने लिखा है : "मूल वासना (इड) की शक्ति को दूसरी ओर प्रवाहित करके तथा काम-सबधी विद्रोह-भावना को परिवर्त्तित कर यह अह (इगो) की उस समस्या को हल कर देता है जो अत्यधिक कामशक्ति संचित होने से प्रारंभ हो जाती है।"[1] अपने निबध 'साइकिक ट्रौमा एेन्ड प्रोडक्टिव एक्सपीरियन्स इन दि आर्टिस्ट' मे लोवेनफेल्ड ने लिखा है—"जब तक रोगी के आभ्यन्तरिक संघर्ष-विरोध की अभिव्यक्ति स्वच्छंद रूप मे कला मे होती रही, तब तक वह मानसिक दौर्बल्य के लक्षणों से मुक्त रही।"

परिमार्जन की प्रक्रिया के सक्रिय रहने से अज्ञात मन की मूल भावना कला मे प्रतीकात्मक रूप मे व्यक्त होती है। कला आंतरिक अनुभूतियों और भावों का बाह्य प्रदर्शन है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आभ्यन्तरिक सत्ताएँ वस्तुतः प्रकृत इच्छाएँ है जो मानव के व्यक्तित्व मे गुथी रहती है। सामान्यतः वृत्ति-प्रवृत्ति का अस्तित्व मात्र कला के लिये पर्याप्त नही है। मनोभावों को कला का रूप देना तभी संभव है जब दमन प्रक्रिया के कारण अज्ञात मन मे भाव-वृत्ति उग्र और सक्रिय हो जाती है। कला दमित इच्छाओं का एक रूप है। मानसिक दौर्बल्य की अवस्था का विश्लेषण करने पर इसमे मूल और अर्जित दोनों

[1] इअर बुक ऑफ साइकोऐनेलिसिस, पृष्ठ ११८

प्रकार की इच्छाओं का दमन मिलता है। कला का उद्गम मूल इच्छा का दमन मात्र है। जिन निगृहीत इच्छाओं की अभिव्यक्ति कला मे होती है, वे प्रकृति मे काम-भाव की होती है। किंतु कलाकार की भाव-कल्पनाओं का संबंध सदैव कामवृत्ति से होना आवश्यक नही होता, यद्यपि अनुभव और निरीक्षण के आधार पर यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि सामान्यतः कला मे प्रेम-भाव का ही दिग्दर्शन रहता है। अभिव्यक्ति के पूर्व कामेच्छा का चेतना मे विकृत होना आवश्यक है : "कला अज्ञात मन की इच्छाओं से सबंधित प्रकृत-प्राचीन कार्य-पद्धतियों की अभिव्यक्ति है; जिन वस्तुओं और दृश्यों का इसमे दिग्दर्शन होता है वे कलाकार की परोक्ष भाव-कल्पनाओं मे अभिप्रेत रहती है।"[1] वस्तुतः कला अज्ञात मन की दमित इच्छाओं के प्रदर्शन का उत्कृष्ट माध्यम है और इस प्रकार इच्छाएँ सुरक्षित, ग्राह्य और सांस्कृतिक रूप मे प्रकट हो पाती है। कला का वास्तविक महत्व समझने के लिये पृष्ठभूमि का साक्षात्, अर्थात् निचले स्तर मे छिपे गूढ भाव को जानना-समझना होगा।

जो आंतरिक प्रक्रियाएँ कला के क्षेत्र मे सक्रिय होती है वे ही स्वप्न-अनुभूतियों मे भी विद्यमान होती है। इसलिये कला और स्वप्न सानुरूप है। 'स्वप्न और प्रतीकवाद' के परिच्छेद मे इस बात पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है कि अज्ञात मन ऐसी इच्छाओं का संग्रहालय है जो चेतना से बहिष्कृत की गई है और इसमे विभिन्न प्रक्रियाएँ स्वतः चलती रहती है। इस कारण यहाँ संकेत मात्र पर्याप्त है। वस्तुतः कला और स्वप्न एक प्रकार से ऐसी बहिष्कृत भावनाओं और इच्छाओं के प्रदर्शन हैं जिनका स्थान स्थिर रूप से अज्ञात मन मे बन गया है और जो अत्यंत प्रभावोत्पादक हैं। कला और स्वप्न मे एक ही प्रवृत्ति कार्यरत रहती है और इसके प्रकाशन मे दमन का विशेष महत्व होता है, जिसका प्रभाव मानसिक क्रियाओं पर अधिकांश पड़ता है। मूल भेद यह है कि कला मे निगृहीत भाव या इच्छाएँ परिमार्जित रूप मे प्रकट होती है जिससे इन्हें सामाजिक दृष्टि से वांछनीय और परिष्कृत रूप मिलता है; स्वप्न अनर्गल होता है और उसका अपना कोई मूल्य नही रहता। किंतु दोनों ही प्रकार की अभिव्यंजनाओं से, प्रकृत इच्छाओं का प्रदर्शन हो जाने से, मानव को संतोष मिलता है। जो व्यक्ति अपनी वृत्ति को जैसे-तैसे मोड़ने मे सफल होता है, अथवा परिशोधित या परिवर्तित कर सकता है—वह कलाकार बन जाता

[1] ह्वाइटहेड :—साइकोऐनेलिसिस एन्ड आर्ट

है; जो इसमे समर्थ नहीं होता वह स्वप्न की भाव-कल्पनाओं (ड्रीम फैन्टसी) का आश्रय लेता है। मानव का वश अज्ञात मन पर नहीं चलता, भले ही वह सब साज-सजाव, परिवर्त्तन-परिवर्धन, जैसा चाहे, ज्ञात मन मे कर ले। वस्तुत: अहं (इगो) जो ज्ञात मन का प्रतिरूप है, उसका विकास ऐसे रूप मे होना चाहिए जिससे वह आगे चलकर अज्ञात मन की इच्छाओं का सामना कर सके और उसमे विद्रोह का मुकाबला करने की सामर्थ बनी रहे। किंतु संघर्ष होने पर अहं अत्यधिक बलहीन हो जाता है। इसलिये समायोजन के लिये परस्पर समझौता अनिवार्य है। यह कलाकार की विशेषता है कि वह इदम् (जो 'सुख-सिद्धांत' से संचालित है) और अहं (जो 'वास्तविकता सिद्धांत' से संचालित है) मे विचित्र रूप से समन्वय-समझौता करता है। प्रकृत इच्छाओं के परित्याग मे अपने को असमर्थ पाकर वह वास्तविक जगत् से भागता है और अपने को कल्पना-लोक मे तुष्ट करने का प्रयास करता है। कल्पना-लोक मे उसकी वासनाएँ भली-भाति संतुष्ट हो जाती है। भाव-कल्पना लोक से वह वास्तविकता की ओर पुन मुडता है। अपनी प्रतिभा से वह भाव-कल्पना को सत्य का रूप एक नये प्रकार मे देता है। वास्तविकता को कल्पित रूप देने से कलाकार वास्तविकता की सार्थकता का इसमे अनुभव नहीं कर पाता।

मनोविश्लेषण के अनुयायी ब्रिटिश मनोवैज्ञानिक प्रेसकॉट ने स्पष्ट भाषा मे लिखा है कि कवि और स्वप्नद्रष्टा मे समानता होती है। दोनो ही सामाजिक बंधन से पूर्णत: मुक्त रहते है। दोनों का ही प्रत्यावर्त्तन शैशवावस्था की ओर होता है। अन्तर इतना ही है कि कवि अपनी भाव-कल्पनाओं को सुदर परिधान मे अलंकृत कर उनकी व्यंजना करता है और स्वप्नद्रष्टा स्खलित असंबंधित रूप मे। दोनो ही क्षेत्रों मे दमन और भाव-कल्पनाओं की प्रचुरता के कारण प्रतीकों का बाहुल्य होता है। अहं प्रतीकात्मक प्रक्रिया द्वारा प्रकृत इच्छाओं से अपनी रक्षा करता है। स्वप्न और कला मे अज्ञात मन के विषय-वस्तु, भाव-संघर्ष इतने विकृत-परिवर्त्तित रूप मे प्रस्तुत रहते हैं कि इसकी कथा-वस्तुएँ अत्यधिक गूढ़ और जटिल प्रतीत होती है। साधारणत: यह अनुमान लगाना संभव नहीं रहता कि किस वास्तविक तथ्य का प्रतीकात्मक प्रदर्शन हुआ है और किसका स्वाभाविक रूप मे। औटोरैंक ने भी स्वप्न, कला और किंवदन्तिओं के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है। उन्होंने जर्मनी के प्रकांड

फ्रायड:—एन औटोबाओग्राफिकल स्टडी

दार्शनिक शापेनहार को उद्धृत किया है जिनके विचार से दाँते की ख्याति का कारण यह है कि उन्होंने काव्य मे स्वप्न को वास्तविकता का रूप दिया। विख्यात नाटककार शेक्सपियर ने अपनी कृतियों मे उन्ही तथ्यों का उल्लेख किया है जिनकी अनुभूति साधारण व्यक्ति स्वप्न मे किया करता है। दाँते ने अपनी काव्य-रचना स्वप्नानुभूति के आधार पर की; उन्होंने स्वप्न और काव्य-कल्पना के भेद की अनुभूति कभी नहीं की। औटोरैंक ने जर्मनी के दार्शनिक कांट को भी उद्धृत किया है जिन्होंने अपने 'एन्थ्रौपॉलजी' मे स्वप्न को 'अनैच्छिक काव्य' कहा है। विशेषतः यह उन कवियों के लिये सत्य-रूप है जो भाव-लोक मे रहते है और जिनके अज्ञात मन की इच्छा का मुक्त प्रदर्शन होता है।

भाव-कल्पना का प्राधान्य रहते, वस्तुतः कलाकार कल्पना और यथार्थ दोनों ही क्षेत्रों मे रमता है। जब तक वह अत्यधिक भावुक अथवा विपथी न हो, भाव-कल्पनाओं के साथ अठखेलियाँ करते हुये भी वह वास्तविक अनुभूतियो से विमुख नहीं रहता। उसका ध्यान वास्तविकता की ओर स्वभावतः चला जाता है। इस तरह कला-संबंधी भाव-कल्पनाएँ वास्तविक अनुभूतियों से बँधी रहती है; स्वप्न की भाव-कल्पनाएँ पूर्णतः स्वतंत्र होती है। इस कारण स्वप्न-निरूपण कला के निरूपण से सरल होता है। यह सब होते, स्वप्न के सदृश कला भी विशेष अद्भुत मानसिक झुकाव की रचना होती है। स्वप्न मे जिस मानसिक झुकाव की अभिव्यक्ति होती है, उसी का प्रदर्शन कला मे भी मिलता है।

कला का उत्तेजन अज्ञात मन मे निहित होता है। अज्ञात मन की भाव-कल्पनाओं को व्यक्त करने के लिये कुछ माध्यमों की भी आवश्यकता होती है। कवि के पास शब्द और लेखनी, शिल्पी के पास छेनी और संगमरमर, और चित्रकार के पास तूलिका और रंग भाव-व्यंजना के लिये होता है। किंतु जब तक कलाकार को आंतरिक क्षेत्र के सामग्रिओं से प्रेरणा नही मिलती, वह रचयिता-स्रष्टा नहीं बन सकता। कलाकार का भाव-लहरी मे बहना आवश्यक है। ग्रीक दार्शनिक अरिस्टौटल की भाषा मे 'द्रव्य' (मैटर) रहता है और 'रूप' (फॉर्म) अज्ञात मन द्वारा प्राप्त होता है। 'फार्म' से अरिस्टौटल का तात्पर्य आकार से नहीं, बल्कि वास्तविक तथ्य से है। जिस प्रेरणा-उत्तेजन के मिलने से कवि आह्लाद से विह्वल हो जाता है, या वेदना से आहें भरने लगता है, और चित्रकार स्वतः तूलिका और

रंग से खेलना प्रारंभ करता है—यह प्रेरणा मन के निचले स्तर से मिलती है। रिबट का कथन है: "नवीन रचना के लिये प्राप्त प्रेरणा इच्छाशक्ति या विचार-विनिमय का स्थान नही ग्रहण कर सकती। कहाँ से और कैसे यह मुझे नही मालूम है और जानना भी संभव नहीं। निश्चय ही आंतरिक जगत् मे कुछ रचनात्मक उत्तेजन उपस्थित रहते है, जिनसे मानव अपने आप बिना प्रयास किये नयी रचना के लिये प्रेरणा पाता है।" इस दृष्टि से सभी काव्य एक प्रकार से 'स्वकथन' है।

कलाकार अपनी नवीन रचना प्राप्त साधनों द्वारा ही करता है। माध्यम होने के ही कारण कलाकार की कल्पनाएँ स्वप्नद्रष्टा के स्वप्नों से भिन्न होती है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि "स्वप्न वह कला है जिसमे माध्यम नहीं रहता, अथवा कला वह स्वप्न है जिसमे किसी न किसी स्थूल माध्यम द्वारा भाव-व्यजना होती है।" कलाकार भाव की ओर पैनी और आतुर आँखें फैलाये तथा गतिशील अंगुलियो मे मजग क्यो रहता है! माध्यम होने से कलाकार मक्रिय अज्ञान मन की सामग्रियों को स्थूल रूप दे पाता है। बचपन की दुख भरी अनुभूतियां (ट्रॉमा) से निर्मित अज्ञात मन की भाव-कल्पनाओं तथा प्रतिमाओं द्वारा कलाकार जो स्थूल रचनाएँ करता है वे वस्तुत: आंतरिक महत्व की होती हैं। बचपन की दुख भरी अनुभूतियों का महत्व कल्पना के स्रोत मे बहुत रहता है। कलाकार का चित्रण उसकी मानसिक भाव-कल्पना के अनुरूप होना है। यदि चित्र अस्पष्ट और विशृंखल है रंग बिखरे हुए है, तो इसका यह अर्थ है कि कलाकार के जीवन मे निचले स्तर पर द्वंद्व है और वह भावनाओं से उद्वेलित है। इस प्रकार सदैव बाह्य प्रदर्शन की पृष्ठभूमि मे आंतरिक लोक छिपा रहता है। बाह्य आंतरिक का प्रतीक है यह केवल दार्शनिक सत्य ममझा जाता रहा; अब यह मनोवैज्ञानिक तथ्य भी सिद्ध हुआ है।

मनोविश्लेषकों के अनुसार कला के दो प्रमुख उद्देश्य है: एक, दमन की हुई कामशक्ति की तुष्टि करना; दूसरे, मानव की पूर्ण होने की इच्छा को तुष्ट करना। अज्ञात मन का ध्येय कामवृत्ति की तुष्टि करना रहता है; ज्ञात मन की आकांक्षा समाज मे ऊँचा स्थान प्राप्त करने की रहती है। इस प्रकार अज्ञात मन की ओर से विचार करने पर कला मानव की दुर्बलता का प्रकटीकरण है; ज्ञात मन की दृष्टि से यह मनुष्य का संचित बल है। इच्छाओं के

संतुष्ट न होने से मन मे अनेक भाव-ग्रंथियाँ (काम्प्लेक्सेस) पड़ जाती हैं और इन्हीं से कला की सृष्टि होती है। फिस्टर का कथन है: "अन्य भाव-व्यंजनाओं के सदृश काव्य भी कलाकार का प्रयास है जिसके द्वारा वह अपने को भाव-ग्रंथियों से मुक्त करता है।"[1] किंतु भाव-ग्रंथियाँ विचित्र रूप मे प्रकट होती है। इनका इतना अधिक परिवर्त्तन और स्थानान्तरण होता है कि वास्तविक को जानना दूभर हो जाता है। अस्पष्ट भले ही हो, कला मे सौन्दर्य है; कला अज्ञात मन की प्रेरणा का परिणाम है और इसमे मूल इच्छाएँ विकृत रूप मे रहती है। संस्कृति और सौन्दर्य की दृष्टि से कला को ऊँचा स्थान दिया गया है।

मूलत: नैतिक प्रतिबंधन और प्रकृति मे भाव-इच्छाओं के अवांछनीय होने से अज्ञात मन की विषय-वस्तुएं परिवर्तित रूप मे व्यक्त होती है। मनोविश्लेषण मे कला को अज्ञात मन का प्रतीकात्मक प्रदर्शन माना गया है; युग के अनुसार मानव-मन के एक और भाग की भी अभिव्यक्ति कला द्वारा होती है। वस्तुत: कला-प्रतीक की उद्भूति आंतरिक मन के उस स्तर से हुई है जो मानव जाति की सामान्य निधि है। युग के पारिभाषिक शब्द मे यह 'सामूहिक अज्ञात मन' है। मन का यह भाग बहुत पुरातन है। यह कहना संभव नही कि इसकी अपने मे सत्ता है। यह कोई वास्तविक तथ्य नही; यह विशेषताओं की संभावनाएं है जो अनतकाल से मानव की निधि रहीं। इसमे जन्मदत्त विचार नहीं प्रस्तुत होते, जैसी आदर्शवादियों की धारणा है, बल्कि जन्मजात विचारों के होने की संभावनाएँ होती है जिनसे मानव की भाव-कल्पनाएँ सीमित रहती है।

इस प्रकार अज्ञात मन के मूल सिद्धांत मे भेद होने के कारण युग का कला-प्रतीक सिद्धांत फ्रायड से बहुत भिन्न है। युंग के शब्दों मे: "अज्ञात मन केवल अवांछनीय अतीत की इच्छाओं का संग्रहालय मात्र नहीं........., बल्कि यह एक जीवित रणस्थल है जिसकी अभिव्यक्ति प्राचीन प्रतीकात्मक प्रतिमाओं द्वारा होती है और इन प्रतिमाओं से आत्मा के पुनरुत्थान की ओर संकेत होता है।" भाव-प्रतिमाओं के बारे मे, जो कला के प्रतीकात्मक रूप मे प्रकट होती हैं, युग ने यह भी लिखा है: "मुख्यत: ये पौराणिक प्रतिमाएँ है जो पूर्वजों के असंख्य विशिष्ट अनुभूतियों के परिणाम है।······हरएक प्रतिमा मानवीय

[1] फ़िस्टर :—दि साइकोऐनेलिटिक मेथड

स्वभाव और भाग्य का चिह्न है—उस सुख:दुख, आह्लाद-विषाद का इतिहास है जो हमारे पूर्वजों के जीवन मे होते रहें और अब तक सामान्य रूप से वही रूढ़ि चली आ रही है।"

युंग के दृष्टिकोण से सच्ची कला वह है जिसमे युग-युगान्तर के मानव जाति के गूढ़तर भाव-विचारों की अभिव्यक्ति मिलती है। यह प्रतीकात्मक भाव-व्यंजना का सच्चा वास्तविक स्वरूप है। जिसमे व्यक्तिगत दुर्बलता और भाव-ग्रंथियों मात्र की अभिव्यक्ति होती है, वह सामान्य तथा निचले स्तर की कला है। कला का यह स्वरूप चिह्नात्मक माना जाता है। यह अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक नही मानी जा सकती। पौर्वात्य कला की सुदर कृतियों मे ऐसे प्रतीक मिलते है जो सार्वभौम है। इनसे सामान्य तथ्यो की अभिव्यक्ति होती है। व्यक्तिगत अनुभूतियो, भाव, गग-विराग का प्रदर्शन अल्प मात्रा मे होता है। प्राचीन कला के जीवित रहने का कारण इसका संवेग से युक्त होना है। अपने लेख 'ज्वायज ऑफ द स्ट्रीट' मे सी० ई० मॉन्टेग ने लिखा है: "वास्तुशिल्प की अपनी जिह्वा है और इसके पीछे सच कहा जाय तो एक सुंदर इतिहास छिपा हुआ है।" वास्तुशिल्प से किसी देश की सामाजिक परम्परा, रहन-सहन चाल-ढाल, शैली इत्यादि की अभिव्यक्ति होती है और इन सबकी एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभमि होती है। इस प्रकार वास्तुशिल्प की रचना मानव के गढ से गूढ भावनाओ से होती है। इस दृष्टि मे भारतीय कला पूर्णत: प्रतीकात्मक है, क्योंकि इसमे जाति के आचार-विचार, रहन-सहन और उसकी आत्मा की प्रतिच्छाया मिलती है। भरहुत के फ्लैट रिलीफ द्वारा भगवान बुद्ध के जीवन का चित्रण मिलता है; इसमे लोकभावना का भी चित्रण सुदर ढग से हुआ है। इसी प्रकार म्यूरल चित्र-कला से जातीय विशेषताओ का दिग्दर्शन होता है। ये चित्रकला धार्मिक भाव को व्यक्त करती है; यह विशेष रूप से बौद्ध और हिंदू धर्म के मुख्य सिद्धान्तों से अभिप्रेत है। युग के दृष्टिकोण से ये यथार्थ मे प्रतीकात्मक है। युग के शब्दों मे: "सच्चा प्रतीक अर्न्तदृष्टि की अभिव्यक्ति है जिसके बारे मे न तो कुछ ज्ञान है और न तो जिसकी अभिव्यक्ति किसी और रूप मे हुई है।"[1] प्रतीक के बारे मे यही धारणा कुमारस्वामी[2] की भी रही। उन्होंने भी प्रतीक

---

[1] सी० जी० युग :—कन्ट्रिब्युशन टु ऐनेलिटिकल साइकॉलजी, पृष्ठ २३२

[2] कुमारस्वामी—ट्रान्सफारमेशन ऑफ नेचर इन आर्ट, पृष्ठ १२६

की भाषा को चिह्न की भाषा (सीमिऔटिक) से पृथक् करना चाहा। एक युग और दूसरे युग मे स्वरूप भले ही बदल जाय, आधारभूत मे परिवर्त्तन नहीं होता। विश्व की विकास की ओर प्रगति है और विकास की क्रिया अनंत है। जो अतीत मे था वह वर्त्तमान मे नहीं; न तो वह स्वरूप भविष्य मे मिल सकता है। इसका अर्थ पूर्ण परिवर्त्तन नहीं होना। परिवर्त्तन होने पर नयी वस्तु-तथ्य की उत्पत्ति नही होती; प्राचीन अर्वाचीन रूप मे प्रकट मात्र होता है और मानव भ्रमवश उन्हें नया समझ बैठना है। वास्तव मे स्थूल एव धार्मिक दृष्टि से केवल स्वरूप और अभिव्यक्ति मे विकास होता है। यही प्रवृत्ति कला मे भी मिलती है। यदि प्राचीन तथा वर्त्तमान कला का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाय तो स्वरूप मे भले ही भेद हो, पर उन सामान्य आदि तथ्यों मे भेद नही होता जो सार्वभौम रूप मे निहित है।

इस प्रकार विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के अनुसार 'सामूहिक अज्ञात मन' जिसकी अपनी जातीय मानसिक विशेषताएँ है और जो ज्ञात मन के स्तर पर नही लाई गयी है, सभी वर्ग की कला का मुख्य उद्‌गम है। कला के संबंध मे ग्रीक दार्शनिक प्लेटो का भी सिद्धांत युग के ही समान है। प्लेटो के दार्शनिक सिद्धान्तों के एक उपासक ने लिखा है—"कला का ध्येय है प्राकृत सत्य को समझना, जो अस्पष्ट है उसे स्पष्ट करना, प्रकृत और प्राचीन प्रतिमाओं की अभिव्यक्ति के लिये प्रकृत और प्राचीन भाषा का प्रयोग करना—अन्यथा यह कला नहीं।"[१] कला का प्रमुख रचनात्मक कार्य अज्ञात मन की प्रकृत प्राचीन प्रतिमाओं को जीवित बनाये रखना है, जैसे स्त्रैणता सूचक 'एनिमा', पौरुष सूचक 'एनिमस', मातृ सूचक 'मदर इमेजो', पितृ सूचक 'फादर इमेजो' अथवा 'सोल इमेज' इत्यादि। 'स्वप्न और प्रतीकवाद' के परिच्छेद मे इनकी प्रकृति और विशेषताओं पर प्रकाश डाला जा चुका है। इन भाव-प्रतिमाओं का तादात्म्य वास्तविक तथ्यों से नहीं किया जा सकता और न व्यक्तिगत मन की विषय-वस्तुओं से। वस्तुतः व्यक्तियों मे उपस्थित ये सच्ची मानसिक सत्ताएँ है, क्योंकि ये वास्तविक है और जीवन के लिये प्रभावशाली हैं। इस प्रकार के विश्लेषण का यह निष्कर्ष निकलता है कि युग ने कला की व्याख्या के प्रसंग मे दमन-प्रक्रिया को कोई स्थान नहीं दिया है। युंग के

---

[१] ई० बी० हेवेल :—ए हैंडबुक ऑफ इंडियन आर्ट

दृष्टिकोण को अपनाने का अर्थ है—'दमन-सिद्धांत' को कला के प्रसंग मे कोई स्थान न देना जो सुनिश्चित रूप से विवाद का विषय है।

वस्तुतः कला मे वैयक्तिक और अवैयक्तिक दोनों ही तथ्यों का समावेश होता है। यह भ्रामक है कि कला मे कलाकार के व्यक्तिगत आंतरिक संघर्ष और भाव-ग्रंथियों, अथवा उसके मन मे उमड़ते हुये उद्‌गार तथा नैराश्य भाव मात्र के प्रतीक मिलते है। व्यक्तिगत आंतरिक संघर्ष कला की प्रेरणा है। किंतु कला मे इसी का प्रदर्शन नहीं होता; इसमे जातीय तथ्यों का भी दिग्दर्शन होना है—उन गूढ प्रवृत्तियों और भाव-कल्पनाओं का जो मानव के व्यक्तित्व मे सार्वभौम रूप से क्रियाशील रहती है। जिन प्रवृत्तियों और मन संबंधी तथ्यों की अभिव्यक्ति कला द्वारा होती है, वे प्रत्येक जाति, काल और स्थान के मनुष्य मे विद्यमान मिलती है। आश्चर्य है कि व्यक्तिगत तथ्य भी जातीय तथ्य का रूप ग्रहण कर लेते है और इसी मे कला का सौन्दर्य-मूल्य निहित होता है। फ्रायड ने सुसंस्कृत और असंस्कृत सभी कलाओं के संबंध मे कलाकार की व्यक्तिगत दमन की हुई इच्छाओं मात्र का प्रसंग उठाया और यह उनकी भूल थी। उन्होंने अज्ञात मन की धारणा को सीमित रखा और इस प्रकार मानव मन के मुख्य स्तर को अछूता छोड़ दिया। इसीसे फ्रायड के ग्रंथों मे कला का वैज्ञानिक निरूपण और विचारणीय विश्लेषण नही मिलता, यद्यपि उन्होंने स्वप्न और विक्षिप्तावस्था का विश्लेषण सफलता से किया है। वस्तुतः कलाकार की विशेषता तो इसमे रहती है कि वह अपनी कृतियों द्वारा आंतरिक क्षेत्र के सामान्य सिद्धान्तों का समूचा सुंदर दिग्दर्शन करा देता है। जब वह अपने व्यक्तिगत संघर्ष और अतृप्त वासनाओं के बारे मे स्पष्टीकरण करे, तब भी उसकी व्यक्तिगत समस्या का सामान्य-सार्वभौम मूल्य महत्व हो जाना चाहिये और इस प्रकार अभिव्यंजना सार्वभौम रुचि का विषय बन जाय। अज्ञात मन की भाव-कल्पनाएँ सामान्य-सार्वभौम प्रकार की होती हैं, इनसे मानव के सामान्य-सार्वभौम स्वभाव की अभिव्यक्ति होती है भले ही व्यक्तिगत संवेगात्मक अनुभूतियों से रचनाएँ परिप्लावित हों।

कला के प्रसंग मे फ्रायड का काम-संबंधी मनोवैज्ञानिक सिद्धांत नित्से के दार्शनिक सिद्धांत पर अवलंबित है। "काम जीवन का प्रमुख तथ्य है। यदि इसकी अभिव्यक्ति एक दिशा मे होती है तो अन्य मे नहीं हो पाती।"[१] "जीवन,

[१] हैवलॉक एलिसः—साइकॉलजी ऑफ सेक्स, पृष्ठ १७३

धर्म, कला इत्यादि मे जो सबसे अधिक मोहक और प्रशंसनीय तथ्य है वह काम-भाव के ही प्रकाश का फैलाव है।"[१] काम-भावना सब प्रकार की कलात्मक रचना का मूल-उद्गम है और इसे अनुन्मुक्त रूप मे संचित रखना कला के लिये आवश्यक है। नियंत्रण और सामाजिक बंधन द्वारा कामशक्ति को सुरक्षित रखना आवश्यक-सा है; नहीं तो मानव मे रचनात्मक कार्य करने के लिये कोई प्रेरणा ही अवशेष न रह जाती। कामशक्ति की तुलना भाप से की जा सकती है। जब भाप ऐसे बरतन मे संचित होती है जिससे बाहर निकलने का राह उसे नही मिल पाता, तब उसका निरर्थक बिस्फोट होता है। जब इसे उत्पन्न होते ही निकल जाने का अवसर मिलता है तब भी इसका कोई उपयोग नही होता। जब बरतन मे सुरक्षा के लिये नियंत्रणकारी यंत्र लगा रहता है, जिससे शक्ति रूपी भाप सचित की जा सके और सब दिशाओं मे आवश्यकतानुसार भेजी जा सके, तब इसका अधिक से अधिक उपयोग होता है। यह सुरक्षणीय शक्ति 'कामशक्ति' है और यह किसी भी रूप मे परि-वर्त्तित की जा सकती है और किसी भी दिशा मे प्रवाहित हो सकती है। वस्तुतः कामशक्ति सामान्य मानसिक शक्ति है जिसे किसी भी दिशा मे प्रवाहित किया जा सकता है। जब इसका उपयोग रचनात्मक कार्य के लिये होता है तब व्यक्ति कलाकार बनता है, क्योंकि इससे प्रेरणा मिलती है। जब इस शक्ति का व्यय अन्य प्रकृत इच्छाओं की तुष्टि के लिये किया जाता है तब व्यक्ति साधारण वर्ग के व्यक्ति-सा जीवन व्यतीत करता है। 'सामूहिक अज्ञात मन' एक प्रकार से बीज रूप है, अथवा संभावना मात्र है जिसका उपयोग कला मे सांस्कृतिक उपलब्धियो के लिये किया जाता है।

इस प्रकार मानसिक शक्ति को सुरक्षित रखने और उसे उचित दिशा मे प्रवाहित करने पर ही कला की सृष्टि होती है। कामवृत्ति के अतिरिक्त वस्तुतः मानव मे 'रचनात्मक वृत्ति' भी होती है। इस ओर युग ने भी स्पष्ट संकेत किया है। यह वृत्ति हरेक व्यक्ति मे विकसित, अर्ध-विकसित रूप मे उपस्थित रहती है। अज्ञात मन के द्वारा इसकी पुष्टि नहीं होती। यह तो अज्ञात मन की स्वाभाविक विशेषता है जो वस्तुतः सभी वर्ग की कलाओं के लिये उत्तरदायी होती है। इस रचनात्मक वृत्ति तथा कामवृत्ति मे समीकरण-एकीकरण नहीं हो सकता, क्योंकि फ्रायड की कामवृत्ति कायिक है और इसका एक मात्र

[१] डा० भगवान दास : साइन्स ऑफ इमोशन्स, पृष्ठ ४२१

प्रयोजन अपनी ही तुष्टि है। इस कारण यह समर्थन करना कि मानव मे दो वृत्तियाँ होती है, विवादास्पद नहीं है।

'रचनात्मक वृत्ति' के अत्यंत प्रबल होने पर व्यक्ति का शब्दों अथवा तूलिका और रंग से खेलना अत्यंत स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। सच्चे कलाकार मे रचनात्मक वृत्ति बहुत प्रबल रहती है और वह मनमाना बैठा भावनाओं की लड़ी पिरोया करता है। कलाकार शारलॉट ब्रौन्टे की यह विशेषता रही कि कभी तो वह भावनाओं से मनमाना खेलता, और कभी प्रयास करने पर भी कोई रचना न कर पाता और अपने आप मे ही सिमटा पड़ा रहता। जिस प्रकार पृथ्वी से वृक्ष को पौष्टिक द्रव्य मिलता है और वृक्ष हरा-भरा बना रहता है, उसी प्रकार मानव मे रचनात्मक वृत्ति विद्यमान होती है और उचित उत्तेजनाओं द्वारा इसकी समुचित पुष्टि होती रहती है। रचनात्मक वृत्ति एक हरा-भरा पौधा है; जब इसका प्रभुत्व बढ़ता है, अन्य वृत्तियाँ इसकी चेरी बन जाती है। विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के अनुसार यह एक मुक्त भाव-ग्रंथि है, अर्थात् मन का विलग हुआ भाग है : "पौधा पृथ्वी की उपज मात्र नहीं, बल्कि स्वकेन्द्रित एक जीवित रचनात्मक क्रिया है और इसका मूल तथ्य पृथ्वी के गुण पर निर्भर नहीं करता। इसी प्रकार कला रचनात्मक है जिसमे प्रत्येक पूर्वार्ध अवस्था का स्वतंत्र रूप से प्रयोग किया गया है। कला का निरूपण-विश्लेपण वैयक्तिक है। यह पूर्वार्ध अवस्था मे नही अपने मे निहित होता है।"[1] इस पीठिका का अनुमोदन करने का अर्थ है स्वप्न के प्रतीकों और कला के प्रतीकों का अलग-अलग अस्तित्व स्थापित करना। स्वप्न-प्रतीक की व्याख्या परिस्थिति के प्रसंग मे होती है और कला-प्रतीक मे युंग ने केवल भावात्मक प्रतिमाओं का प्रतिनिधित्व स्वीकार किया।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कला की उत्पत्ति रचनात्मक वृत्ति से होती है; इसका उद्भव कामवृत्ति से नही हुआ है। रचनात्मक वृत्ति का स्वतंत्र अस्तित्व होता है। कामवृत्ति से उत्तेजनाओं के रूप मे सामग्रियाँ प्राप्त होती हैं। यह मानव की वंशागत् विशेषता का एक भाग है। कला के प्रसंग मे रचनात्मक वृत्ति की धारणा का प्रतिपादन युंग का निजी प्रशंसनीय अन्वेषण है। कामवृत्ति को कला की प्रेरणा रूप मे स्वीकार करना कला को समाज की दृष्टि

[1] सी० जी० युंग :—कन्ट्रिब्युशन टु ऐनेलिटिकल साइकॉलजी, पृष्ठ २३४

से वर्जित बनाना है। मानव-जीवन के सांस्कृतिक विकास मे कला का बहुत ऊँचा स्थान है। इसीसे शिक्षाशास्त्रियों ने मनोविश्लेषणात्मक विवरण की ओर ध्यान नहीं दिया है। सौन्दर्यात्मक मूल्यांकन के लिये फ्रायड ने सचमुच कोई मापदण्ड नहीं दिया है। इसीसे युंग ने यह आक्षेप किया कि "फ्रायड ने जिस नई धारा का परिचय दिया उससे साहित्यिक इतिहासकार को प्रेरणा मिली जिससे वैयक्तिक कला की रचना के विशेष गुणों को कवि के निजी व्यक्तिगत जीवन से संबंधित किया गया, किंतु इससे अभी तक कला का जो वैज्ञानिक विवरण प्रचलित था उससे अधिक कुछ न प्रेपित हो सका—केवल यह कि कवि के जीवन के संबंध की कुछ व्यक्तिगत बातें चेतन और अचेतन रूप से उसकी कृतियों मे बनी हुई हैं।"[१] इस प्रकार कला का मनोविश्लेषणात्मक विवरण मनोवैज्ञानिक साहित्यक विवरण के ही स्तर पर हुआ है और यह किसी प्रकार भी गूढ़ नहीं है। यह एक साधारण भूमिका है कि कलाकार भाव-ग्रंथियों का आखेट होता है और उसकी कृतियाँ निगृहीत इच्छाओं का प्रतीकात्मक प्रदर्शन होती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कलाकार की महत्ता भाव-ग्रंथियों के अनुपात मे है, जो कि अनजाने मे उसके आंतरिक क्षेत्र मे स्थान किये हैं। किंतु यह सत्य नहीं है। तब तो प्रसिद्धि के लिये सभी जीवन की जटिलता-विषमता का आवाहन करते। सभव है कलाकार का अज्ञात मन जटिल न हो और वह अज्ञात मन मे काम-भाव से मुक्त हो।

इसके अतिरिक्त मानव-स्वभाव बहुरंगी होता है। जिन वृत्तियों से मानव का जीवन अभिभूत है. वे जिज्ञासा, विद्रोह, प्राप्ति, मातृ, आत्म-प्रतिपादन और समूह सभी प्रकार की हो सकती है। कलाकार के स्वभाव के अनुरूप उसमे इनमे से किन्हीं का भी आधिक्य या अल्पांश मे प्रभुत्व हो सकता है। वस्तुतः फ्रायड आधुनिक मनोविज्ञान के प्रवर्त्तक है और इनकी सूक्ष्म दृष्टि का सभी ने समर्थन किया है। तब भी सीमित-संकुचित दृष्टिकोण होने से फ्रायड का पर्याप्त विरोध भी किया गया है। धर्म-भाव को 'काम' से अभिभूत समझना निर्मूल है। वस्तुतः मन के निचले स्तर से प्रेरणाएँ मिलने पर कलाकार ऐसी रचनाएँ करता है जो सामान्य रूप से मानव जाति मे उपस्थित मानसिक क्रिया-व्यापार और सत्ताओं की द्योतक है। अंग्रेज़ी साहित्य के उद्‌भट कवि शेले का काव्य देखकर हृदय सुख:दुख, आह्लाद-विषाद से परिप्लावित हो जाता

[१] सी० जी० युंग :—कन्ट्रिब्युशन टु ऐनेलिटिकल साइकॉलजी, पृष्ठ २२८

है—विषाद उत्पन्न होता है कवि के वेदना पूर्ण गानपर; आह्लाद उमड़ता है कवि की अनूठी विजय पर। यही भाव प्रदर्शक के हृदय मे उठता है और उसके सम्मुख जीवन का सच्चा चित्र खिच जाता है। बात यह है कि निचले गूढ स्तर का भाव (वेदना-आह्लाद) गूढ़ को स्पर्श करता है और इस प्रकार श्रोता का उनसे अभिभूत होना स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। श्रोता को अपने और कलाकार के अज्ञात मन की भाव-कल्पनाओं मे साम्य मिलता है। उसे सदैव व्यक्त या अव्यक्त रूप से एकीकरण की अनुभूति होती है। कुछ कलाओं मे सामान्य-सार्वभौम तथ्य व्यक्त और स्थूलरूप मे विद्यमान होते हैं; कुछ मे अव्यक्त रूप से। अव्यक्त होने पर संभव है, मानव भूल से उन्हें वैयक्तिक समझ बैठे।

इस प्रकार हरएक शैली-सरचना जो प्रभावोत्पादक है, उसमे प्रशसक को कलाकार की व्यक्तिगत छिपी इच्छा मात्र की अभिव्यक्ति नहीं, सामान्य रूप से मानवता की ध्वनि गुजरित मिलती है। भावो की अभिव्यक्ति मे मानसिक इतिहास, मनोवैज्ञानिक सत्ताएँ छिपी रहती है। प्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियर ने मानव की उस सामान्य मानसिक दशा का चित्रण पात्र हैमलेट द्वारा मोहक रूप मे उपस्थित किया है जिसमे व्यक्ति किसी निश्चित ध्येय पर नहीं पहुँच पाता। इसी मानसिक तथ्य का निरूपण लेडी मैकबेथ के हस्त प्रक्षालन की क्रिया मे होता है, जो वस्तुतः हत्या का प्रतीक है। हत्या के पश्चात् निद्रा-विचरण मे जो उसका स्वकथन है उससे रहस्य स्पष्ट हो जाता है। शेक्सपियर ने अपने पात्रों—हैमलेट, मैकबेथ, इयैगो, शाइलॉक, रोमियो, जूलियट, फर्डिनेंड, मिरैन्डा इत्यादि—द्वारा यदि व्यक्तिगत आह्लाद-विषाद और वासनाओ की अभिव्यंजना मात्र की है तो उनका साहित्यिक सर्जन यथार्थ अर्थ मे प्रतीकात्मक नहीं हो सकता; जब कलाकार अपने काल्पनिक पात्रों द्वारा मानव की सामान्य वृत्ति, जीवन की सामान्य अवस्थाओं, वृत्तात्मक प्रवेगों, आह्लाद-विषाद और भाव-इच्छा का दिग्दर्शन कराता है, जो सार्वभौम है, तब उसकी रचना वास्तविक यथार्थ अर्थ मे कला है। वस्तुतः प्रतीकात्मक कला मे मानव की उन विशेषताओं का निरूपण होता है जो सामान्य हैं और आदिकाल से अपरिवर्त्तित रूप मे प्रचलित है। प्रतीकात्मक कला सामान्य भाव-वृत्तियों का चित्रण होता है; व्यक्तिगत का नहीं। युंग ने लिखा है "कलात्मक रचना का रहस्य और प्रभावोत्पादता रहस्यवादी योग-सम्मेलन (पार्टिसिपेशन मिस्टिक)

की ओर उन्मुख होना है—उस स्तर की अनुभूति जहाँ मानवीयता का अस्तित्व है, व्यक्ति का नहीं - जहाँ किसी व्यक्ति-विशेष के सुख-दुख का मूल्य नही होता; मानवीय सत्ता का महत्व होता है।"[1] हैमलेट और मैकबेथ की जीवन-गाथा प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की कथा है; इनसे शेक्सपियर के व्यक्तिगत जीवन का चित्रण नहीं हुआ है। इसी प्रकार कालिदास के मेघदूत की प्रेम-गाथा का संस्कृत साहित्य मे अनूठा स्थान है। कवि की यह कल्पना कि यक्ष अपनी प्रेमिका को प्रेम-सदेश देने के लिये मेघ को दूत बनाता है, बड़ी मार्मिक और मानवीय है: "अकेले तुम्हीं तो संसार के तपे हुये प्राणियों को ठंडक देने वाले हो। इसलिये हे मेघ! कुबेर के क्रोध से निकाले हुये और अपनी प्रिय से दूर मुझ विछोही का सन्देशा भी तुम्हीं पहुँचा आओ। देखो! यह संदेशा लेकर तुम्हें ठाठ से रहने वाले यक्षों की अलका नाम की उस बस्ती को जाना होगा, जहाँ के भवनों मे बस्ती के बाहर वाले उद्यान मे बनी हुई शिवजी की मूर्ति के सिर पर जड़ी हुई चन्द्रिका से सदा उजाला रहा करता है।"

यह काव्य के नायक की व्यक्तिगत गाथा नही है, न तो यह कालिदास के व्यक्तिगत भाव का प्रदर्शन है। प्रेमास्पद के वियोग मे मानव को जो हृदय-स्पर्शी मार्मिक वेदना की अनुभूति होती है, उसी का यह चित्रण है। यह काव्य 'इरौस' का प्रतीक है। मानव के सामान्य क्रिया-व्यापार की पृष्ठ-भूमि मे जो मूल इच्छाएँ तथा संवेगात्मक भाव होते है, उन्हीं का कलाकार ने चित्रण किया है। सामान्य का हमे प्रत्यक्ष नही होता, बल्कि यह अवलोकन अनुभूति का माध्यम है। बाह्य दृष्टि से कला का संकेत व्यक्तिगत भावना की ओर होता है, किन्तु वास्तव मे यह सामान्य भावनाओं की व्यंजना है और इसी मे कला की महत्ता है।

इस आक्षेप का यह प्रयोजन नहीं है कि कला वैयक्तिकता से परे होती है। संभव है कि नवीन सर्जन कलाकार के व्यक्तिगत जीवन से रंगा रहता हो। मूल तथ्य अथवा भावात्मक प्रतिमाएँ मनुष्य मे उपस्थित रहती है और अधिकांशतः वे कलाकार की व्यक्तिगत अनुभूतियों से सिक्त होती हैं। इस प्रकार वैयक्तिक संवेगात्मक अनुभूतियाँ प्रेरक रूप मे कार्य करती हैं।

महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर ने कला का उद्देश्य बहुत ऊँचा माना है:

---

[1] युंग:—मॉडर्न मैन इन सर्च ऑफ सोल, पृष्ठ १९९

"मानव के सच्चे शाश्वत विश्व-सत्य, सौन्दर्य का जीता-जागता चित्रण कला का उद्देश्य है।" उन्होंने लिखा है: "हमारा भाव-संवेग पाचन रस के समान है जो इस मायावी विश्व को अधिक परिचित, स्थायी भाव के विश्व मे परिवर्तित कर देता है।"[१]

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक एडलर के अनुसार कला 'आत्मप्रतिपादन' वृत्ति का निम्न से उच्च स्तर पर स्थानान्तरण है। तब मानसिक शक्ति का व्यय दम्भ-प्रदर्शन मे नहीं हो पाता। इसका उपयोग सामाजिक और सांस्कृतिक उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए होता है। प्रेरणा मिलने पर असंतुष्ट-अतृप्त अन्तर्मुखी व्यक्ति दिवा स्वप्न देखने लगता है और अपनी प्रसिद्धि के लिये वह कलात्मक रचनाएँ करता है; बहिर्मुखी व्यक्ति अपने ऐश्वर्य और पद का प्रदर्शन बड़े यत्न और युक्ति से सामाजिक जीवन मे करता है। इस प्रकार कला ऐसी भावात्मक कल्पनाओं का प्रतीक है, जिसके द्वारा मानव अपनी हीन भावना पर विजय पाता है। भाव-कल्पनाएँ सदैव भावुक प्रकृति की पूरक होती हैं। जहाँ कहीं और जब कहीं किसी व्यक्ति की आकक्षा की पूर्त्ति नहीं हो पाती, वह भाव-कल्पना के सहारे जीवन मे समझौता कर लेता है।

एडलर ने एक ही वृत्ति को जीवन का प्रेरक मानकर कला का जो विवरण दिया है वह असंगत और अवैज्ञानिक है। कला के विश्लेषण मे उनकी यह बहुत खटकने वाली भूल है। इसी प्रकार मैकडूगल ने क्रीड़ा-वृत्ति को कलात्मक रचना का स्रोत मानकर विवादग्रस्त व्याख्या दी है। युग को दृष्टि पैनी और सुलझी हुई थी। उन्होंने बहुत अनूठे ढंग से प्राचीन तथ्यों की ओर विशिष्ट संकेत इस प्रसंग मे किया है। प्राचीन तथ्यों को व्यक्तिगत अनुभूति का आंतरिक भाग मान लेने से किसी प्रकार का दोष नहीं आता; बल्कि इससे व्यक्ति की अनुभूतियाँ अधिक समृद्ध रूप मे व्यक्त हो पाती है। हर्बर्ट रीड का भी यही कथन है: "कला की वे कृतियाँ जो तर्कयुक्त और विचारगम्य नहीं हैं—आख्यायिकाएँ, पौराणिक और पुरातन लोक कथाएँ और कविताओं के रूप मे हैं—वे सभी प्रकार के सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक परिवर्त्तनों, व्यक्तियों के पुनर्जन्म और भाषा के रूपान्तरण के पश्चात् भी अवशिष्ट रहती है। उनकी कहानी हरएक युग मे कही जाती है। विशिष्ट परिवर्त्तन के होते

[१] डा० भगवानदास:—साइन्स ऑफ इमोशन्स, पृष्ठ ४२२

हुये भी उनमे एकरूपता रहती है; अविचारशील और तात्कालिक अर्थ के परे भी महत्वशील होती हैं।"[1]

'स्वप्न और प्रतीकवाद' के परिच्छेद मे स्पष्ट कर दिया गया है कि किस प्रकार स्वप्न के 'व्यक्त अंश' का, जो 'अव्यक्त अंश' का प्रतीक है, सम्बन्ध सदैव कामेच्छा और काम-वस्तुओं से नहीं संभव होता। कला के सम्बन्ध मे यह घटित होना स्वप्न से भी कम संभव है। स्टेकल इस वात पर फ्रायड से सहमत नही है कि कलात्मक प्रतीकों द्वारा कामुकता मात्र का प्रतिनिधित्व होता है, क्योंकि मानसिक क्षेत्र गतिशील होता है। मानव मन की गतिशीलता इससे प्रमाणित होती है कि मानमिक शक्ति रूपी मोता मे निरन्तर प्रवाह होता रहता है। म्थिरता मृत्यु-सूचक है; गतिशीलता से जीवन और पौष्टिकता का बोध होता है। मानसिक शक्ति का प्रवाह निरन्तर रूप से एक दिशा मे कभी नहीं हो सकता।

युंग के ग्रंथ 'कन्ट्रिब्युशन टु ऐनेलिटिकल साइकॉलजी' मे फ्रायड पर आक्षेप हुआ है और इसकी आधारभूमि यह रही कि उन्होंने कला और मानसिक दुर्बलता को एकही वर्ग मे सम्मिलत किया है। युग का कथन है: "यदि कला और मानसिक दुर्बलता की विवेचना यथातथ्य सदृश पदों मे संभव है तब या तो कला एक प्रकार की मानसिक दुर्बलना है, या मानसिक दुर्बलता एक प्रकार की कला हैं।"[2] तब कलाकार वैसा ही औपचारिक केस होगा जैसे मानसिक दौर्बल्य का आखेट व्यक्ति, क्योंकि दोनों मे एक ही प्रकार की दमित वृतियाँ सक्रिय होती है। ऐसी अवस्था मे कला को 'विकृत कामुकता' की कोटि मे रखा जा सकता है। किंतु एक ही वृत्ति से संचलित होने का यह अर्थ नहीं कि इनमे पूर्ण साम्य है।

तात्पर्य यह है कि फ्रायड के ग्रन्थों मे कला को सांस्कृतिक महत्व नहीं दिया गया है; उसे रोग निदान-विषयक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। कला जीवन की असफलता का लक्षण है। मुख्यतः यह प्रकृत वृत्ति-संबंधी असामंजस्य है। लीअनार्दो द विंची की बचपन की स्मृतियों का फ्रायड ने जो विश्लेषण दिया है, वह इसका द्योतक है कि वस्तुतः कलाकार रोग-बद्ध होता है।

---

[1] हर्बर्ट रीड:—कलेक्टेड एसेज़ इन लिटररी क्रिटिसिज़्म, पृष्ठ १०४

[2] युग:—कन्ट्रिब्युशन टु ऐनेलिटिकल साइकॉलजी, पृष्ठ २२७

इस प्रकार संक्षेप मे कला का कारण विक्षिप्तावस्था है। दैहिक दृष्टि से यह एक प्रकार का असामंजस्य है। कला का उद्‌गम अगम्यगामी वृत्ति या अनाचार इच्छा है जो सामान्य प्रकृत मानसिक वृत्ति की द्योतक है और छिपे या परोक्ष रूप से व्यक्त होती रहती है। पौराणिक तथा प्राचीन असभ्य जातियों की रूढियो और परम्पराओं के आधार पर फ्रायड ने ऐसा प्रमाणित किया है। ओदिपस तथा नीकोदमस की कथाएँ इसके अच्छे दृष्टांत है। फ्रायड ने कला को व्याख्या के लिए उत्तम विषय माना; उसे यह रूप नही दिया कि इसमे सभ्यता-संस्कृति का मूल्य निहित होता है। जॉन थॉबर्न ने यह आक्षेप किया कि फ्रायड ने "कला की व्याख्या का प्रयास करके कला की आस्था ही मिटा दी है।"[1] फ्रायड ने अन्य विषयों के समान इसका भी विवरण माँ-बेटे के पारस्परिक संबंध तक सीमित कर दिया है। इससे कला की धारणा का मूल्य ही नहीं रह गया और कला का विषय बचपन की मानसिक प्रवृत्तियाँ मात्र रह गया। विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान ने चिकित्सा-क्षेत्र के बधन से इसे मुक्त किया और यह सिद्ध किया कि कला विक्षिप्तावस्था का अनुभव नही है। इस कारण इसकी व्याख्या चिकित्साशास्त्रीय विवरण से सर्वथा भिन्न होनी चाहिये।

फ्रायड के जिस 'अनाचार इच्छा' सिद्धांत के आधार पर कला और साहित्य की व्याख्या सर्वत्र मिलती है वह विवाद का विषय है। कला और साहित्य की विशेषताओ पर मुख्य रूप से दो प्रकार से विचार करना संभव है: एक प्रकार तो यह है कि कलाकार का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन किया जाय और दूसरा उसकी कृतियों का मनोविश्लेषण की विशिष्ट धारणाओं के आधार पर विवरण दिया जाय। अर्नेस्ट जोन्स और औटोरैंक ने शेक्सपिअर के हैमलेट नाटक का विश्लेषणात्मक अध्ययन करके यह निष्कर्ष निकाला कि वस्तुतः इस नाटक का मुख्य विषय अगम्य के साथ गमन करने की इच्छा है और इसका इसमे प्रतीकात्मक वर्णन है। इदिमस की पौराणिक कथा के समान यह हैमलेट की अनाचार की इच्छा का द्योतक है। हैमलेट की अवस्था ठीक उस व्यक्ति के समान थी जो 'मातृ-पितृ-ग्रन्थि' से त्रस्त है। हैमलेट अपनी पत्नी ओफीलिया से प्रेम न कर सका और न वह अपने पिता की हत्या करने वाले से प्रतिशोध ही ले सका। कारण यह था कि उसमे मातृ-केन्द्रीयण था। जोन्स ने अपने ग्रन्थ 'एसे ऑन एप्लाइड साइकोएनैलिसिस' मे यह स्पष्ट उल्लेख

[1] थॉवर्न :—आर्ट एन्ड द अन्कॉन्शस

किया है कि वस्तुतः हैमलेट की इच्छा माँ से सम्भोग करने की थी। उसने इस इच्छा का दमन किया और फलस्वरूप उसमे अपराध-भाव पैदा हो गया। हैमलेट के अज्ञात मन मे पिता की हत्या करने की इच्छा छिपी हुई थी। उसके मन मे निरन्तर द्वंद्व उठता रहता था। इसीसे वह कुछ निश्चय नहीं कर पा रहा था। बड़ी लम्बी अवधि के बाद ऐसे समय वह निश्चय पर पहुँचा जब उसकी जीवन-संध्या समीप आ चुकी थी। यह उसकी मृत्यु के आवाहन का अवसर था। इस प्रकार हैमलेट के नाटक मे 'अनाचार इच्छा' के अनेक प्रतीक भरे पड़े हैं। शेक्सपियर के नाटक 'सीज़र और क्लेपेट्रा' मे भी इस इच्छा के अनेक प्रतीक दृष्टिगोचर होते है : "मै सीज़र को कुछ कम नहीं चाहता था किन्तु रोम को मै अधिक चाहता था"।

योरोपीय पुराण मे 'नगर' माँ का प्रतीक माना गया है और इस कारण नगर के प्रति प्रेम माँ के प्रति प्रेम का द्योतक है। औटोरैंक ने भी इस बात का समर्थन किया है कि 'अनाचार इच्छा' परिवर्तित और विकृत होकर काव्य मे अनेक रूपों मे प्रकट होती है। युग का दृष्टिकोण इससे भिन्न है। उनके अनुसार मातृ-पितृ-ग्रन्थि बालक की माता-पिता की ओर बाल-इच्छा की द्योतक मात्र है। यह आंतरिक मन के उस संघर्ष को द्योतित करती है जो इस इच्छा के रहने से उत्पन्न होता है। युग को यह मान्य नहीं है कि माँ के प्रति किसी भी व्यक्ति मे कामेच्छा की अनुभूति होती है। संभव है हैमलेट के विषाद का कारण 'हीनत्व-ग्रन्थि' हो जिसमे भय, कायरता, अनिश्चितता इत्यादि भाव निहित होते है।

कला की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि कुछ भी हो, समाज और संस्कृति के लिए कला का विशेष महत्व होता है। समाज और संस्कृति से कला को निरन्तर प्रोत्साहन मिलता है। कला का सांस्कृतिक विकास सौंदर्यात्मक अनुभूति पर निर्भर होता है। यह काव्य के लय पर तथा नृत्य और संगीत के मोहक रूप पर अवलम्बित है। कला सामूहिक है; और सौन्दर्य व्यक्तिगत अनुभूति है। कला मे समूह का आदर्श निहित होता है। कला का तादात्म्य विक्षेप से नहीं हो सकता, यद्यपि मूल मे कलाकार, विक्षिप्त, और साधारण व्यक्ति—सभी एक रूप मे एक ही मानसिक परिस्थिति के दास होते है। सभी मे 'मातृ-पितृ-ग्रंथि' रहती है। कलाकार का संवेगात्मक सम्बन्ध विक्षिप्त व्यक्ति की ही तरह माता-पिता से अधिक रहता है। उसमे इच्छाएँ सक्रिय रहती है। किंतु

इन दोनों की इच्छाओं मे भेद रहता है। कलाकार अपनी वासनाओं से संबंधित द्वंद्व का सफलतापूर्वक ठौर-ठिकाना निकाल लेता है; विक्षिप्त व्यक्ति इससे वंचित रहता है। कलाकार अपनी शक्ति का उपयोग रचनात्मक कृतियों मे करता है; विक्षिप्त व्यक्ति की मानसिक शक्ति का व्यय अशोभनीय और अवांछनीय दिशाओं मे होना है। अपनी वास्तविक सच्ची अनुभूति और इच्छाओं की अभिव्यजना मे कलाकार अपने से भिन्न व्यक्तित्व की झाँकी देता है। अपने चित्रण पर उसे स्वयं आश्चर्य होता है। वह अपने से ही पूछ बैठना है—'क्या मैं इसका चित्रकार हूँ', और उसे ऐसी अनुभूति होनी है कि उमके कला का उद्गम अहं से परे उसके व्यक्तित्व का भीतरी स्तर है। भारतीय दर्शन के अनुसार भी कलाकार का व्यक्तित्व द्विमुखी माना गया है। कला ध्यान को वह अवस्था है जिसमे अनेक प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग होता है। यह व्यक्तित्व की माधारण अवस्था से परे होता है। कलाकार विचार-प्रतिमाओं से उद्वेलित हो जाता है; वह अपने से भिन्न दूसरा व्यक्ति हो जाता है और किमी अन्य की इच्छा के वशीभूत रहता है। रचनात्मक कार्य के लिए उसमे विशेष शक्ति आ जाती है। चेतन जोवन की दृष्टि से, जैसा हर्बर्ट रीड ने मकेत किया है: "वह अपने सीधे-सादे जगत् मे नहीं रहता, वरन् इस प्रकार की पुकारें मुनना है जो पहले आकाश से और अब 'स्व' के गूढ़ स्तर से आती जान पड़ती।"[1] कलाकार अनुभव करता है कि उसकी कृनियाँ अपना स्वरूप स्वयं गढ़ लेती हैं। वह ऐमे विषय की कल्पना करता है जिसकी कल्पना वह चेनन मन मे नहीं करना चाहता, अथवा जो वह अभिव्यजित करना चाहना है वह चेतन मन मे ग्राह्य नही होती। जब भी भावनाओं को प्रक्षेपित करने के लिए कोई उपयुक्त उत्तेजन अथवा विषय-वस्तु मिलती है, भाव-प्रतिमाएँ अज्ञात मन से उठती है और एक नये रूप मे प्रकट होती हैं। सभी विषय-वस्तुओं पर प्रक्षेपण नहीं किया जा सकता। केवल कुछ ही वस्तुओं मे इसकी संभावना और सशक्तता रहती है। किन्तु कला का उद्भव तभी होता है जब अज्ञात विषय प्रक्षेपित होते हैं, क्योकि कला प्रतिरूपक और आत्मनिष्ठ है; इससे निचले स्तर का प्रतिनिधित्व होता है।

कला की व्याख्या के प्रसंग मे एडलर का शरीर-सम्बन्धी 'हीनत्व-ग्रन्थि'

---

[1] हर्बर्ट रीड :—कलेक्टेड एसेज़ इन लिटररी क्रिटिसिज़म, पृष्ठ १०३

सिद्धांत का उल्लेख भी आवश्यक है। एडलर की तो यह स्थापना रही कि सभी कार्यों की योग्यता मानव की अयोग्यता मे निहित होती है। उनके सिद्धांत के अनुसार प्रखर प्रतिभाशील (जीनियस) होना केवल निर्बल अंग की कमी की पूर्ति है। मोज़ार्ट उत्कट गवैया हुआ; संगीत द्वारा उसने अपने कर्ण-दोष का निराकरण किया। देमोस्थनेस महान् वक्ता बन गया, क्योंकि उसको अपने हकलाने के दोष की पूर्ति करनी थी। शरीर-दोष होने से विशिष्ट योग्यता व्यंजित होने की संभावना बढ़ती है। पहले व्यक्ति मे हीनत्व ग्रन्थि उत्पन्न होती है और फिर जब वह अपनी प्रभुता जमाने की प्रवृत्ति से प्रभावित होता है, वह अपनी व्यक्तिगत कमी की पूर्ति का साधन ढूढ़ता है : 'मुझे ऐसा कार्य करना है, जिससे मैं पूर्ण बनू'। एडलर का शरीर-सम्बन्धी हीनत्व-ग्रथि सिद्धान्त इस बात का द्योतक है कि सभी संगीतज्ञों मे कर्ण-दोष रहता है। परन्तु यह बात सदैव नही घटती। फ्रायड का आक्षेप अर्थ-युक्त है : "एडलर का यह कथन सत्य है कि किसी व्यक्ति के शारीरिक हीनत्व की अनुभूति सक्रिय मानसिक जीवन के लिए एक प्रकार से प्रेरक का कार्य करती है और अतिपूरक विधान से योग्यता मे वृद्धि होती है। किन्तु एडलर के दृष्टिकोण का अनुसरण करके यह मानना अतिशयोक्ति और दोषपूर्ण है कि प्रत्येक ललित कला सदा शरीर-सम्बन्धी दोष पर अवलम्बित होती है। सभी कलाकारों के चक्षु मे दोष नही होता और न तो सब वक्ता प्रारम्भ मे हकलाते ही है। ऐसे अनेक प्रमाण है जिनसे यह स्पष्ट होता है कि विशेष शारीरिक समर्थता रहने पर ही कोई व्यक्ति कलाकार बनता है।"[१]

अभी तक कला की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर विचार होता रहा और यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि 'प्रयोगवादी मनोविज्ञान' की दृष्टि से कला कहाँ तक प्रतीकात्मक है। विशिष्ट दृष्टि से कला मे प्रस्तुत प्रतीकवाद की विवेचना करने के लिए संक्षेप मे साहित्य क्षेत्र मे घटित प्रतीकवाद आन्दोलन के इतिहास का उल्लेख करना आवश्यक है। प्रतीकवाद के आंदोलन का प्रारंभ फ्रांस के साहित्यकार जेराल्ड डी० नर्वल की कृतियों मे हुआ। उनकी कुछ कृतियों का रौज़ेटी और सिल्वी ने अंग्रेजी भाषा मे अनुवाद किया। फ्रांस मे प्रतीकवाद सम्प्रदाय के प्रमुख कवि बौदलेया, वर्ले और

---

[१] फ्रायड : कलेक्टेड पेपर्स

मिलार्मे थे। वर्लें ने प्रतीक का प्रयोग स्वतः और प्रकृत रूप मे किया है। मेलार्मे ने अपना दार्शनिक सिद्धान्त स्थापित किया और दार्शनिक तथ्यों के आधार पर प्रतीकों का निरूपण करके इन्हें न्यायसंगत प्रमाणित किया। मेलार्मे ने प्रतीकवाद के आंदोलन मे वैज्ञानिक यथातथ्यवाद के विरूद्ध विद्रोह किया। इस आन्दोलन मे मेलार्मे का स्थान प्रमुख रहा। वे प्रकृति से रहस्यवादी थे। उनके लिए आदर्श विश्व की कल्पना वास्तविक से अधिक सत्य रही। उन्हें दृश्य जगत मे प्रतीकों के ढेर का अनुभव हुआ जो मानव हृदय मे आह्लाद और वेदना का भाव भर देता है और रग और ध्वनि द्वारा आत्मा का आह्लाद सम्प्रेषित होता है। फ्रांस के प्रतीकवादियों ने प्रतीकों द्वारा अदृश्य विश्व का दृश्य बिब उत्पन्न किया है। कितु अंग्रेजी सौन्दर्यवाद फ्रांस से कम सैद्धान्तिक और गूढ़-गोपनीय था; इसके सिद्धान्त फ्रान्स की तरह अननुभवगम्य नही थे। अंग्रेजी प्रतीकवादी अभिव्यंजना (इम्प्रेशन) मात्र से संतुष्ट थे और उन्होंने आदर्श विश्व के रूप मे उनका समारोह करने का प्रयास नहीं किया। इङ्गलैण्ड मे इस आंदोलन के प्रवर्त्तक रोज़ेटी और पीटर थे। रोज़ेटी की कविताएँ आदर्श सौन्दर्य की कल्पना मे परिप्लावित है। उन्होंने अद्भुत और आदर्श प्रेम का चित्रण किया और उनके साहित्य-क्षेत्र मे धर्म की भी धारा का प्रवाह हुआ।

सौन्दर्यात्मक प्रतीकवाद को वाचनिक और अवाचनिक दो वर्गो मे रखने के पहले हमें यह देखना है कि सामान्यतः सौन्दर्य-प्रतीक क्या है। टफ्ट्स के अनुसार "सौन्दर्यशास्त्र मे प्रतीक वह वस्तु है जो अपने तत्कालिक महत्व के अतिरिक्त अन्य विषय विशेषतः आदर्श विषय की ओर इंगित करता है, जो इसमे पूर्णतः निहित हो सकता है।"[१] सौन्दर्यात्मक प्रतीक सदैव वस्तु अथवा अन्तर्दृष्टि होती है जिसका अनुभव या तो प्रत्यक्ष ऐन्द्रिक होता है, या कल्पनात्मक, और जिससे आदर्श विषय-वस्तु निर्देषित होता है। सौंदर्यात्मक प्रतीक का यह रूढ़िवादी सिद्धांत दार्शनिक दृष्टिकोण है। इसमे परिज्ञानशीलता और अस्तित्वशीलता के गूढ़ अर्थो पर बल दिया गया है। किन्तु अब 'संवेग-सिद्धान्त' पर बल दिया जाता है। क्रोचे के अनुसार प्रतीक कला की आत्मा है जिसे सौन्दर्यात्मक अनुभूति से अलग नहीं किया जा सकता और इस अर्थ मे सभी कला प्रतीकात्मक हैं।

---

[१] अर्बन :—लैंग्वेज एण्ड रिऐलिटी, पृष्ठ ४६६

अपने को आध्यात्मिक भ्रान्ति से बचाने के लिए क्रोचे ने प्रतीक को अन्तर्दृष्टि से भिन्न नहीं माना क्योंकि किसी भी अवस्था मे सौन्दर्यात्मक प्रतीक, स्थानापन्न या सूक्ष्म धारणा का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता। आधुनिक काल मे कला मे संवेग का प्राधान्य होता है। कला, वस्तु और भाव का अविच्छिन्न सम्मेलन मात्र है। अनेक भावात्मक सरचनाएँ दृष्टिगत होती है और इनके द्वारा भाव-ग्रन्थि, इच्छा, विचार और मानव के सामान्य स्वभाव का बाह्यीकरण होता है। कला इस दृष्टि से अभिव्यंजना है। भाव के अतिरिक्त अन्य किसी तथ्य से इसका मूल्य नहीं आँका जा सकता।

इस प्रकार सौन्दर्यात्मक प्रतीकवाद का विकास प्राचीन से आधुनिक काल मे हुआ है। इस कारण दो बातें ध्यान रखनी है—एक, विज्ञान के प्रतीक की तरह सौन्दर्यात्मक प्रतीक द्वारा सूक्ष्म विचार नही प्रकट होता: दूसरे, भावात्मक अवस्था के महत्व की ओर सबका ध्यान आर्कषित हुआ। विज्ञान और सौन्दर्यशास्त्र के प्रतीक मे मुख्य भेद यह है: विज्ञान के प्रतीक का उस वस्तु से जिसका वह प्रतीक है, संबंध बाह्य होता है: सौन्दर्यात्मक प्रतीक मे यह उसका अंश है। यह नामपत्र नहीं, बल्कि प्रतिरूप है।

सौन्दर्यात्मक प्रतीक का यह सिद्धान्त भाषा-विषयक और अभाषिक सभी कलाओं मे व्याप्त मिलता है, यद्यपि इसका महत्व भाषा-विषयक भाव की अभिव्यंजना मे विशेष होता है। सुदर सौष्ठव-पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए भाषा एक माध्यम है। इस प्रसंग में काव्यात्मक प्रतीकों का अध्ययन प्रमुख है। किंतु इसकी पृष्ठभूमि के लिए काव्य की भाषा का अध्ययन आवश्यक है। प्रत्येक अभिव्यक्ति मे किसी-न-किसी रूप और कुछ सीमा तक भाव या विचार का प्रतिनिधित्व होता है। काव्य की भाषा सदैव प्रतिरूपक और विवरणात्मक है। काव्य-प्रतीक भाव-विचार के व्यंजनाओं का एक रूप है; किन्तु यह रूपक मात्र नहीं है। प्रतीक की प्रमुखता रूपक मे है, परन्तु प्रतीक और रूपक मे तादात्म्य नहीं स्थापित किया जा सकता। रूपक मे जिसका प्रसंग रहता है, उससे परिचय रहता है; प्रतीक मे आदर्श विषय-वस्तु का परिचय नहीं रहता जो इसमे निहित है। युंग की दृष्टि से प्रतीक का विषय-वस्तु अज्ञात मन की भावात्मक प्रतिमाओं मे निहित रहता है; फ्रायड की दृष्टि से इसका संकेत अज्ञात मन की असंतुष्ट इच्छाओं की ओर है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिकों ने सौंदर्यात्मक प्रतीक को एक निश्चित अर्थ दिया।

"काव्य का अर्थ है अपने शब्दों के आवरण मे प्राचीन शब्द को प्रतिध्वनित करना।"[1] आर्थर सिमन्स ने फ्रांस के प्रतीकवादी कवियों द्वारा जो आंदोलन हुआ उसका गूढ़ अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि साहित्य मे प्रतीकवाद "एक प्रकार की अभिव्यक्ति है, सर्वश्रेष्ठ किंतु यथार्थ, अनिवार्य किंतु स्वच्छंद, जबतक वह अदृष्ट वास्तविकता के लिए रूढ़ि-रूप नहीं प्राप्त कर लेती जो चेतना को बोधगम्य हो।"[2] बॉडइन ने इमाइल वरहरेन के ग्रंथ मे एक कवि और मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से काव्य के प्रतीकों का अध्ययन किया और यह निर्देशित किया कि किस प्रकार प्रतीक समय के साथ अज्ञात मन की यांत्रिक और स्वतः प्रेरित अभिव्यजना बन गयी है। उन्होंने लिखा है: "जिन प्रतीकों के द्वारा भावुक कवि या कलाकार के भावों की व्यंजना होती है, वे निचले स्तर के भाव से सिक्त है; दर्शक का मन भी निचले स्तर मे इन्हीं भावों से परिप्लावित होने के कारण प्रभावित होकर प्रतिक्रियाएँ करता है। कला का प्रभाव सार्वभौम है, क्योंकि यह मन के उस स्तर की उपज है जो समस्त मानव जाति के प्रत्येक व्यक्ति की सम्पत्ति है।"[3] बॉडइन की दृष्टि से प्रत्येक स्वतः मानसिक बिम्ब कुछ सीमा तक प्रतीकात्मक होता है। जिस अनुपात मे कल्पना स्व-प्रेरित होती है उसी अनुपात मे कविता प्रतीकात्मक होती है। प्रतीकवादियों के लिए प्रतीक ही काव्य की आत्मा है और प्रतीकात्मक काव्य वह है जिसमे स्वप्न-निर्माण के नियमों का जैसे सक्षेपण या स्थानांतरण का प्रयोग होता है। प्रतीकवादियों मे अतर्दृष्टि विशेष रूप से होती है। प्रतीक स्वतः व्यक्त होते है; उनका आकस्मिक प्रयोग नही होता। विश्लेषण करने पर पृष्ठभूमि मे गूढ़ मनोवैज्ञानिक इतिहास मिलता है। इसमे मानव की भिन्न-भिन्न मानसिक अवस्थाओं का दिग्दर्शन होता है। श्वेतवर्ण, सप्त नक्षत्र, कँटीले बेर, कमल इत्यादि जिन प्रतीकों का प्रयोग अंग्रेजी साहित्य मे अधिकांशतः है, वे सामान्य महत्व के है। जब कवि ने इनका पहले-पहल प्रयोग किया अथवा उन व्यक्तियों ने जिन्होंने यह निर्धारित किया कि श्वेत शुद्धताके लिये, सात तारे पवित्रता और अन्य प्रतीक अन्य प्रकार के भावों के लिए है, पहले इन शब्दो की

[1] युंग:—कन्ट्रिब्युशन टू एनेलिटिकल साइकॉलजी, पृष्ठ २४५
[2] आर्थर सिमन्स :—द सिमबौलिस्ट मूभमेट इन लिटरेचर, पृष्ठ २
[3] बॉडइन :—साइकोएनिलिसस एण्ड इस्थेटिक्स, पृष्ठ ९

व्युत्पत्ति का विश्लेषण किया ओर यह निष्कर्ष निकाला कि उनके विचारो की व्यजना के लिये ये अधिक कलात्मक रूप है, बाद म ये शब्द धीरे-धीरे प्रचलित बोल-चाल की भाषा म प्रयोग होने लगे। किंतु कवि की यह विश्लेषण और सश्लेषण की क्रिया अचेतन रही ओर इन शब्दो का प्रयोग मन की स्वत कल्पना के रूप म हुआ है। वस्तुत प्रतीको स सम्बन्धित बहुत-सी भावात्मक प्रतिमाएँ अथवा ध्वनि-सस्थान होते है।

युग ने इन भावात्मक प्रतिमाओ का अज्ञान मन की निधियाँ स्थापित किया है। आर्चेटाइप 'अनत अनुभूतियो का मानसिक अवशेष है। ये अनुभूतियाँ व्यक्ति की नही बल्कि पूर्वजो की अनुभूतियाँ है जिनका परिणाम मस्तिष्क की बनावट म जाति परम्परागत-सा है जो व्यक्तिगत अनुभूति का आत्मनिष्ठ निर्धारण है।" इन प्रतिमाओ के अध्ययन की सामग्री काव्य म पर्याप्त मात्रा मे मिलती है, क्योकि ये काव्य की आत्माएँ है। विभिन्न प्रकार की सवेगात्मक चित्तवृत्तियो मे आतरिक सघर्ष होने के कारण स्वप्न म अनेक प्रतिमाएँ सजग हो जाती है और इस प्रकार अज्ञान मन की कुछ भावात्मक प्रतिमाओ का मानवीकरण होता है। दिवास्वप्न ओर पौराणिक कथाओ म हम भावो से निर्धारित कुछ भिन्न रूप के प्रतिमान मिलते है, जो स्वप्न के प्रतिमानो के समान अज्ञात और अपरिचित होते है। काव्य मे भी इन्ही प्रतिमाओ का बाह्य रूप मिलता है और ये प्रतिमाएँ कभी भी कवि की व्यक्तिगत सवेदनशीलता पर नही निर्भर करती। वस्तुत: काव्य द्वारा सामान्य गुण-विशेषता की अभिव्यजना सुन्दर-मोहक रूप मे होती है, व्यक्तिगत जीवन इसका दर्पण है। स्वाभाविक क्रियाओ द्वारा इनका अध्ययन किया जा सकता है ओर इनकी व्यजना कवि सदेव बडे मार्मिक ढग से करता है। शेक्सपियर ने हैमलेट की व्यक्तिगत इच्छाओ वेदनाओ और आकाक्षाओ का चित्रण नही किया है जिनसे वह पीडित था, वरन् उन्होने मानवीय सवेगात्मक उत्ताल तरगो का चित्रण किया है। प्रत्येक प्रकार की कला वस्तुत किसी-न-किसी भावात्मक प्रतिमा या सामान्य प्रवृत्ति से सम्बन्धित रहती है। प्रत्येक युग के व्यक्तियो पर नाटक का प्रभाव पड़ता है। जो प्रतिक्रियाएँ होती है उनसे इन प्रतिमानो के स्वरूप तथा प्रभावोत्पादकता का भली-भाँति अनुमान लगाया जा सकता है। प्रभाव पडने का एकमात्र कारण यह है कि ये मानव-स्वभाव के अग है। कॉलरिज की ऐनसेण्ट मॉरिनर की कविता गूढ और सजल होने से बडी प्रभावोत्पादक है। तीव्र वेदना मे जो शून्यता की अनुभूति होती है,

उसका उन्होंने सुन्दर चित्रण किया है। इसमे 'शैडो' की भाव-प्रतिमा का प्रतिनिधित्व होता है। रॉज़ेटी की कविताओं मे भी यही प्रतिध्वनित मिलता है। कॉलरिज की रचनाओं का अध्ययन करके हृग ऐनसन फासेट ने काव्य को "आन्तरिक संघर्ष का अनैच्छिक किंतु अकाट्य प्रक्षेपण बिंबों या प्रतिमाओं मे बतलाया है।" कॉलरिज ने 'शांतजल' और इस प्रकार 'जहाज का बिना प्रयास जल मे बहना' की प्रतिमाओं का प्रयोग किया है जो वस्तुतः अज्ञात मन की धार्मिक अनुभूति की प्रतीकात्मक व्यजना हैं। कॉलरिज को प्रकृति की वस्तुओं मे अनेक दुरूह प्रतीक दृष्टिगत हुये। प्रकृति के सौरभ मे विभोर हो उन्होंने लिखा है: "मुझे आभास होता है कि मै किसी वस्तु-तथ्य की खोज मे हूं; भाव जो आत्मनिष्ठ है और जिनकी सदैव आस्था बनी रहती है, उनके लिए प्रतीकात्मक भाषा चाहता हूँ; किसी नयी वस्तु के निरीक्षण के लिए नहीं हूँ।" यह स्वच्छन्दतावादी कवियों की विशेषता है। स्वच्छन्दतावादी कवियों को प्रकृति के कार्य-कलाप मे आंतरिक जगत् की अभिव्यक्ति मिलती है। प्रकृति के साथ उपमा देकर उन्होंने अज्ञात मन की कार्य-पद्धतियों को वाह्य रूप दे रखा है। युंग का 'व्यक्तित्व प्रकार'[1] का सिद्धांत साहित्यिकों के व्यक्तित्व के वर्गीकरण के लिए वैज्ञानिक आधार है। स्वच्छन्दतावादी कवि अन्तर्मुखी होते हैं; शास्त्रीय कवि बहिर्मुखी। अन्तर्मुखी स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति की अनेक अवस्थाओं का चित्रण मानव-रूप मे किया हैं, जिससे मानव के जीवन की भिन्न-भिन्न प्रवृतियों, स्वभाव, भाव-विचार और संवेगात्मक अनुभूतियों का चित्रण हो जाता है। कही तो प्रकृति जीवन के रंग से रंगी हुयी है, कहीं यह हरी-भरी पत्तियों और नये फूलों से ढकी है। हरित परिधान मे उसका रूप बड़ा मनमोहक लगता है। प्रकृति का शब्दों या चित्रों द्वारा चित्रित यह रूप मानव जीवन की आह्लादमयी अवस्था का द्योतक है। कहीं यह चित्र कि प्रकृति रक्त से रंजित है, काल का वीभत्स-रूप लिये है, प्रकृति और मानव मे एकरूपता देखना है। अंतर्दृष्टि द्वारा कवि प्रकृति मे आभ्यन्तरिक जीवन की छाया देखता है। कॉलरिज को तूफान, आँधी तथा शांत जल मे मानव की दो विपरीत-विरोधी अवस्थाओं का प्रतीक मिला है। वह स्वयं आह्लाद और जीवन की नीरसता और सूनेपन का भुक्त-भोगी था। भावात्मक होने के कारण ऐनसेन्ट मैरिनर की कविता से प्रतीकों को

[1] युंग :—साइकॉलजिकल टाइप्स

समझने की प्रेरणा-सी मिलती है। मुख्य रूप से ऐसे शब्दों और प्रतिमाओं जैसे वायु, आँधी, बादल, लाल रंग का अर्थ समझने का विशेष प्रयास हुआ है, क्योकि ये सब शब्द भाव से सिक्त होते है। पशु की हत्या अपराध का प्रतीक होता है। तूफान से परिप्लावित सागर, जिसपर परस्पर टकराती उत्ताल तरंगे हों, मानव के मन की उस अवस्था का द्योतक है जिसमे मानव कुछ निश्चय पर न पहुँच सक रहा हो। 'वास्तविकता सिद्धांत' से निर्धारित होने के कारण ज्ञात मन सदैव ही अज्ञात मन का, जो 'सुख सिद्धांत' से संचालित है, विरोधी रहता है। कवि जब कल्पना के पखों पर उड़ता है तो वह चेतना के निचले स्तर से विशेष प्रभावित रहता है। उसे अज्ञात मन से प्रेरणा मिलती है। कवि प्रतीकों को इस आधार पर चुनता है कि चित्र तथा चित्रित वस्तु मे कहाँ तक समानता है—दोनों मे कितना अन्तर, सम्बन्ध तथा एकत्व है। कवि स्वयं अबोध है। वह स्वय नहीं जानता कि वह अपनी कृति द्वारा किस गूढ़ विचार-भाव को अन्य तक पहुँचाना चाहता है। किंतु उसे यह स्पष्ट रहता है कि उसके काव्य की सामग्री वह जो कुछ है उससे रंगी रहती है तथा पूर्वजों के भाव-विचार से और भावी संतति से प्रेरित होती है। कारण यह है कि काव्य मे मानव का वह वास्तविक 'स्व' व्यक्त होता है, जो सबल है और निर्बल भी है, जिसमे भाव-वृत्ति प्रकृत और परिमार्जित रूप मे उपस्थित है; यह 'स्व' दर्शन का आत्मा नही है। साहित्य का दुहरा प्रयोजन माना गया है।

काव्य मे सदैव प्रकृति और विश्व के बारे मे निश्चितरूपेण विवरण मिलता है और इसका विशेष महत्व भी है, क्योंकि पृष्ठभूमि मे अन्तर्निहित गूढ़ भाव इसमे व्यक्त होता है। शैली ने 'ओड टु वेस्ट विण्ड' मे किसी सच्ची घटना के निरूपण का प्रयास नहीं किया है, क्योंकि जो चित्र जीवन का उन्होंने चित्रित किया है वह वास्तविक नहीं है। इसमे यथार्थता का महत्व नहीं होता, प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का महत्व होता है। 'ओड टु द वेस्ट विण्ड' द्वारा अज्ञात मन के अपराध-भाव की अभिव्यक्ति होती है। असीम का उज्ज्वल प्रकाश मन की अबोधकता का द्योतक है। इसका संकेत जीवन की अनुभूतियों की ओर है। अनुभव से मन की पवित्रता-अबोधता नष्ट हो जाती है। इसके प्रतीक अज्ञात मन की अवस्था के द्योतक हैं। बिना समझे-बूझे इस अभिव्यंजना का कोई अर्थ नहीं मिलता। इस प्रकार कवि के वर्णन मे स्तर अर्थ के अतिरिक्त गूढ़ अर्थ होता है जो केवल

व्याख्या और मीमांसा द्वारा समझा जा सकता है। व्याख्या का अर्थ प्रतीकात्मक को यथार्थ या अप्रतीकात्मक रूप देना होता है।

संक्षेप मे भावुकता-प्रधान काव्य की दुहरी अवस्थाएँ होती है : इसमे प्रस्तुत मे प्रकृति का वर्णन रहता है, किन्तु वास्तव मे सूक्ष्म संकेत मानव-स्वभाव की ओर रहता है। जगत और जीव के बारे मे कवि की जो व्यंजना है वह पृथक् हो सकती है किन्तु जो व्यंजित रहता है उसमे भेद नही होता। अर्बन का कथन है : "काव्य का अर्थ है जो इससे व्यक्त होता है, किंतु जो अर्थ है वह व्यक्त नही होता। इसमे सदैव बहुत कुछ अव्यक्त प्रसंग रहता है। काव्य मे जो व्यक्त रूप मे कथित है वह उपन्यास मात्र है, मूर्खता का कथन है—निकृष्ट रूप मे, जैसे प्रकृतिवादी साहित्यको के मस्तिष्क का भयंकर झूठ।"[1] किंतु मानसिक इतिहास को समझने पर अव्यक्त विचार मे अर्थ और भाव सदैव निहित मिलते है।

आत्मनिष्ठ तात्त्विकता जिसका साहित्य मे कीर्तिगान हुआ है, स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' है। सामूहिक अज्ञात मन वैयक्तिकता से अधिक और परे है। इसमे 'एनिमा' व्यक्ति की स्त्रैणता-अवस्था मात्र नही बल्कि सार्वभौम तथ्य होता है। इसमे पुरुष मे जो स्त्री की सामान्य अनुभूति होती है, वह निहित रहती है। साहित्य का सामान्य अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि काव्य मे सामान्यत: स्त्री-सौन्दर्य और लोच का गुणगान किया गया है। कही शरीर सौन्दर्य का चमकते-दमकते रंगो मे वर्णन है; कही कवि मे प्रिय के लिये आतुर आकाक्षा है। ऐसी कविताओ मे कवि के जीवन के उन क्षणो की अभिव्यंजना होती है जब उसमे स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' की दानवीय प्रभुता रहती है। भारतीय कवियो ने स्त्रियो के सौन्दर्य के बारे मे विशेष चित्रण किया है। हिन्दी काव्य मे इस कला मे सुमित्रानन्दन पंत प्रसिद्ध है। स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' स्त्रीत्व काम का व्यंग्य चित्रण है। इसका आगमन सूक्ष्म अस्तित्व के रूप मे नही होता; यह असीम प्रकार की भाव-कल्पनाओ के जाल मे गुथी हुयी है।

साहित्य मे अनेक दृष्टान्त है जिनमे अज्ञात मन की भावात्मक प्रतिमाओ का मानवीकरण हुआ है। ये क्या है ! इसे युग ने स्पष्ट नहीं किया है।

[1] अर्बन : – लैन्गुयेज़ एन्ड रियेलटी, पृष्ठ ४८८

वस्तुतः ये भावात्मक प्रतिमाएँ अज्ञान मन के मनोवेगात्मक सम्स्थान हैं जो सबके लिये सामान्य अनुभूति के विषय होते हैं। परन्तु कवि यह नही जानता कि उसने अपनी भाव-प्रतिमाओं का प्रयोग किया है। बॉडइन ने लिखा है : "समानान्तर और अध्यारोपित स्तर के नीचे जिससे उसकी कविता की रचना हुई है—उसे कुछ ऐसा अनुभव होता है जो उसके लिये भी दुरूह और गोपनीय है और इसीलिये अध्येता के लिये और भी रहस्यमय हो जाती है। वह नहीं जानता कि वह किन तथ्यों का यथार्थतः प्रतीकीकरण करना चाहता है; जिस प्रकार एक गवैया अपने मन मे उठते हुए गान को सुनता है, किंतु उसके मन मे यह चिन्ता नही रहती कि उस गीत का यथातथ्य क्या अर्थ है।"[१] मनोविश्लेषण मे यह वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित किया गया है कि जब कवि, चित्रकार, अथवा शिल्पी अपने को वस्तुनिष्ठ समझता है वह आत्मनिष्ठ होता है और इस प्रकार वह जो कल्पना करता है उसमे अधिक भाव-व्यंजना होती है। यह स्थापित तथ्य है कि कला मन की भाव-कल्पना मात्र नही होती। खिला हुआ बाग, चमकता सूर्य, हरी पत्तियां, थके और कटु अनभव के समय कवि के अन्तर्मुखी चक्षु के सम्मुख स्फुरित होती हैं; ये मानव-स्वभाव सम्बन्धी आवश्यकताओं से संबंधित होती हैं। जब व्यक्ति जीवन की दौड़-धूप मे थक जाता है, वह सुख प्राप्त करने की आंतरिक इच्छा की तुष्टि भाव-कल्पनाओं द्वारा करता है—उन सभी प्रकृत इच्छाओ की जिनकी तुष्टि वास्तविक जीवन मे नही हो पाती। इससे कलाकार को सन्तुष्टि मिलती है, क्योकि यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जो वास्तविक जीवन मे अप्राप्य है उसकी प्राप्ति भाव-कल्पनाओं द्वारा होती है। साहित्य व्यक्ति के 'स्व' का दर्पण है, जो वस्तुनिष्ठ प्रतिभासित होती है। प्रतिमाएँ वस्तुतः आत्मनिष्ठ यथार्थताओं की अनैच्छिक प्रतीक होती हैं। यह मनोवैज्ञानिक सत्य मात्र नही दार्शनिक सत्य भी है कि "सभी कला व्यक्ति की अन्तर्मुखी आत्मा का बाह्यीकरण है, जो स्वभाव मे गुणात्मक होता है।"

इस कारण यह जानने के लिये कि काव्य-प्रतीक क्या है, हमे इस दृष्टि से विचार करना है कि इसमे अर्थ क्या निहित होता है। व्याख्या तब तक पूर्ण नही होती जब तक व्यक्त मे निहित अव्यक्त की दृष्टि से विचार नही होता। साहित्य के दो प्रमुख प्रतीकवादियो दान्ते और इबसन के बारे मे उल्लेख समीचीन है, जिनमे एक प्राचीन कवि है और दूसरे आधुनिक हैं। 'डिवाइन कौमडी'

[१] बॉडइन :—साइकोएनिलिसिस एन्ड इस्थेटिक्स, पृष्ठ ३१

के विशिष्ट प्रतीकों की समीक्षा प्रसंगानुकूल है जिसमे विश्व प्रतीकों द्वारा दान्ते की आध्यात्मिक यात्रा चित्रित की गयी है। इसी प्रकार इबसन के नाटकों द्वारा हमे आध्यात्मिक सत्य के बारे मे अन्तर्ज्ञान होता है। 'वाइल्ड डक', 'द मास्टर बिल्डर', 'जॉन गारब्रिल बोर्कमन', 'ह्वेन वी डेड अवेकन' इत्यादि मे प्रतीकों का आधिक्य है। इबसन ने अन्तर्मुखी जीवन का चित्रण करने के लिये प्रतीकों का प्रयोग किया है। दृष्टांत के लिये पीअरगन्ट मे 'प्याज' का प्रतीक है। पीअरगन्ट अंहकारी था और उसके जीवन का ध्येय था 'पीअर, टु दाई सेल्फ बी एनफ'। क्षुधित होने पर बीजकोश को पाने के लिये वह प्याज के एक छिलका के बाद दूसरा छिलका छीले जाता है। इबसन के विचार से हरेक छिलका सामाजिक संबंध का प्रतीक होता है। यह काव्य की विशेषता है कि इसमे इस स्पष्ट रूप मे सौन्दर्यात्मक विपथीकरण होना है।

पाश्चात्य और प्राच्य साहित्य मे प्रायः रहस्यवादी प्रतीकों का प्रयोग किया गया है, क्योंकि कलाकार मे रहस्यात्मक विचारों को स्थूल रूप मे प्रदर्शन करने की लिप्सा होती है। कला मे रहस्यात्मक तथ्यो का निराकरण नही होता। रहस्यवादी कलाकार की अश्रद्धा अस्पष्ट, दुर्बोध की ओर होती है। उसे अस्पष्ट, अनुज्वल, अनिश्चित और ससीम से घृणा रहती है; उसका सकारात्मक रागात्मक संबध रहस्य, गूढ़ और असीम से होता है। प्रतीकात्मक साहित्य का रहस्यवादी सिद्धांत से निकटवर्ती संबंध होता है।

रहस्यवादी कलाकार मैटरलिंक ने जीवन और कला मे रहस्य की महत्ता का सबसे अधिक अनुभव किया। उनके अनुसार रंगशाला प्रतीकात्मक होती है। रंगमंच पर स्वच्छद, निर्भीक विचरण करने वाले अभिनेता और अभिनेत्रियाँ उन परिस्थियों के प्रतीक है जिनमे मनुष्य रहना है। ये नाटक भय के स्थायी-भाव से आच्छादित है और इस अस्पष्ट आध्यात्मिक भय मे वस्तुतः एक विशेष प्रकार का सौन्दर्य निहित होता है। रहस्यवादियों ने इस सत्य का स्पष्ट अनुभव किया है कि हम अंधेरे से आये हैं और हमे अंधेरे मे ही रहना है। उनकी चिन्ता असीम और अनन्त के लिये रहती है। असीम निराकार के लिये वे इच्छुक होते है और इनका प्रेम ईश्वर के प्रति अत्यधिक होता है और ऐसी संवेगात्मक तीव्रता से वे सिक्त होते है जो साधारण जीवन मे अप्राप्य होता है।

अण्डरहिल के अनुसार साहित्य के रहस्यवादी प्रतीकों को तीन वर्गों मे रखा जा सकता है : यात्रा-प्रतीक, प्रेम-प्रतीक और दैव-प्रतीक। इनके द्वारा तीन प्रमुख सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व होता है जिनमे व्यक्ति की आध्यात्मिक चेतना की यथार्थता से प्रतिक्रियाएँ होती है। आध्यात्मिक अनुभूति की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति सभव नहीं होती; यह सदैव प्रतीकात्मक या सन्दर्भयुक्त और निर्देशनात्मक होती है। दैवी अनुभवगम्यता, पारस्परिक इच्छा और दैवी सर्वव्यापिना तीन गूढ़ इच्छाओ के सदृश है जिनकी तुष्टि केवल रहस्यवादी तथ्यों द्वारा ही संभव है। ये तीन प्रकार की इच्छाएँ तीन माध्यम है जिनमे रहस्यवादी अपने स्वभाव के अनुकूल 'परम' 'निरपेक्ष' सबधी समस्याओ को सुलझाता है। पहली वह इच्छा है जिससे रहस्यवादी एक यात्रिक बनता है। रहस्यवादी कवियों की धारणा मे 'यात्रा' का संकेत आध्यात्मिक यात्रा की ओर है—इस भ्रामक विश्व से अनुभवगम्य विश्व की ओर। धर्मशाला विश्राम-स्थल है, जहाँ यात्री अपने ध्येय की पूर्त्ति होने पर पहुँचता है और उसकी दैवी रहस्यों के बारे की क्षुधा तृप्त होती है। राह मे शराब की दुकाने है, जहाँ थका हुआ यात्री दिव्य प्रेम-रूपी शराब की घूट से अपन को तृप्त करता है। तब उसकी यात्रा समाप्त होती है और उसे प्रकाश मिलता है। हिंदी काव्य मे प्रसाद की कविताएँ इस प्रकार के रहस्यवाद के लिये विशेप प्रशसनीय है। इसका अर्थ है कि रहस्यवादी साहित्य मे काव्य के सरल कथा-वस्तु की पृष्ठभूमि मे आध्यात्मिक तथ्य छिपे रहते है।

रहस्यवादी साहित्य मे यात्रा के बारे मे दो प्रकार से विचार किया गया है : एक, छिपे धन का पता लगाना है जैसे ग्रेल की खोज; दूसरे, विशिष्ट ध्येय की ओर कठिन लंबी यात्रा, जैसा कि वर्णन दान्ते की 'डिवाइन कौमडी' मे मिलता है। ध्येय की प्राप्ति करने के पूर्व प्रार्थक को लंबा राह पार करना पड़ता है। उसका ध्येय ईश्वर के बारे मे ज्ञान प्राप्त करना होता है। सात घाटियाँ है जिन्हें उसे पार करना होगा। पहली अन्वेषण की घाटी है। रहस्यवादी को अपने को भौतिक पदार्थो से निर्लिप्त करना है और उस समय की प्रतीक्षा करना है जब दैवी प्रकाश का प्रभात हो। तत्पश्चात् वह प्रेम की घाटी मे प्रवेश करता है, फिर ज्ञान की घाटी मे, फिर मोह की घाटी मे, फिर एकता की घाटी मे, फिर आश्चर्य की घाटी मे और अतिम घाटी सहार की है जहाँ स्व-आत्मा एक मत्स्य सदृश दैवी प्रेम-सागर मे अपना अस्तित्व खो देती है। इस राह के

अनुगामी वे व्यक्ति होते हैं जिनके लिये ईश्वर दैवी दृष्टि है और वह अपने से बाह्य-पृथक है। जिनके लिए रहस्यवाद का अर्थ परमेश्वर से निकट और व्यक्तिगत संबंध है, उनकी अधिकाश प्रतिमाएँ भौतिक प्रेम की भाषा से उद्धृत की गयी है।[1]

रहस्यवाद के इतिहास मे दूसरे वर्ग के प्रतीको द्वारा एक हृदय की दूसरे हृदय से चाह की अभिव्यक्ति होती है– आत्मा की यह पुकार कि उसका मिलन परमेश्वर से होना है, जो सर्वश्रेष्ठ और सर्वज्ञ है। इसमे 'प्रिय' रूप मे परमेश्वर संबोधित किया गया है। वह दुल्हन रूप मे है जो अपने 'प्रिय' परमेश्वर के लिये प्यासी है। फ्रायड के सिद्धान्त के अनुसार इस प्रकार के रहस्यवादी प्रतीकों द्वारा 'इरौस' की व्यजना होती है। उनके अनुसार ईश्वर भ्रम है, आध्यात्मिक भाव मिथ्या, और मनुष्य मे पारस्परिक आकर्षण, सजातीय हो या विजातीय, के अतिरिक्त कोई स्वतन्त्र आध्यात्मिक स्फुरण नही होता। सबसे उत्कट प्रेम भौतिक प्रेम है। इस कारण मनोविश्लेषण की दृष्टि से रहस्यवादियो की परमेश्वर से मिलन की इच्छा प्रिय से मिलन की इच्छा की परिमार्जित व्यजना है। रहस्यवादी की आध्यात्मिक इच्छा और भौतिक प्रेम मे साम्य होता है और इससे कामात्मक मनोवृत्ति का प्रदर्शन होता है। वस्तुतः परमेश्वर की आस्था की आड मे रहस्यवादी अपनी दूसरे वर्ग से मिलन की इच्छा की अभिव्यक्ति करता है। ईसाई धर्म मे ईश्वर के व्यक्तिगत रूप पर बल दिया गया है और इसलिए इसमे विशिष्ट प्रकार के प्रतीको का प्रयोग हुआ है।

जिनकी यह धारणा है कि रहस्यवादी जीवन का अर्थ ईश्वर की खोज नही है, बल्कि आन्तरिक परिवर्तन है, व विकास या तत्त्व रूपान्तरण के प्रतीको का प्रयोग करते है। सब प्रतीकात्मक पद्धतियो मे जिनमे सत्य अभिरजित है, कोई भी ऐसी पूर्ण और अभेद्य नही जैसी रसायन की होती है। रसायनिक प्रतीक गूढ़ और अस्पष्ट होते है जिससे उनकी व्याख्या विवाद का विषय बन जाती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से रसायनीय प्रतीकवाद से एक महत् मानसिक सत्य का प्रतिनिधित्व होता है। इससे मानसिक परिवर्तन या रूपान्तरण की सामर्थ्य प्रकट होती है। युग का कथन है: "यह अत्यधिक

[1] ई० अन्डरहिल '—मिस्टिसिज़्म, पृष्ठ १३१

आधुनिक मनोविज्ञान की ओर झुकने का कदम है।"[१] सभवत अलकेमी रासायनिक प्रयोग का विषय नही है। यह मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओ को मिथ्या मनोवैज्ञानिक भाषा मे अभिव्यक्ति है। रसायनविदो का रसायनिक पदार्थो पर प्रक्षेपण करने मे अपने ही अभ्यन्तर मे घटित परिवर्तन की प्रक्रिया की अनुभूति होती है। जिन तथ्यो से आध्यात्मिक रसायनविद् अपनी रहस्यवादी जीवन के बारे मे अदभुत रूपक-सबधी रचना करता है, वे प्रसिद्ध है। यह प्रक्रिया कभी रासायनिक भाषा मे निर्धारित होती है, कभी ज्योतिषशास्त्र मे और अधिकाशत इसका वर्णन पशु-प्रतीको—शेर, गिद्ध, कौआ, मगर, गरुण इत्यादि—द्वारा होता है। इन रहस्यवादी प्रतीको का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन साहित्य मे विशेष कौतूहल का विषय है जिसका विशद विवरण युग के प्रमुख ग्रथ 'साइकॉलजी आफ अन्कॉन्शस' मे मिलता है।

अब तक एक विशिष्ट वर्ग के सौन्दर्य प्रतीको का उल्लेख हुआ है जो भाषा-विषयक है। रग-रूप और आकार लय और ध्वनि भाषा-सबधी नही होते, किन्तु इनमे किसी भी प्रकार से काव्य की भाषा से प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मे न्यूनता नही होती, क्योकि इनमे अतर विषय-वस्तु सबधी नही होता, माध्यम सबधी अतर होता है। चित्रकला काव्य से इस आधार पर पृथक है कि काव्य मे सवेग का सबध विचारो से रहता है और यह उसमे अन्तर्हित होता है, कला मे सवेग वस्तुओ मे सबधित रहता है। दोनो प्रकार की अभिव्यक्तियो मे सवेग का प्रक्षेपण कर्त्ता से वस्तु पर होता है। काव्य की ही तरह चित्रकला और शिल्पकला मे प्रयुक्त प्रतीक प्राचीन और सार्वभौम होते है। सदियो से अज्ञात मन के विषय-वस्तुओ की अभिव्यक्ति चित्र-रूप मे होती रही है। विशिष्ट क्षमता और गूढ अनुभूति अधिकाधिक होने से चित्र और शिल्पकला मे आत्मनिष्ठ व्यजना अधिक होने लगी है। ये मन की यथार्थ सच्ची अभिव्यक्तियाँ है।

चित्रकला की ऐतिहासिक रूपरेखा देखने पर हमे यह ज्ञात होता है कि विकास की विभिन्न अवस्थाओ मे विभिन्न प्रवृत्तियो का प्राधान्य रहा। प्रागैतिहासिक युग मे मनुष्य को रक्तपात और धार्मिक कृत्यो के बारे मे उत्सुकता थी। इसीसे मनुष्य की विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का दिग्दर्शन जगलियो

[१] जैकोबी :— साइकॉलजी ऑफ सी० जी० युग, पृष्ठ १३६

के युद्ध-नृत्यों और प्रागैतिहासिक गुफाओं के चित्रांकन मे मिलता है। बाद मे भी राजनीतिक और धार्मिक आधार पर कला का विकास हुआ और इसका चेतन रूप से संबंध सम्राट या देव-पूजा से जुड़ गया। कला का उपयोग देव और सम्राटों की प्रतिष्ठा की वृद्धि के ध्येय से किया जाता था; यह राष्ट्रीय दृढ़ता के लिये नही होता था वस्तुत: आद्य राष्ट्रीय कला धर्म और देशभक्ति की चेरी रही। इसीसे तो प्राचीन समाज के चित्र और शिल्पकलाएँ प्रमुखतः धार्मिक शोभा-यात्रा, बलि और सम्राटों की यश-गाथा से संबन्धित रहीं। पौर्वात्य मन्दिरों और पाश्चात्य गिरजाघरों मे इस प्रकार की कला विद्यमान है। सभ्यता और संस्कृति का विकास और नैतिक भाव का उद्भव होने पर प्राचीन राष्ट्रीय मम्प्रदाय और धर्म मे कौतूहल की कमी हो गयी। मानवीय वृत्तियो और स्थायीभावों की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति मे उत्सुकता की वृद्धि हुई। जब अराष्ट्रीयता के होने से देशभक्ति के स्थायीभाव और धार्मिक उन्माद मे कमी पड़ गई, तब सम्राट और ईश्वर की यश-गाथा के स्थान पर चहुँ ओर सामान्य व्यक्तियों, उपन्यास के नायक-नायिकाओं का गुण-गान होने लगा। यह विद्रोह पाश्चात्य कला मे अधिकांश हुआ। कला का विकास संवेगों के आदर्शता के आधार पर हुआ।

मनुष्य की सामान्य प्रवृत्तियों मे परिवर्त्तन के कारण पाश्चात्य कला मे काम-भाव की अभिव्यक्ति का अधिक अवसर मिला। यह मुख्यतः तभी चरितार्थ हुआ जब कला के द्वारा धर्म और देश-भक्ति के भाव का स्थानान्तरण हो गया और देव गुण-गान का स्थान प्रिय की कीर्त्ति-गाथा ने ले लिया। यह प्रवृत्ति भारतीय कला मे प्रारंभ मे दृष्टिगत होती है। भरहुत और सांची की नग्न स्त्री प्रतिमाएँ और मथुरा शिल्प-कला मे प्रदर्शित अश्लील भावना किसी प्रकार की आध्यात्मिकता से युक्त नही होती; यह प्राचीन उर्वरता (फरटिलटी) और मातृ-पूजन उपासना की सामान्य अभिव्यक्ति मात्र है। यह भारत मे ही नहीं, विश्व मे प्रचलित है। गुप्तकाल मे योग सम्प्रदाय के प्रभाव से काम-भाव परिमार्जित हो गया और इसके फलस्वरूप आध्यात्मिकता ने पेगन कामुकता का स्थान लिया, जिसका प्रमाण सारनाथ और अन्य स्थानों पर स्थापित बुद्ध की मूर्त्तियों द्वारा मिलता है। इसका यह निष्कर्ष नहीं है कि भारतीय कला मे काम-भाव का मुक्त प्रदर्शन अवशेष नहीं रह गया है। अध्यात्म शक्ति भले ही प्रबल हो, प्राचीन युग मे काम-भाव का सम्पूर्ण

निर्वासन किसी प्रकार भी संभव नही रहा। गुप्त और मध्यकालीन शिल्प-कलाओं के विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि काम-भाव आध्यात्मिकता की ओट मे फैला रहा। दसवीं शताब्दी के पश्चात् आध्यात्मिक भाव कुंठित-सा पड़ गया और वज्रयान सम्प्रदाय तथा उड़ीसा और खजुराहो के मन्दिरों की शिल्पकलाओं मे काम-भाव का मुक्त प्रदर्शन हुआ। ऐसा लगता है कि भारतीयों की आस्था पुनः प्राचीन की ओर हो गई है और इसीसे इसमे पुनः कामभाव का प्राधान्य हुआ है। सामान्यतः प्राचीन की ओर उन्मुख होने की एक प्रवृत्ति-सी दृष्टिगत होती है। वस्तुतः पाश्चात्य और पौर्वात्य दोनों ही कलाओं की प्रमुख गाथा प्रेम-सम्बन्धी होती है। गौरमांट ने अपने निबंध 'सकसेस एन्ड दि आइडिया ऑव ब्युटी' मे लिखा है 'कला प्रेम का समापन है, प्रेम-भाव न होने पर कला अवशेष नहीं रह जाती; कला न होने पर प्रेम-भाव एक शारीरिक आवश्यकता मात्र रह जाता है।" वत्तुतः कला और प्रेम मे अति घनिष्ठ सम्बन्ध है और दोनों बहुत कुछ अन्योन्याश्रित है। भारतीय-भित्ति चित्रण से प्रेम के स्थायीभाव का प्रतिनिधित्व होता है। प्रेम-मुद्रा मे ईश्वर की प्रतिमाएँ इसका मोहक प्रमाण हैं।

काम-भाव के अतिरिक्त भारतीय कला की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि भी होती है। आत्मा-पुदगल, अच्छा-बुरा, सत्य-असत्य, प्रकाश-अन्धकार का निरन्तर विद्रोह भारतीय इतिहास की प्राचीन कहानी है और इनका प्रदर्शन कला और साहित्य मे होता है। भारतीय कला ईश्वरमय है और इसमे धार्मिक भाव की अतिशयता है। बौद्धों के वृक्ष, स्तूप, चक्र आदि ईश्वर के प्रतीक होते है। इसी से पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय कला के बारे मे यह ठीक ही कहा है कि इसमे आध्यात्मिक चेतना का प्रतीकीकरण हुआ है। पाश्चात्य समालोचकों का यह कथन पर्याप्त सीमा तक सही है, क्योंकि भारतीय कला का प्रमुख ध्येय धर्म, दर्शन और आध्या-त्मिक सत्य को स्पष्ट करना है। भारतीयों मे धार्मिक चेतना बहुत तीव्र रही है। जितना ही अधिक तुलनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टि से भारतीय कला का अध्ययन किया जाय, यह स्पष्ट हो जाता है कि कला की व्याख्या धर्म की ही पृष्ठभूमि मे की जा सकती है। हिंदू, ईसाई और बौद्ध कलाओं का अध्ययन तद्विषयक दर्शन और धर्म के प्रकाश मे ही सम्भव है। कला धर्म की चेरी रही है और धर्म कला का आलम्बन। पौर्वात्य सदैव आध्यात्मिकता के लिये प्रसिद्ध रहा है और पाश्चात्य को इससे प्रेरणा मिलती रही है।

सामान्य स्तर की साधारण चित्रकला भी मानव की धार्मिक आस्था से जुडी रहती है। इन बाह्यरूपों की आवश्यकता, जो सत्य के प्रतीक है, "दिव्य तत्व को समझने, जीवन के अन्तर्गत जीवन को, सत्य को असत्य के अन्तर्गत, और आत्मा को द्रव्य के अन्तर्गत व्यक्त करने के लिये होती है।"[1] यह पौर्वात्य कला की विशेषता है कि इसम रहस्यवादी विचार को स्थूल प्रतीक द्वारा व्यक्त किया गया है। इस प्रकार का धार्मिक उत्साह और आध्यात्मिक गूढता आधुनिक पाश्चात्य कला मे नही मिलती। इसमे शरीर-सौन्दर्य पर अधिक बल दिया गया है, क्योंकि पाश्चात्य देशो मे आध्यात्मिकता के प्रकाशन के लिये शरीर को विकृत करना मान्य नही होता।

इस प्रकार यह एक स्थापित सत्य है कि पौर्वात्य कला की दार्शनिक और धार्मिक पृष्ठभूमि होती है। अजन्ता, नालन्दा, साची और एलीफेंटा की शिल्प-कलाएँ जिनके प्रतिमान विभिन्न संग्रहालयो मे सुरक्षित है ऐसे जीवित प्रतीक है जिनमे उस युग के मनुष्यों की धार्मिक वृत्तियो और दार्शनिक आस्थाओ की विशेषता का ज्ञान भावात्मक रचनाओ मे होता है। इनकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभमि भी होती है जिसके बारे मे कलाकार और शिल्पकार को कोई ज्ञान नही होता। दृष्टात के लिये 'त्रिमूर्ति'[2] ले ली जाय। इस त्रि-पौरुष शिरोमय देवता— ब्रह्मा, विष्ण, महेश—द्वारा दार्शनिक दृष्टि से तीन शक्तियो का प्रतिनिधित्व होता है, जिनके सहयोग से शांत निरन्तर विश्व का विकास होता रहता है। त्रिमूर्त्ति की प्रत्येक अवस्था पुरुष और प्रकृति से सम्बन्धित होती है। पुरुष के सम्बन्ध मे ब्रह्मा सत्य के प्रतिरूप है; प्रकृति के सबंध मे ब्रह्मा द्वारा सृष्टि की क्रिया का सम्पादन होता है। पुरुष के प्रसंग मे विष्णु विचार और शक्ति के प्रतिरूप है; प्रकृति के सम्बन्ध मे यह रक्षक है। पुरुष के संबंध मे शिव आनन्द और कल्याण के प्रतिरूप है; प्रकृति के संबंध मे वह संहारक है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस त्रि शिरोमय मूर्ति द्वारा मानव के व्यक्तित्व की तीन अविभाज्य अवस्थाओं—ज्ञान, क्रिया और भाव—का प्रतिनिधित्व होता है। सभी चेतन या अचेतन मानसिक तथ्यो मे, जिनमे भाव का प्राधान्य होता है, क्रिया भी निहित होती है। जब तक सभी सक्रिय

[1] ई० बी० हेवल :—ए हैंडबुक ऑफ़ इडियन आर्ट

[2] ई० बी० हेवल :—आइडियल्स ऑफ इंडियन आर्ट, त्रिमूर्त्ति प्लेट ६

न हों, कोई भी मानसिक प्रक्रिया संभव नहीं है। मनुष्य का व्यक्तित्व अथवा मानसिक विकास इन्हीं तीन आवश्यक तथ्यों पर निर्भर होता है, जिस प्रकार विश्व का विकास ब्रह्मा, विष्णु पर अवलम्बित होता है। इसका अर्थ है कि दैवी सत्ताएँ मनोवैज्ञानिक सत्ताएँ हैं। त्रिमूर्त्ति का यह भी अर्थ है कि इसके द्वारा जीवन की तीन प्रमुख वृत्तियों—जनन, स्वरक्षण और संहार—उत्पन्न करना, जीवित रहना और मृत्यु की इच्छा का दिग्दर्शन होता है।

भारतीय कला से एक और दृष्टांत उद्धृत करना प्रसंगानुकूल है. जिससे यह स्पष्ट होता है कि शिल्पकला अज्ञात मन का प्रतीक होता है। स्टेला क्रैम्रिस्क की 'इंडियन टेम्पुल' नामक ग्रथ मे एक प्लेट है जिसके एक ओर बुद्ध की प्रतिमा है जो त्याग की प्रतिमूर्त्ति है और जिससे जीवन की उस अवस्था का चित्रण होता है जिसमे मनुष्य मे जीवित और चिरस्थायी रहने की इच्छा से परे उत्कृष्ट और उच्च कोटि के नैतिक जीवन-यापन करने की इच्छा परिमार्जित और उन्नत होने के कारण उत्पन्न होती है। प्लेट के दूसरी ओर एक बौना है जिसके ऊपर एक यक्षी सजी-धजी, गर्वीली, मोहक रूप मे विद्यमान है। भूमिगत बौने से मानव की तार्किक और बौद्धिक निर्बलता का प्रतिनिधित्व होता है, जो जीवन की वासनाओं का दास होने से यक्षी द्वारा पददलित एक बौने के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। वैज्ञानिक भाषा मे बौना अहं का प्रतिरूप है जो मूलवासना (इड) की प्रभुता के कारण, जिसका प्रतिनिधित्व यक्षी द्वारा हुआ है, शैशव और प्रकृत हो गया है। एक ही मूर्ति मे दो प्रतिमाएँ इसका द्योतक है कि आद्य उपासना का भगवान बुद्ध के त्याग से समायोजन हुआ है। यह दो विरोधी मानसिक अवस्थाओं का द्योतक है। यह इस मनोवैज्ञानिक सत्य का भी प्रतीक है कि चेतन और अचेतन एक दूसरे का पूरक होता है। इस प्रतिमा से यह द्योतित होता है कि मानव मन प्रकाश और अंधकार का सम्मिश्रण है। ऐसे मनोवैज्ञानिक प्रमाण भारतीय चित्रकला और शिल्पकला के कल्पनात्मक प्रतिमाओं मे सहज ही सर्वत्र प्राप्य होते हैं।

प्राचीन कला मे हमे अनेक प्रतिमान मिलते हैं जो दो मानवीकरण —निष्क्रिय और सक्रिय—के संगम हैं और इनकी अभिव्यक्ति शारीरिक आकृति की विकृति द्वारा की गयी है। इसका उत्कृष्ट दृष्टांत यह है कि शरीर की उर्वरता (फर्टिलिटी) और समृद्धता की व्यंजना स्तन और निब के भारीपन द्वारा की गयी है। इस ओर विमुख होना प्रि-रैफ्लाइट और ईसाई चित्रकारों

की विशेषता है। यह एक दूसरा ही रूप है। उस कला से जिसमे नग्न स्त्री और पुरुष के चित्र हैं, परिमार्जित काम-भाव की अभिव्यक्ति होती है। ऐसे कलाकार और शिल्पी दमित कामेच्छा से प्रेरित रहते हैं। प्राचीन स्त्री मूर्तियों से अज्ञात मन की स्त्रैणता सूचक 'एनिमा' का प्रतिनिधित्व होता है। यह विवरण युंग की प्रतिभा की उपज है।

शिव के तांडव नृत्य का, चित्र रूप मे हो या नक्काशी रूप मे, मनोवैज्ञानिक अर्थ होता है। यह कामशक्ति के गत्यात्मक स्वभाव का मानवीयकरण है। यह उस लयात्मक शक्ति का चित्रण है जो सभी वर्गों की मानसिक क्रियाओं का उद्गम है। शिव के नृत्य की व्याख्या से हमे कामशक्ति के इतिहास का सहज ही अनुमान लग जाता है कि किस प्रकार इसका निरंतर प्रवाह मानवीय इच्छाओं से संबंधित विभिन्न दिशाओं मे होता रहता है। उनकी लयात्मक क्रीड़ा की प्रतिमा से यह स्पष्ट होता है कि यह विश्व मे स्पन्दन का उद्गम है। कुमारस्वामी ने लिखा है: "हमारा ईश्वर नटराज है जो अग्नि मे निहित उष्णता की तरह है, अपनी शक्ति को मन और द्रव्यों मे प्रसारित करता है और उन्हें नृत्य के लिये तत्पर करता है।"[१] इसी प्रकार हमारी कामशक्ति जो जीवनशक्ति है उसका प्रसारण सभी मानसिक रचनाओं मे होता है। यह शक्ति जीवन की विभिन्न प्रकृत इच्छाओं की तुष्टि मे निरंतर प्रवाहित होती रहती है। कामशक्ति उत्पादक है, जीवन का स्रोत है। शिव के नृत्य का यह प्रयोजन है कि असंख्य आत्माएँ भ्रम के जाल से मुक्त हो जायँ; कामशक्ति का ध्येय अज्ञात इच्छाओं का प्रदर्शन करना है, जो मानव के व्यक्तित्व का अंश है।

संक्षेप मे, साहित्य, चित्र और शिल्प का रहस्य नवीन दृष्टिकोण से मानव मन के धुंधले निचले स्तर का प्रतीकात्मक प्रदर्शन होता है।

---

[१] कुमारस्वामी :—दि डान्स ऑफ शिव, पृष्ठ ५९

मानसिक रोग और प्रतीकवाद

मानसिक विक्षिप्तता का वैज्ञानिक निरूपण और निराकरण बीसवीं शताब्दी मे प्रारंभ हुआ है । इसके पूर्व मानसिक रोग का अस्तित्व कायिक से अलग नहीं माना जाता था । लोग समझते थे कि स्नायुमंडल मे स्खलन होने, दिमाग पर किसी तरह की चोट पहुँचने, और शरीर के दुर्बल होने पर मनुष्य मानसिक रोग का शिकार हो जाता है । इसी से चिकित्सक लोग प्रायः सूर्य-स्नान और पौष्टिक औषधियों के प्रयोग से कायाकल्प करने का प्रयास करते थे । प्राचीन और मध्यकालीन युग मे ऐसी मानसिक विकृति, जो अब हिस्टीरिया रोग के नाम से प्रचलित है, भूत-प्रेत या मृत आत्माओं से संबंधित की जाती थी और इस कारण इन कल्पित दानवीय आत्माओं को शांत करने के लिये जादू-टोना का प्रयोग होता रहा । किन्तु आधुनिक वैज्ञानिक युग मे जब कि तथ्यों की मान्यता निरीक्षण और प्रयोग के आधार पर की जाती है, ऐसी आत्माओं का अस्तित्व नहीं स्वीकार किया जाता । नये युग का वैज्ञानिक इन्हें मन की रचनाएँ, अथवा अज्ञात भाव-कल्पनाओं का प्रक्षेपण मात्र मानता है । मानसिक रोग और मानसिक उपचार के क्षेत्रों मे इस नये अन्वेषण का यह परिणाम हुआ कि आधुनिक मनोविज्ञान मे विभिन्न मानसिक रोगों की प्रकृति, कारण और लक्षणों को समझने का प्रयास प्रारम्भ हुआ । मानसिक रोगों के सम्बन्ध मे मन-सम्बन्धी तथ्यों का अन्वेषण हुआ और रोगों का वर्गीकरण मानसिक और कायिक वर्गों मे स्थापित हुआ ।

फ्रांस के मनोवैज्ञानिक शारको ने पहले-पहल यह सिद्ध किया कि हिस्टीरिया के रोग का कारण मन का संघर्ष और द्वंद्व होता है । इसके उपचार के लिये उन्होंने सम्मोहन का प्रयोग किया । यह प्रारंभ-मात्र था । फ्रायड ने अपनी सूक्ष्म और पैनी दृष्टि से मानव-स्वभाव के अभेद्य स्तर पर प्रकाश डाला है और उपचार का प्रयास किया है । स्नायु-संबंधी रोगों का उपचार करते

समय फ्रायड का ध्यान एकबारगी रोगों के मानसिक लक्षणों की ओर भी गया जिनसे रोगी विशेष त्रस्त थे। उनका यह निष्कर्ष रहा कि सब रोगों की जड़ निगृहीत काम-वासनाएँ होती हैं। अज्ञात मन की अतृप्त कामेच्छा रोग के लक्षणों के रूप मे प्रकट होती है और इसलिये लक्षणों का प्रतीकात्मक मूल्य होता है। अतृप्त इच्छाएँ जो चेतना मे वहिष्कृत कर दी गई है, प्रतीकात्मक प्रक्रियाओं की मूल कारण है। एक प्रकार से रोग के कारण और लक्षण मे प्रतीकात्मक संबंध स्थापित रहता है। प्रतीकों का अध्ययन करना वस्तुतः मन की विकृत अवस्था के विभिन्न कारणों का अध्ययन करना है। कोई भी रोग अकारण नहीं होता : संभव है पृष्ठभूमि मे मानसिक ह्रास हुआ हो, मानसिक विच्छेद हो, मूल कामेच्छा का दमन हुआ हो, या अतृप्त आत्मप्रतिपादन की इच्छा ही सजग हो उठी हो, या मानसिक शक्ति का विभिन्न दिशाओं मे अनुपात रहित प्रवाह हो, जैसे कामशक्ति का अत्यधिक अन्तर्मुखी होना। कोई भी कारण हो अज्ञात मन मे कुछ-न-कुछ द्वंद्व सदैव चलता ही रहता है जिसकी अभिव्यक्ति मानसिक रोग के लक्षणों के रूप मे होती है। वस्तुतः मानसिक रोग के विभिन्न लक्षण अज्ञात मन के आंतरिक मानसिक नाटक के प्रतीक हैं। मानसिक जीवन एक जाल की तरह है जो रोग की अवस्था मे असामान्य रूप से जटिल और अग्राह्य हो जाता है।

इस प्रकार मानसिक रोगों के संबंध मे एक नया दृष्टिकोण सामने आया। आधुनिक मानसिक रोग-विज्ञान की यह अद्भुत सूझ रही कि मानसिक रोग के लक्षण आकस्मिक नहीं होते। वे सदैव अर्थयुक्त होते हैं, भले ही उनकी व्याख्या संभव न हो पाये या सर्वमान्य न हो सके। मानसिक रोग के लक्षणों की पीठिका होती है; उनका निश्चित अर्थ और मानसिक इतिहास होता है। प्रकृत इच्छाओं की महत्ता होती है और इन्हीं की अभिव्यक्ति रोग के लक्षणों द्वारा होती है। यह मनोविज्ञान के सभी सम्प्रदायों को मान्य है; मूल भेद प्रवेगों की प्रकृति के बारे मे है। इस प्रकार मूल सिद्धांत यह है कि मानसिक विक्षिप्तता सदैव प्रयोजनयुक्त रहती है और इसके द्वारा व्यक्ति की सुरक्षा प्रकृत अतृप्त इच्छाओं के विस्फोटन से हो जाती है। सभी कार्य-व्यापार साधारण हो या विकृत, सरल हो या जटिल, प्रयोजनमय होते हैं, यद्यपि बाह्य दृष्टि से यह आभास मिलता है कि अनेक ऐसी क्रियाएँ बिना प्रयोजन भी होती हैं। सामान्यतः हिस्टीरिया के रोगी का व्यवहार और

कल्पनाग्रह के रोगी का सतर्क होकर किसी क्रिया का संपादन विस्तार से करना निरर्थक प्रतीत होता है; किन्तु इन क्रिया-व्यापारों द्वारा विकृतावस्था मे रोगी के सच्चे व्यक्तित्व की प्रतिच्छाया मिल जाती है। मानव के कार्य-व्यापार और व्यवहार का सामान्यतः ध्येय प्रकृत इच्छाओं को संतुष्ट करना रहता है। मानसिक दौर्बल्य का आखेट व्यक्ति इनकी तुष्टि असंगत अभिव्यक्तियों द्वारा करता है; साधारण व्यक्ति की क्रियाएँ संतुलित और लयात्मक मानसिक जीवन की अभिव्यक्तियां है।

मानसिक स्खलन का अध्ययन करते समय तीन मुख्य तथ्यों से अवगत होना आवश्यक है: एक, यह कि मानसिक रोग के लक्षणों का अर्थ बाह्य स्तर पर नहीं मिलता; दूसरे, इन लक्षणों की पृष्ठभूमि मे जो अज्ञात मन की भाव-इच्छाएँ छिपी हैं उनका अन्वेषण होना, क्योंकि अज्ञात इच्छाओं की ही सार्वभौम प्रभुता रहती है; तीसरे, मानसिक तथ्यों का लक्षण के रूप मे विकृत होना जो किसी प्रयोजन-प्रेरणा विना नहीं होता। इस प्रसंग मे अज्ञात इच्छा-प्रेरणा का महत्व बतलाना आवश्यक है। लक्षण-निर्माण मे मूल इच्छाओं का विकृत होना प्रतिबंधन की तीव्रता पर निर्भर रहता है। अल्पांश मे इच्छाएँ सदैव विकृत होती हैं।

मानसिक रोग के क्षेत्र मे प्रयुक्त प्रतीकों की विशद व्याख्या देने के पहले मानसिक दौर्बल्य के इतिहास का उल्लेख आवश्यक है। मानसिक दुर्बलता के मुख्य तथ्य आभ्यन्तिरक संघर्ष, दमन, और निग्रहीत दमित भावनाओं की अज्ञात सक्रियता होती है। विक्षिप्तता के लिए संघर्ष मात्र पर्याप्त नहीं होता। व्यक्तित्व विकृत तब होता है जब मनुष्य संघर्ष का सामना नहीं कर पाता और कठिनाइयों के सामने अपने को असहाय और दुर्बल मान लेता है। यह शरीर-रोग के सदृश है। जब श्वेत कीड़े निर्बल होते है और रोग के कीड़ों का सामना नही कर पाते तब मनुष्य उस रोग का आखेट होता है। साधारण व्यक्तियों को भी संघर्षो का सामना करना पड़ता है। युंग का कथन है: "साधारण को उन्हीं भाव-ग्रंथियों से मुठभेड़ लेनी पड़ती है जो दुर्बल को रोगी बनाती है।" साधारण और विकृत के बीच निश्चित रेखा नहीं खींची जा सकती। हिस्टीरिया के लक्षणों और असामयिक मनोह्रास के रोगी की भ्रान्तियों की पृष्ठभूमि मे वही प्रक्रियाएँ दृष्टिगत होती है जो साधारण व्यक्तियों के क्रिया-व्यापार मे होती हैं, जैसे पठन-पाठन मे भूल करना, कार्य

सम्पादन के लिये निश्चित कर उसे संपादित न करना इत्यादि। जब व्यक्ति अपनी इच्छाओं को अंगीकार करता है तब वह उन्हें सुलझाने का प्रयास करता है और उसे मानसिक दुर्बलता नहीं आती। किन्तु जब इच्छाएँ अज्ञात रूप से सक्रिय रहती हैं और मानव उनसे अवगत नहीं हो पाता, मानसिक असंतुलन होता है। यह द्वंद्व सदैव प्रतिद्वंद्वी इच्छाओं का संघर्ष है। फ्रायड के दृष्टिकोण से यह अहं और काम-संबंधी इच्छाओं का संघर्ष है। मानसिक दौर्बल्य का स्वरूप अहं और इड के विकास पर निर्भर रहता है।

इस प्रकार अहं के आदर्श और इड की वासनाओं के बीच का संघर्ष मानसिक दौर्बल्य का प्रमुख और प्रथम कारण होता है। व्यक्ति का आदर्श जिसे उसने अपने जीवन मे निर्मित किया है, अहं मे निहित रहता है; वासनायें काम-संबंधी होती है जिनका प्रभुत्व बाल्यकाल से वृद्धावस्था तक रहता है। कामवृत्ति सम्बन्धी इच्छाएँ वर्जित होती हैं और जीवन के आदर्श की विरोधी होती हैं। इसीसे अहं उन्हें सतत दमित करने का प्रयत्न करता है। दमित इच्छाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मानसिक रोग के लक्षणों द्वारा होती है। एडलर की विचारधारा अलग थी। उनके दृष्टिकोण से संघर्ष सदैव हीनत्व-भाव और प्रभुत्व-भाव के बीच होता है। मैकडुगल के अनुसार यह संघर्ष केवल आत्मप्रतिपादन और हीनत्व-भाव का संघर्ष नहीं; यह अन्य वृत्तियों के भी पारस्परिक संघर्ष का परिणाम होता है। संघर्ष मे जो निर्बल होता है, उसे बहिष्कृत किया जाता है; जो सबल होता है, उसे अंगीकार कर लिया जाता है। स्वभाव मे सबल रहते जो इच्छाएँ अधिकतर बहिष्कृत की जाती है वे काम-स्वभाव की होती है, क्योंकि कामेच्छा की पूर्ति पर सामाजिक प्रतिबन्ध होता है। इससे निराशा उत्पन्न होती है और निराशा होने से मानसिक दुर्बलता आती है। प्रमुखतः वे व्यक्ति इसका आखेट बनते हैं जो स्वभाव से दृढ़ नहीं होते।

आन्तरिक निराशा का प्रभाव मानसिक स्वास्थ्य पर भयंकर रूप मे पड़ता है। वाह्य निराशा से पृष्ठभूमि मात्र बनती है। यह स्वयं निष्क्रिय है और तब-तक इससे रोग का आक्रमण नही होता जबतक इसका योग आभ्यन्तर से न हो जाय। अधिकांशतःवाह्य और आभ्यंतरिक निराशाओं की अनुभूति एक साथ होती है; किन्तु ऐसे दृष्टान्त हैं जिनमे मानसिक असंतुलन के लिए आभ्यंतरिक निराशा

पर्याप्त है। शेक्सपियर की नायिका लेडी मैकबेथ सफलता प्राप्त होने पर असंबन्धित होती है। प्रारम्भ मे उसके हृदय मे कोई संघर्ष नहीं रहता; वह किंचित विचलित भी नहीं होती और रानी बनने की कल्पना मे वह अपनी स्त्रीत्व की भी आहुति देने को तत्पर है। किन्तु हत्या के बाद वह निर्बल हो जाती है; उसे बार-बार हाथ धोने की बान पड़ जाती है और स्वप्न-विचरण की अवस्था मे वह अपना दोष भी स्वीकार करती है।

दमन की प्रक्रिया का उद्गम 'नैतिक मन' होता है, जो आभ्यन्तरिक जीवन का द्वाररक्षक है। चेतन जीवन का उच्च आदर्श प्रकृत भाव-इच्छाओं के दमन का सूचक है। दमन से मनुष्य मे मानसिक दुर्बलता आती है और किसी पल-क्षण उसकी दमित इच्छाओं का विस्फोटन संभव रहता है। सामान्यत: अत्यधिक तीव्र विक्षिप्तता मे यह घटित होता है। रोग के लक्षण निगृहीत इच्छाओं के प्रदर्शन मात्र हैं। यह एक प्रकार से व्यक्तित्व के दमित भाग का विद्रोह है। दमन रोग-जन्य है; शमन नहीं। शमन के कारण व्यक्ति मे चिन्ता, क्लेश, अशांति की अनुभूति होती है; इससे विकृत अवस्था नहीं आती। शमन उन वृत्तियों का होता है जिनसे प्रेरित होकर व्यक्ति असामाजिक व्यवहार करता है; जिन वृत्तियों का दमन होता है, वे विकृत, अपरम्परागत और समाज से अस्वीकृत प्रकार की होती हैं। दमन अज्ञात रूप से होता रहता है। कभी तो यह परम्परागत नैतिकता के प्रति भय के कारण होता है, और कभी यह समाज मे स्थान पाने की इच्छा-मात्र से घटित होता है। फ्रायड के अनुसार काम-भाव का दमन करने से मानसिक दुर्बलता आती है; युंग के अनुसार किसी भी इच्छा या भाव का दमन होने पर मानव की मानसिक अवस्था का विकृत और असाधारण होना संभव है। एडलर के मानसिक रोग संबंधी व्याख्या मे दमन-प्रक्रिया की धारणा की विशिष्ट महत्ता नहीं है।

वस्तुत: मानसिक रोगों के प्रसंग मे दमन की प्रक्रिया का विशेष महत्व होता है। दमन की प्रक्रिया के ही योग से वर्जित इच्छाएँ ज्ञात से अज्ञात मन मे बहिष्कृत कर दी जाती हैं। निगृहीत इच्छाओं का बाहुल्य विक्षिप्तों मे सदैव मिलता है। रोगी को इनके स्वभाव और प्रकृति के बारे मे कुछ भी ज्ञान नहीं रहता, क्योंकि अभिव्यक्ति के पश्चात् भी यथार्थ रूप छिपा रहता है। इसी

शेक्सपिअर:—मैकबेथ, पहला अंक

से तो मानसिक असंतुलन की अवस्था का विश्लेषण सरल नहीं होता। वैज्ञानिक निदान के लिए विश्लेषकों का होना आवश्यक है और उन्हें विशेष सक्रिय भी रहना पड़ता है। यदि इच्छाएँ परिवर्त्तित न रहती और उनकी अभिव्यक्ति सीधे-सीधे रूप मे होती, तब विश्लेषण का कार्य सरल-सहज होता। विश्लेषण मे कठिनाई पड़ने का यह भी कारण है कि निगृहीत इच्छाएँ सदैव सबल होती है। सामान्य मत यह है कि गुप्त निगृहीत इच्छाएँ निर्बल रहती हैं और जब वे सबल हो जाती है तब व्यक्ति उनके बारे मे चैतन्य हो उठता है। वस्तुत: निष्कासित इच्छाएँ बलवान और तीव्र होती है। मूल रूप मे संतुष्टि का अवसर न मिलने पर उनकी तुष्टि की कुछ-न-कुछ योजना आवश्यक-सी होती है। यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। इसी से तो अभिव्यक्ति की योजना मानसिक दौर्बल्य के विभिन्न लक्षणों द्वारा की जाती है। इससे स्थानापन्न तुष्टि मिलती है—ज्ञात और अज्ञात इच्छाओं मे समन्वय स्थापित होता है। जो व्यक्ति अहं और अज्ञात मन की इच्छाओं मे समन्वय लाने के लिए अन्य युक्तियों का प्रयोग करने मे समर्थ नहीं होता, संभव है वह रोग का आखेट बन समझौता ला सके।

आभ्यंतरिक संघर्ष, दमन और अज्ञात निगृहीत इच्छाओं के स्वरूप और प्रभावशीलता के बारे मे प्रकाश डालना पर्याप्त नही होता। मानसिक दौर्बल्य का इतिहास देते समय 'प्रत्यावर्त्तन' की धारणा का भी उल्लेख आवश्यक है। प्रकृत वृत्ति-भाव अथवा इच्छा दमन होने के पश्चात् प्रत्यावर्त्तित हो जाती है। तब कामशक्ति मे आगे बढ़ने की गतिशीलता नहीं रह जाती, अथवा बचपन की भावात्मक अवस्था मे यह स्थिर कर जाती है। प्रत्यावर्त्तित कामशक्ति बाल्यावस्था की ओर चुंबक सदृश खिच जाती है। ऐसा होने पर अतीत की स्मृतियों-अनुभूतियों को नवीन जीवन प्राप्त होता है और व्यक्ति के व्यवहार मे विपथन होता है। इससे रोग के लक्षणों को जीवन, बल और प्रोत्साहन मिलता है, जिस प्रकार कि सामान्य अवस्था मे जीवन और मरण की प्रक्रियाओं को बल मिलता है। फ्रायड के अनुसार बाल्यकाल मे निर्मित भावात्मक संस्थानों से रोग के लक्षणों का स्वरूप निर्धारित होता है। बाल्यकाल की भावात्मक अनुभूतियों के लिए, जो वेदना-जन्य होती हैं, फ्रायड ने ट्रॉमा शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार प्रत्येक प्रकार के मानसिक

युंग :—साइकॉलजी एन्ड रेलिज़न,

दौर्बल्य का बीज उन बाल्यकाल की इच्छाओं की तुष्टि के अभाव मे है जो शरीर-रचना मे जाति विकासीय रूप से प्रतिष्ठापित है।

स्वस्थ और संतुलित जीवन व्यतीत करने के लिए मानसिक शक्ति का विभिन्न दिशाओं मे प्रवाह् सानुपात होना आवश्यक रहता है। जब तक मानसिक शक्ति का वितरण विभिन्न दिशाओं मे और वस्तु और आत्म या अहं मे सानुपात होता है, मानव संतुलित और स्वस्थ जीवन व्यतीत करता है। विक्षिप्तावस्था मे एक ओर अधिक प्रवाह होने लगता है और दूसरी ओर कम। अतएव अनेक प्रकार की भाव-ग्रंथियाँ पड़ जाती हैं और हरेक भाव-ग्रंथि स्वतत्र रूप से कार्य करने लगती है और अपने मे तीव्र और बलशाली रहती है। यह घटना-विशेष असामयिक मनोह्लास के रोग मे प्रमुखतः वर्त्तमान रहती है जिसमे रोगी अपनी मानसिक शक्ति को पूर्णतः वाह्य से समेट अहं मे केन्द्रित कर लेता है। ऐसी अन्तर्मुखीकरण की मानसिक अवस्था के लिये फ्रायड के साहित्य मे 'नारसिज़म' शब्द का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः 'वस्तुनिष्ठ' और 'आत्मनिष्ठ' कामशक्ति मे पारस्परिक संबंध होता है। व्यक्ति के अन्तर्मुखीकरण और बहिर्मुखीकरण मे सानुरूपता होने पर ही मनुष्य स्वस्थ जीवन व्यतीत कर सकता है। फ्रायड के दृष्टिकोण से अन्तर्मुखीकरण का तात्पर्य है 'कामशक्ति' को अपने मे समेट लेना, यद्यपि यह विवाद का प्रश्न है और कामशक्ति वस्तुतः मानसिक शक्ति है जिसका प्रवाह कई दिशाओं मे किया जा सकता है। फ्रायड ने कामवृत्ति पर एकमात्र बल दिया है : "कामुकता किसी एक विशेष अवसर पर किसी एक स्थान पर ऐसी प्रक्रियाओं मे जो हिस्टीरिया की विशेषता है यांत्रिक रूप से सक्रिय नही होती, बल्कि इससे प्रत्येक लक्षण अथवा लक्षणों की अभिव्यक्ति मे प्रेरणा मिलती है। रोग के लक्षण रोगी की काम-क्रियाओं के प्रदर्शन मात्र है। एक ही दृष्टांत से कोई इस प्रकार का सामान्य सिद्धान्त नहीं बनता; तब भी बार-बार यही कहूँगा कि मैंने यही अनुभव किया है कि सामान्यतः कामुकता मानसिक दुर्बलता की कुंजी है। जो व्यक्ति इस कुंजी की अवहेलना करे, वह वस्तु-स्थिति से सदैव अनभिज्ञ रहेगा।"[१]

इस विषय पर मूलतः फ्रायड का मतभेद युंग और एडलर से होने के कारण विश्लेषणात्मक और वैयक्तिक मनोविज्ञान की नींव पड़ी। तब भी

[१] फ्रायड :—कलेक्टेड पेपर्स

मानसिक दौर्बल्य के प्रसंग मे दो मौलिक तथ्यों पर फ्रायड और युंग सहमत रहे : एक, साधारण व्यक्ति और मानसिक दौर्बल्य से विकृत व्यक्ति एक ही प्रकार की भाव-ग्रन्थियों के आखेट होते है; दूसरे, पौराणिक कथाएँ और विकृत व्यक्ति की भाव-कल्पनाएँ बहुत कुछ मिलती-जुलती है। मानसिक दौर्बल्य का अध्ययन पौराणिक अध्ययन की कुंजी है। पौराणिक कथाऐं संवेगात्मक भाव-ग्रंथियों की प्रेरणा से निर्मित होती है और ये ही स्वप्न-कल्पना और रोग के लक्षण के प्रेरक है। इस सिद्धात का समर्थन अब्राहम, स्पिलरेन और रैंक द्वारा भी किया गया है।

मानसिक दौर्बल्य के बारे मे एडलर का भी सिद्धात पर्याप्त महत्व का है। एडलर के दृष्टिकोण से मानसिक रोग का मूल कारण 'पौरुषी विद्रोह' है, चाहे व्यक्ति हिस्टीरिया का आखेट हो, या कल्पनाग्रह, या विक्षेप की अवस्था मे हो। दो मनोवृत्तियो पौरुषी और स्त्रैण मे सघर्ष होता है। अतएव व्यक्ति अपनी असमर्थता का कारण शारीरिक और मानसिक दुर्बलता पर आरोपित करके युक्ताभ्यास का प्रयास करता है, जब वह किसी प्रकार से अस्वस्थ नही होता। एडलर के अनुमार आत्मप्रतिपादन की वृत्ति के अत्यधिक विकास और अपमान-भय के भाव मे मानसिक रोग निहित होता है। मानसिक दौर्बल्य 'आत्मसम्मोही भाव' मे बीजारोपित नही होता; इसका उद्गम सामाजिक मूल्यों मे निहित होता है। यह समाज, व्यवसाय और विवाह क्षेत्रों मे असंतुलन है, जो जीवन की तीन प्रमुख समस्याएँ है। मानव स्वभावतः प्रतिष्ठा का भिक्षुक होता है, उसका स्वप्न समाज मे ऊँचा स्थान प्राप्त करना होता है, वह व्यवसाय मे सफलता चाहता है और वैवाहिक जीवन मे सुख-शांति और पारस्परिक प्रेम। किंतु अनुपयुक्त परिवेश होने पर और शरीर-रचना संबंधी दोषों के कारण उसमे जो हीनत्व-भाव उठता है, उससे वह असमर्थ हो जाता है। इसी से वह अपनी सुरक्षा के लिये 'दुर्बल आदतें' (न्युरौटिक) डाल लेता है। इस प्रकार मानसिक दुर्बलता दो मनोवृत्तियों—प्रभुता की इच्छा और हीनत्व-भाव—का पारस्परिक समझौता है।

एडलर ने लिखा है : "प्रत्येक शारीरिक और मानसिक प्रक्रिया से यह स्पष्ट संकेत होता है कि इसका उद्गम प्रभुता प्राप्त करने की इच्छा मे है और इसमे पूर्ण और अमोघत्व का आदर्श निहित रहता है।"[१] मानसिक रोग की

[१] एडलर :—न्युरोटिक कॉन्सटिट्युशन

उत्पत्ति बालक के हीनत्व-भाव की अनुभूति मे निहित होती है, जो माता-पिता मे अधिक प्रभुता की मनोवृत्ति के कारण बालक मे उत्पन्न हो जाती है। माता-पिता के रूखे और उदासीन व्यवहार से बालक मे हीनत्व-ग्रंथि पड़ जाती है और वह स्वतः रचनाएँ, अद्भुत निराधार कल्पनाएँ, और युक्ताभ्यास करने लगता है। ज्ञात मन मे वह लक्षणों का अर्थ नहीं लगा पाता और वह अपने को उनसे मुक्त रखने का प्रयास करता है; अज्ञात मन मे वह उनसे मुक्त नहीं होना चाहता। कारण यह है कि रोग की ओट मे उसे आभ्यन्तरिक क्षेत्र मे राहत मिल जाती है। यह एक तरीका है जिससे वह अपनी सब प्रकार के क्षोभ और भर्त्सना से रक्षा कर लेता है।

इस प्रकार मानसिक दौर्बल्य और मानसिक विकास संबंधी दोष हीनत्व-भाव और नैराश्य-भाव का द्योतक है। फ्रायड का कथन है : "हीनत्व-भाव की आधारभूमि काम-भाव है। बालक को जब किसी का स्नेह नहीं मिलता, उसमे हीनता का भाव उठता है। यही प्रौढ़ के साथ भी घटित होता है।"[1] एडलर के अनुसार हीनत्व-भाव शारीरिक दोष अथवा निर्बलता मे बीजारोपित होता है, जो पैतृक होता है और अर्जित भी। हीनत्व-भाव के प्रति भय का प्रतिदान मिथ्या बाधाओं की कल्पना द्वारा होता है। वैयक्तिक मनोविज्ञान की यह मौलिक आधारभूमि है कि जब कभी व्यक्ति उत्कट आविष्कारक, रचयिता अथवा सौदर्यात्मक रचना, व्यवसाय, समाज और यंत्र-विद्या मे कुशल सिद्ध होने का अधिकारी बनता है और उसका कोई आधार यथार्थ विश्व मे नहीं होता, वह वस्तुतः अपने कायिक अभाव का प्रतिपादन करता है। जो मनुष्य बौद्धिक दृष्टि से विकसित होता है, वह कलाकार बनता है; जिसका बौद्धिक स्तर विकसित नहीं है और इच्छाशक्ति से निर्बल है, वह मानसिक रोग का आखेट हो जाता है। शरीर-अंग की जन्मजात कमी का प्रतिदान अतिक्रमित क्रियाओं द्वारा आवश्यक है। इसका उत्कृष्ट दृष्टांत 'स्थिरभ्रम' रोग है जिसमे ऐश्वर्य भ्रम की प्रबलता रहती है। परन्तु एडलर की शारीरिक कमी के सिद्धांत का खंडन किया गया है। मानसिक दौर्बल्य के अन्य कारणों मे शरीर-संबंधी दोष भी एक कारण है; किंतु यह कहना अनुपयुक्त है कि यही इसका एकमात्र कारण होता है। फ्रायड ने तो एडलर के

---

[1] फ्रायड :—न्यु इन्ट्रोडक्टरी लेकचर्स, पृष्ठ ८८

सिद्धांत का विशेष रूप से खंडन किया है : "मानसिक दुर्बलता की उत्पत्ति मे शारीरिक हीनत्व और अपूर्ण विकास वैसे ही उपेक्षणीय है जैसे स्वप्न की रचना मे यथार्थ प्रत्यक्षात्मक वस्तुएँ। ऐसे हीन भावों का प्रयोग मानसिक दौर्बल्य मे बहाना मात्र है, जैसे अन्य सब उपयुक्त साधनों का होता है। अधिकांश हिस्टीरिया-त्रस्त स्त्रियों मे सौन्दर्य और आकर्षण होता है; निम्न जातियों मे कुरूपता, कायिक निर्बलता और दोष होने पर भी उनमे मानसिक दुर्बलता की वृद्धि नहीं होती।"[1] स्टेकल ने भी एडलर के कायिक हीनता के सिद्धांत पर आक्षेप किया है। मानसिक दौर्बल्य का प्रमुख कार्य हीनत्व की पूर्ति करना नहीं होता। यह लक्षण सभी रोगियो मे नही मिलता। कुछ का तो व्यक्तित्व सचमुच बड़ा आकर्षक और मोहक रहता है। स्टेकल के अनुसार रोग के तीन कारण है : अत्यधिक संवेदनशीलता, दमन, तथा मानसिक संघर्ष। उनके अनुसार धार्मिक भाव के दमन से मानसिक रोगो की उत्पत्ति होती है।

दमित प्रकृत इच्छाओं के स्वभाव के बारे मे विभिन्न मत होते हुए भी यह सार्वभौम रूप से मान्य है कि मानसिक रोग का सम्बन्ध सदैव अर्धचेतन अथवा अज्ञात इच्छाओं और वेदनापूर्ण अनुभूतियो से रहता है जिनका निष्कासन ज्ञात मन से हो गया है, किन्तु वे अज्ञात मन की धरोहर बनी पड़ी है। वेदनामयी अनुभूतियों के कारण आभ्यंतरिक जगत मे अनेक भाव-ग्रंथियाँ पड़ जाती हैं जिनकी अभिव्यक्ति मानसिक दौर्बल्य के रूप मे होती है। रोग के लक्षणों का प्रतीकात्मक महत्व होता है, क्योंकि इनके द्वारा अज्ञात मन की इच्छाएँ व्यक्त होती है। यह बात सभी सम्प्रदायों के विश्लेषकों ने स्वीकार की है। युंग का कथन है : "रोग के लक्षण धरती से उगी शाखाओं की तरह हैं, किन्तु पौधे की जड़ तो पृथ्वी के नीचे का विस्तृत मूलस्तम्भ है। राइजोम (मूलस्तम्भ) से मानसिक दौर्बल्य के वस्तु-तथ्यों का प्रतिनिधित्व होता है। यह भाव-ग्रंथियां अथवा लक्षणों और स्वप्नों का आधारक या गर्भाशय है।"[2] जब कभी तीव्र भाव-ग्रंथियाँ मन के निचले स्तर मे पड़ती हैं, मानसिक शक्ति का अधिकांश व्यय इनके

---

[1] फ्रायड :—कलेक्टेड पेपर्स, खंड ४, पृष्ठ ५६

[2] युंग:—साइकॉलजी एण्ड रेलिजन, पृष्ठ २६

सजाव-सिंगार मे इस उद्देश्य से होता है कि ये ज्ञात मन को ग्राह्य हो जायँ। इस प्रकार ज्ञात मन मे प्रवेश करने के पूर्व भाव-ग्रंथियाँ पूर्णतः परिवर्तित-परिवर्धित हो जाती है। प्रतीकात्मक रूप मे परिवर्धन मुख्यतः तीन प्रयोजनों से होता है : एक, उन इच्छाओं को तुष्ट करना जिनकी पूर्ति के साधन यथार्थ जीवन मे दुर्लभ है; दूसरे, प्रकाशन द्वारा अनावश्यक विषय-तथ्यों के भार से दबने से मन की रक्षा करना; तीसरे, इच्छाओं को वह रूप देना जो ज्ञात मन को स्वीकृत हो। चार्ल्स वर्ग का कथन है कि "जिन किन्हीं लक्षणों का प्रदर्शन हो, अन्वेषण द्वारा यह निष्कर्ष निकला है कि ये लक्षण प्रकृत इच्छाओं की गतिशील शक्ति के प्रकटीकरण की वर्तमान युक्तियाँ हैं, जिन्हें अपने मौलिक रूप मे व्यक्त होने का अवसर नही मिला है।"[1] फेरेन्कजी का कथन है : "अधिकांशतः मानसिक दौर्बल्य की आधारभूमि विकृत काम-भाव के अवगुंठित-मात्र लक्षण है और इन विकृतियों और इनकी अभिव्यक्ति के बारे मे ज्ञान करने के लिये इस अवगुण्ठन को हटाने पर ही उपचार संभव रहता है।"[2] इस प्रकार मानसिक दौर्बल्य अतृप्त इच्छाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है, जो विकृत प्रकार के व्यक्तियों मे अत्यधिक प्रवेगों से सिक्त रहती है। ये गूढ़ संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है और वृत्ति सम्बन्धी इच्छाओं के संघर्ष तथा अन्य कार्य-पद्धतियों की वाहिका, जिनके कारण ज्ञात इच्छाये अज्ञात बन जाती है, अथवा अज्ञात इच्छाएँ चेतन स्तर पर नहीं आ पाती। वस्तुतः अज्ञात मन की मूल प्रकृत इच्छाओं मे 'हाइड सीक' की क्रीड़ा करने की क्षमता होती है, जिससे अद्भुत रूपान्तर हो जाता है। एक अंग्रेज ने व्यंग्य किया था कि यदि आप मानव-स्वभाव का अध्ययन करना चाहते हों तो पागलखाने की सैर कीजिए।

अतः यह स्पष्ट है कि अज्ञात मन के विषय-वस्तुओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होती है; यह इसकी भाषा और विशेषता है। फ्रायड का यह सिद्ध करने का प्रयास सफल रहा कि रोग द्वारा अव्यक्त इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है। इसीलिये रोग के लक्षणों की व्याख्या रोग के मूल कारणों को जानने-समझने के लिये आवश्यक है। रोग का आखेट होने पर कभी

---

[1] चार्ल्स बर्ग:—डीप एनिलिसस, पृष्ठ १

[2] फेरेन्कजी:—फरदर कॉन्ट्रिब्युशन टु दि थ्योरी एण्ड टेकनिक ऑफ साइकोएनिलिसस, पृष्ठ ३२

भावात्मक अवस्था प्रतिबंधित होकर शारीरिक लक्षणों के रूप मे परिवर्त्तित हो जाती है; कभी इसका स्थानान्तरण होता है और यह धरातलीय विचार-धारणा से संबंधित हो जाती है; और कभी भावात्मक अवस्था पूर्णरूपेण अहं से संबंधित हो जाती है और व्यक्ति काल्पनिक चित्र बनाता है, जिसका संबंध वास्तविकता से बिल्कुल ही नहीं होता और उसकी मानसिक शक्ति बाह्य वस्तुओं से समटा ली जाती है। इसलिये कुछ रोगों के लक्षण शारीरिक क्षीणता के रूप मे प्रकट होते हैं; कुछ के ऊपरी विचार-धाराओं के रूप मे; और कुछ मे कल्पनात्मक चित्र के रूप में। इन सब लक्षणों से मानसिक तथ्यों और कार्य-पद्धतियों की अभिव्यक्ति होती है, जो अज्ञात मन मे हैं और जिनका अध्ययन कर मन के निचले स्तर पर पूर्ण प्रकाश डाला जा सकता है।

इस कारण मानसिक रोग के क्षेत्र मे प्रयुक्त प्रतीकों को तीन वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है: शारीरिक संकेत, विचार-धारणाएँ, और मानसिक प्रतिमाएँ। पहले वर्ग मे हिस्टीरिया, स्नायुरोग और अतिचितन रोग है; दूसरे मे कल्पनाग्रह, चिंता और भीतिरोग है; तीसरे में स्थिरभ्रम और असामयिक मनोह्लास हैं। एक वर्ग के रोगी मे दूसरे वर्ग के भी लक्षण दृष्टिगत होते हैं।

हिस्टीरिया रोग मे दमन की हुई इच्छाएँ शारीरिक लक्षणों मे परिवर्त्तित हो जाती है। फ्रायड ने इस प्रक्रिया को 'मौखिक प्रदर्शन द्वारा प्रतीकीकरण' कहा है। 'रूपान्तरण कार्य-पद्धति' की धारणा को फ्रायड के उत्तराधिकारियों ने भी अपनाया है। शारीरिक लक्षण एक प्रकार से कायिक रहस्य है, क्योंकि इनका कोई शारीरिक आधार नहीं होता। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये बोधगम्य होते हैं। जोन्स का कथन है: "फ्रायड की यह पक्की धारणा थी कि हिस्टीरिया के लक्षण दमित इच्छाओं की प्रतीकात्मक और विकृत अभिव्यक्तियाँ हैं और यही एक साधन है जिससे रोगी एक प्रकार के अनिर्वचनीय आह्लाद की अनुभूति करता है।"[१] फ्रायड के अन्य समर्थक फेरेन्कजी ने भी लिखा है: "हिस्टीरिया की संवेदनहीनता, वेदना, लकवा, पेशी-संकोचन इत्यादि दमित इच्छाओं के ही प्रतीक हैं।"[२] वस्तुतः सभी शारीरिक लक्षण—हँसना-रोना,

---

[१] जोन्स :—पेपर्स आन साइकोएनिलिसस, पृष्ठ ४७७

[२] फेरेन्कजी :—फरदर कन्ट्रिब्युशन टु दि थ्योरी एन्ड टेकनीक ऑफ साइकोएनिलिसस, पृष्ठ ३२

मांसपेशियों का अकड़ना, उनका कड़ा पड़ जाना, दम घुटना, वमन होना, लकवा मार जाना, क्रमिक और व्यवस्थित रूप मे पेशी संकोचन, कंपन, विस्मरण और विशेष-रूप से स्पर्श-संबंधी संवेदनहीनता—अज्ञात मन की भाव-कल्पनाओं या इच्छाओं का शारीरिक रूप मे प्रतीकात्मक प्रदर्शन हैं। अन्य लक्षण जैसे स्नायु शूल, अपस्मारी ऐंठन इत्यादि अधिक व्यापक नहीं होते। फ़िस्टर ने लिखा है : "रोगों के लक्षण पुनरावृत्ति ही नहीं, बल्कि नयी रचनाएँ है और उनसे भाव-विचारों की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होती है।"[१]

विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के अनुयायियों के अनुसार हिस्टीरिया का कारण आभ्यन्तरिक क्षेत्र की भाव-ग्रंथियाँ हैं। अंग्रेजी मे इसे युंग के शब्दों मे 'औटौनमस काम्पलेक्स' कहते है। युंग के अनुसार इन भाव-ग्रंथियों की अपनी स्वच्छंद आस्था होती है। भाव-ग्रंथियाँ अनेकों होती है जैसे काम, ऐश्वर्य, अपमान इत्यादि। ये भाव-ग्रंथियाँ व्यक्तित्व के ज्ञात मन से विच्छिन्न होकर अधिकतर रूपान्तरित होकर प्रकट होती है और इनसे परोक्ष रूप से जीवन रंगा रहता है। उनमे अज्ञात भाव-कल्पनाएँ निहित रहती हैं। स्वतंत्र भाव-ग्रंथियाँ उन व्यक्तियो मे निर्मित होती है जिनकी मानसिक अथवा संवेगात्मक परिस्थिति और परिवेश मे संतुलन नहीं मिलता। व्यक्तित्व से विच्छिन्न स्वतंत्र भाव-ग्रंथियाँ मानसिक शक्ति से संपन्न होने से, विशेषतः हिस्टीरिया के रोग मे, बहुत शक्तिशाली हो जाती है। कारण, किसी व्यक्ति की मानसिक अवस्था बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करती है कि कहाँ तक वह अपनी शक्ति अपने मे समेट केन्द्रित कर सकता है, अथवा उसे उन्मुक्त कर सकता है। इसलिये युंग के दृष्टिकोण से हिस्टीरिया के लक्षणों द्वारा उन भाव-ग्रंथियों की अभिव्यक्ति होती है जो दो प्रवृत्तियों के पारस्परिक संघर्ष और दमन के कारण पड़ गई हैं। ऐसी भी भाव-ग्रंथियाँ हिस्टीरिया मे प्रकट होती हैं, जो ज्ञात मन मे कभी प्रकट न हुई हों; वे अज्ञात मन मे उठती है और अपने प्रकृत सबल स्वभाव से बाध्य होकर ज्ञात मन को सम्मोहित-सा कर देती हैं।

फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिक जैने ने विच्छिन्न या हिस्टेरिक प्रकार के रोग का विशेष रूप से अध्ययन किया है। उनका विवरण 'संवेदन मनोविज्ञान' शब्दावली

---

[१] फिस्टर :—दि साइकोएनिलिटक मेथड, पृष्ठ १८५

मे उपलब्ध होतां है । जैने के अनुसार मानसिक जीवन संवेदनाओं का जटिल संगति-पूर्ण प्रवाह है । साधारण मनुष्य मे संवेदनाएँ एक स्रोत मे संयुक्त होती है, अथवा सम्मिश्रित-संश्लेषित होती है; असाधारण व्यक्ति मे अलग-अलग ओर धारा बहने लगती हैं । तब विकृत अवयव एक के स्थान पर दो या अधिक स्रोत का केन्द्र हो जाता है । संश्लेषण के लिये कुछ परिमाण मे शक्ति का रहना आवश्यक है जो मानसिक दुर्बलता की अवस्था मे थकान, तनाव, और विक्षोभ के कारण कम हो जाती है । इसलिये जैने के विचार से विच्छेद का मुख्य कारण 'शक्ति की कमी' है । उनके अनुसार शक्तियाँ प्रवृत्तियाँ है और प्रवृत्ति यांत्रिक सहज-क्रिया है । वारेन की हिस्टीरिया की परिभाषा बोधगम्य है । उनका कहना है—"यह मानसिक अस्थिरता और अव्यवस्था है, जिसकी विशेषता 'विच्छेद' है, अर्थात् यह चेतना से इच्छित किन्तु प्रतिबंधिन पूर्वधारणाओं तथा आत्मनिर्देशित उपस्थापनों का निवारण करना है, जो विक्षिप्त अनुभूतियों, मूर्च्छा, उग्र पेशी आकुंचन इत्यादि मे ही स्पष्ट होते है, जिनका दमित विच्छिन्न अनुभूतियों मे महत् कार्य रहता है ।" संक्षेप मे हिस्टीरिया के रोग के लक्षण मन की उन इच्छाओं के विच्छेदन का प्रयास है जो सामाजिक परम्परा के कारण प्रतिबन्धित है ।

फ्रायड ने अपनी प्रारम्भ की कृतियों मे हिस्टीरिया के प्रसग मे ट्रॉमा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है । उनके दृष्टिकोण से "हिस्टीरिया का लक्षण एक प्रकार का स्थानापन्न है जो रूपान्तरण द्वारा इन वेदनामयी अनुभूतियों को संबंध द्वारा पुनः जागृत करने के लिए उत्पन्न हुआ है । ट्रॉमा का अर्थ है 'बचपन की दुःखपूर्ण अनुभूतियाँ', जिनकी रेखा अज्ञात मन मे अमिट पड़ी रहती है । कामवृत्ति का दमन होने से बचपन मे 'ट्रॉमा' वनते है । ऐसे भी दृष्टान्त है जिनमे रोग के लक्षणों द्वारा एक ही 'ट्रॉमा' का प्रतीकात्मक प्रदर्शन नहीं होता, वल्कि कई संबंधित ट्रॉमा का दिग्दर्शन होता है जिसमे संकलन से वेदनाभरी अनुभूति मे प्रभावोत्पादकता आती है । वालक मे बचपन से ही कामवृत्ति उपस्थित रहती है और एक स्तर से दूसरे स्तर मे इसका विकास होता है । कभी तो विकास साधारण कोटि का होता है और कभी प्रत्यावर्त्तित, जिसमे बचपन की ओर प्रत्यावर्त्तन हो जाता है । कभी किसी अवस्था-विशेष पर मानसिक उन्नति रोक दी जाती है, अर्थात् 'स्थिरीकरण' हो जाता है । बाल्यावस्था की भाव-ग्रंथियों की ही अभिव्यक्ति प्रौढ़ व्यक्तियों

मे परिवर्त्तित रूप मे होती है। उनका व्याधि-जनक प्रभाव तभी पड़ता है जब प्रौढ़ होने पर भी अज्ञात स्मृतियों के रूप मे वे जाग्रत रहें। जब व्यक्ति को इन बचपन की काम-मूलक अनुभूतियों की चेतना रहती है, उनमे किसी प्रकार की विक्षिप्तता नहीं आती; अनुभूति की चेतना न रहने पर प्रकार-प्रकार की मानसिक व्याधि उत्पन्न होती है। इनकी पुनरावृत्ति स्मृति-रूप मे होती है; रचनाएँ रूप मे नहीं होती।

फ्रायड का 'मानसिक ट्रॉमा' और 'बचपन की कामवृत्ति' के सिद्धांतों का खंडन हुआ और इसी कारण वे अपनी पिछली कृतियों मे हिस्टीरिया के मानसिक गठन का विवरण देते समय इस अनिवार्य परिकल्पना से विरक्त हो गये। पिछली कृतियों मे फ्रायड ने यह स्थापित किया कि हिस्टीरिया के लक्षणों मे अचेतन भाव-कल्पनाएँ रूपान्तरित होकर व्यक्त होती हैं। हिस्टीरिया के लक्षणों का प्रतीकात्मक अध्ययन करने का अर्थ है अज्ञात मन की भाव-कल्पनाओं के विषय मे अध्ययन करना, जो क्रियाओं मे प्रक्षेपित और परिवर्त्तित की गई है। ये प्राय: मन की विशुद्ध उपज है और द्वि-काम प्रकृति की है; और इनका महत् संबंध व्यक्ति के कामात्मक जीवन से होता है। गूढ़ अध्ययन करने के पश्चात् फ्रायड ने यह निष्कर्ष निकाला कि अज्ञात मन की भाव-कल्पनाओं और काम-विकृत व्यक्तियों के चेतन तरीके मे जिसमे उन्हें तुष्टि मिलती है तादात्म्य होता है। अज्ञात भाव-कल्पनाएँ या तो सदैव से अचेतन रहती हों, या जो एक बार चेतन रहीं और अब दमन द्वारा अचेतन बना दी गई हैं। भाव-कल्पनाएँ दिवा-स्वप्न या रात्रि-स्वप्न के स्वभाव की होती हैं जिससे इन्हें 'अनैच्छिक दिवा-स्वप्न' कहना अतिशयोक्ति नहीं है। द्वारपाल के रोध के कारण वे विकृत हो जाती हैं। परन्तु अज्ञात कल्पनाएँ ऐसे बीभत्स रूप मे विकृत होती है कि रोग के लक्षणों से उनकी गम्भीरता का बोधगम्य होना कठिन है। लक्षण रहस्यपूर्ण प्रतीत होते हैं। 'संक्षेपण' की कार्य पद्धति, जिसके द्वारा भाँति-भाँति की भाव-कल्पनाएँ संक्षिप्त रूप मे प्रकट होती हैं, 'अतिरंजक' कार्य-पद्धति जिससे दो या दो से अधिक इच्छाएँ एक लक्षण द्वारा प्रकट की जाती हैं, और 'विपरीतीकरण' की कार्य-पद्धति जिससे इच्छाएँ विरोधी रूप ले लेती हैं—इन सब रक्षात्मक कार्य-पद्धतियों के कार्यरत होने से रोग के लक्षण और भी अस्पष्ट बन जाते हैं। इन कार्य-पद्धतियों द्वारा अज्ञात मन के विषय-वस्तुओं की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक रूप मे होती है। इसका परिणाम यह होता है कि

मुख्य संवेग लुप्त हो जाता है और केवल गतिशील-परिवर्तनशील प्रतिरूप मात्र रह जाता है।

फ्रायड के हिस्टीरिया के 'अज्ञात भाव-कल्पना' सिद्धांत के समर्थन मे फेरेंकजी ने भी लिखा है : "आक्रमण होने पर शरीर मे जो संक्षोभ, अभिव्यक्ति के हलन-चलन होते हैं, ये प्रतीक हैं और अज्ञात भाव-कल्पनाओं से संलग्न प्रदर्शन हैं।"[1]

> "पन्द्रह वर्षीय लौकस्मिथ अपरैण्टिस तीन सप्ताह से बेहोश हो जाया करता था और उसमे टॉनिक-क्लॉनिक संक्षोभ होते थे। आक्रमण का आखिरी प्रभाव यह रहा कि रोगी ने तीन-चार बार जिह्वा निकालना प्रारंभ कर दिया।"[2]

फ़िस्टर ने लिखा है : "फ्रायड ने सदैव ही इस बात पर बल दिया कि दमित इच्छाएँ अब-तब प्रतीकात्मक रूप मे प्रकट होती है।" एक स्त्री रोगिणी का दृष्टांत है जो चेहरे की स्नायुशूल से त्रस्त थी और आगे चलकर पैर मे दर्द से जिससे उसका चलना-फिरना बंद हो गया। शारीरिक लक्षणों के ये दृष्टांत मस्तिष्क की उपज है और इनकी उत्पत्ति वास्तविक इच्छाओं की संतुष्टि-मात्र के लिये हुई है, जो प्रकृत रूप में व्यक्त होने से प्रतिबन्धित भी है। अज्ञात भाव-कल्पनाओं को प्रतीकात्मक रूप देने का दायित्व ज्ञात और अज्ञात दोनों पर ही है। ज्ञात मन का प्रतिबंध होता है और अज्ञात मन अभिव्यक्ति के लिये सदैव सक्रिय रहता है। अतएव प्रतीकों की उत्पत्ति होती है और यथातथ्य प्रदर्शन के स्थान पर प्रतीकात्मक प्रदर्शन मिलता है। प्रतीकात्मक पद्धति द्वारा जो इच्छाएँ अवांछनीय है किंतु प्रदर्शन के लिये व्यग्र है, वे भी सहज ही चेतना से गुप्त रखी जाती है।

इस प्रकार मनोविश्लेषण के अनुसार हिस्टीरिया का कारण दमित कामुकता और काम-विकृति होता है जो विकास काल मे अचेतन बना दी गयी है। इसी कारण इसका रोगी विस्मृति की अवस्था मे यही कहता है 'मैं नहीं जानता,

---

[1] फेरेन्कजी :—फरदर कॉन्ट्रिब्युशन टु द थ्योरी एन्ड टेकनीक ऑफ साइकोऐनिलिसस, पृष्ठ ४६

[2] फेरेन्कजी :—फरदर कॉन्ट्रिब्युशन टु द थ्योरी एन्ड टेकनीक ऑफ साइकोएनिलिसस

मुझे स्मरण नहीं'। इसका अर्थ है "मैं नहीं कह सकता और न तो कहूँगा, क्योंकि यह मेरे भाव-ग्रंथि को स्पर्श करता है"। फ्रायड के कामवृत्ति संबंधी विवरण का स्टेकल और मैकडुगल ने खंडन किया है। स्टेकल ने लिखा है: "कामवृत्ति के अतिरिक्त जिस पर मानसिक दौर्बल्य के प्रसग मे फ्रायड ने पर्याप्त बल दिया है, आकांक्षा, धार्मिक भावना, और स्वरक्षा की वृत्तियों का भी इस क्षेत्र मे महत्व होता है। इन सबके बारे मे पूर्ण ज्ञान हुये बिना मानसिक दौर्बल्य का मूल कारण बोधगम्य नहीं हो सकता।"[१] इसका यह अर्थ है कि मानसिक दौर्बल्य के प्रसंग मे केवल कामभाव की महत्ता स्टेकल को स्वीकार नहीं थी। उनके अनुसार भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ और इच्छाएँ हिस्टीरिया के रोगियो मे स्पष्ट मिलती हैं। स्टेकल की तरह एडलर ने भी फ्रायड का खंडन किया। उन्होंने कहा—"कामात्मक मानसिक दौर्बल्य का सम्पूर्ण चित्र रोगी के कल्पनात्मक पौरुषी ध्येय और उसकी तुप्टि के प्रयास की विधि के बीच की दूरी का चित्रण मात्र है। यह आश्चर्य है कि जीवन मे प्रतीकात्मक व्यंजनाओं का मूल्य पहचानते हुये भी 'कामात्मक आत्मबोध' मे प्रतीकात्मक को न पहचाना, यह स्थापित करना कि कामुकता अनर्गल है, सीखने की विधि है।"[२] कामवृत्ति कोई प्रवृत्ति नहीं बल्कि अनिवार्यता है। बचपन मे प्रस्तुत कामभाव के संबंध में एडलर ने लिखा है:—"वास्तव मे बचपन की इच्छाएँ काल्पनिक ध्येय की अनिवार्यता मे रहती है और निर्देशित चिन्तन का रूप धारण करती है और विचारों को संक्षेप मे प्रकट करने के लिए अपने को प्रतीकात्मक प्रदर्शन से समन्वित करती है।"[३]

विचार-विनिमय के पश्चात् यह सिद्ध होता है कि हिस्टीरिया के लक्षण काम-प्रतीक होते हैं। जिस व्यक्ति के अज्ञात मन मे कामेच्छा नहीं होती उसमे हिस्टीरिया के लक्षण नहीं मिलते; जो हिस्टीरिया का रोगी है वह अज्ञात मन मे अबोध है, यह मान्य नहीं। यह बाह्य निरीक्षण पर भी आधारित है। हिस्टीरिया का आक्रमण विशेषत: किशोरावस्था मे होता है और प्रौढ़ होने पर व्यक्ति प्राय: इससे मुक्त हो जाता है। इस रोग का आखेट स्त्रियां विशेषत: होती हैं। स्त्रियों का नैतिक मन अधिक बली होता है जिसके कारण उन्हें

[१] स्टेकल:—कन्डीशन्स ऑफ नरवस एन्जाइटी

[२] एडलर:—दि न्युरौटिक कॉन्सटिट्युशन

[३] एडलर:—दि न्युरौटिक कॉन्सटिट्युशन

कामभाव का दमन करना पड़ता है। प्रायः कामभाव की संतुष्टि होने के बाद इस रोग का निवारण हो जाता है। कुछ रोगी प्रफुल्ल भाव-भंगी मे अपने व्याधि का वर्णन करते है; कुछ बिना कोई भाव प्रदर्शित किये ऐसी घटनाओं का उल्लेख करते है जो उनके जीवन के लिये विशेष महत्व की होती है। यह असंगति, जैसा स्ट्रैनस्की ने भी कहा है, विचार और भाव बेमेल होने से आती है। इस विषमता का कारण स्वतंत्र भाव-ग्रंथियां है जिनकी अभिव्यक्ति स्वेच्छागत है और सदैव परोक्ष रूप मे है। एक रोगी का रोचक दृष्टांत है जिसने अपने जीवन की बड़ी दर्द-भरी कहानी विचित्र रूप से हास्य ध्वनि के साथ सुनाया। यथार्थ मे उसे अपनी दर्द-भरी कहानी से व्यथित होना चाहिये था। चेतन मन मे आने के पहले भाव-ग्रंथियों या सुंदर भाव-कल्पनाओं के रूप मे सजना आवश्यक सा होता है।

जब शरीर का कोई अग अज्ञात मन के तीव्र भावों से संयुक्त होता है उस अग पर लकवा का आक्रमण हो सकता है। दृष्टांत के लिये, प्रिय के बाहू पर लकवा का आक्रमण होना जब कि समाज के प्रतिबध तथा जीवन की परिस्थिति और नैतिक मन के बली होने के कारण उसकी आलिगन की इच्छा की तुष्टि नहीं हो पाती। आक्रमण का कारण अज्ञात इच्छाओं और भावों मे निहित होता है। ज्योंही इच्छाओं की यथार्थ या स्थानापन्न तुष्टि होती है, आक्रमणित अंग पुनः सक्रिय हो जाता है। लकवा शरीर-संबंधी है अथवा हिस्टीरिया के फल-स्वरूप, यह आक्रमण की तीव्रता और किस अंग-विशेष तक सीमित है, इससे स्पष्ट हो जाता है। शरीर का लकवा शरीर के कुछ-अंगो तक ही सीमित होता है। इसमे नसों पर असर पड़ता है और तुरंत उपचार संभव नहीं होता। हिस्टीरिया के लकवे मे अनेक लक्षण दृष्टिगत होते है और यह शरीर के किसी भी अंग मे हो सकता है। फ्रायड और फेरेन्कजी का कथन है कि संवेग का प्रदर्शन शरीर के सभी अंगों से होना संभव है। शरीर-संबंधी परिवर्त्तन द्वारा संवेगात्मक भाव-विचार की अभिव्यक्ति होती है। फ़िस्टर ने एक चालीस-वर्षीय रोगी का दृष्टांत दिया जिसे पैर की एड़ियों मे संवेदना की अनुभूति नहीं होती थी। एड़ियों का संवेदनहीन होना पौरुषी जड़ता का सूचक है जो निचले स्तर पर किसी पुरुष को स्वीकार नहीं होता। इसी प्रकार

फ़िस्टर.—दि साइकोएनिलिटिक मेथड, पृष्ठ १७६

एक लड़की अपने पैरों को आगे की ओर नहीं रखती थी। लड़की प्रसन्न स्वभाव की थी, समाज-प्रिय और चलने मे वह तेज़ थी। परन्तु जब से उसने यह जाना कि उसके प्रिय ने दूसरे से विवाह कर लिया है, वह हतबुद्धि हो गयी और आगे की ओर पैर न रख पीछे की ओर रखना प्रारंभ किया। आगे की ओर चलने मे असमर्थता उसके विवाह और जीवन मे उन्नति की इच्छा के दमन का द्योतक है।

"पड़ोस मे एक लड़की को हिस्टीरिया का रोग हुआ। वह घंटों लगातार जब-तब रोया करती और उसकी यह दशा सदैव मिचलन और चक्कर आने के बाद होती थी। विवाह के पश्चात् भी कुछ दिनों तक रोग चलता रहा, यद्यपि आक्रमण साधारण रहता था। तदुपरान्त रोग का यह लक्षण दूसरे लक्षण मे परिवर्तित हुआ। एकाएक उसकी पहचानने की शक्ति लुप्त हो गयी। आश्चर्य यह होता था कि विस्मरण सगे-संबंधियों तक ही सीमित रहा। चलचित्र मे जो कुछ वह देखती थी उसका वह वृत्तांत दे देती—नायक तथा नायिका का नाम भी न भूलती। सारी घटना का वर्णन विस्तार से देती। चित्र-सबंधी रोघ-निरोघ भी सही-सही करती। परन्तु माँ, पति और भाई को न पहचान पाती। जब कभी पूछा जाता 'ये कौन है', वह न वतला पाती। उसके व्यवहार और बातचीत मे बड़ा बचपना था।"

फ्रायड ने हिस्टीरिया के बारे मे गूढ़ अध्ययन किया और उनका निष्कर्ष अनुभवों का प्रतिफल था। उन्होंने व्यक्त लक्षणों की गहराई मे प्रवेश कर मानसिक 'ट्रॉमा', जो बचपन की अनुभूतियों की ओर प्रत्यावर्त्तन है, अज्ञात भाव-कल्पना की रचनाओं और दमन के बारे मे उल्लेख किया है। उनका कथन है: "हरेक घटना और मानसिक छाप मे कुछ-न-कुछ संवेगात्मक अनुभूति रहती है, जिससे अहं अपनी निवृत्ति या तो क्रियाओं द्वारा करता है या मानसिक विच्छेद द्वारा। यदि व्यक्ति इस निरर्थक भावुकता से अपने को मुक्त नहीं करता तो इस प्रकार की छापें ट्रॉमा का रूप ले लेती है और हिस्टीरिया का स्थायी कारण बन जाती हैं। अज्ञात रहने पर इनका निवारण असंभव होता है।"[१] अपने निबंध 'हिस्टीरकल फैन्टेसीज़ और बाइसेक्सुएलिटी' मे उन्होंने अनेक नियमों और सिद्धान्तों का उल्लेख किया है जिनसे हिस्टीरिया के

[१] फ्रायड:—कलेक्टेड पेपर्स, खंड १, पृष्ठ ५८

लक्षणों का संक्षिप्त किंतु गूढ़ विवरण मिलता है। हिस्टीरिया के लक्षण "दु:खपूर्ण छाप तथा अनुभवों के स्मृति-प्रतीक है; अथवा दु:खपूर्ण अनुभवों की पुनरावृत्ति द्वारा लाये स्थानापन्न हैं; अथवा 'अज्ञात मन की भाव कल्पनाओ की अभिव्यक्ति हैं'; अथवा कामवृत्ति की संतुष्टि है जो बचपन का वास्तविक अनुभव था परन्तु दमित रूप मे अवशेष है; अथवा यह दो विपरीत भाव-वृत्तियां का समन्वय है जिनमे एक व्यक्त होने का प्रयास करती है और दूसरी का उस पर प्रतिबंध है।"[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हिस्टीरिया मे संवेग की अभिव्यक्ति क्रियाओं की स्फूर्ति द्वारा होती है। कार्य-पद्धतियों के जटिल होने से हिस्टीरिया मे संवेग पूर्ण रूप से परिवर्तित होकर मानसिक से शारीरिक रूप ले लेता है। इसी कारण हिस्टीरिया रोग की विवेचना एक समस्या है। उपचार की दृष्टि से यह विचार हुआ कि संवेगों की अभिव्यक्ति स्वाभाविक रूप मे होने पर इनकी अभिव्यक्ति अंगों के व्याधिजनीय उत्तेजनाओं मे नही हो पायेगी।

'स्नायुरोग' मे भी लक्षण शारीरिक प्रकार के होते हैं। यह सबसे सौम्य प्रकार की मानसिक दुर्बलता है और इसका कारण आदर्श और प्रकृत इच्छा मे साधारण संघर्ष होता है। अधिकतर यह अन्तर्मुखी व्यक्तियों के साथ होता है। थकान, पाचन मे गड़बड़ी, सिर-दर्द, अनिद्रा, अत्यधिक संवेदनशीलता, अस्थिर चित्तता चिड़चिड़ापन और म्लान क्षोभभरी मनोवृत्ति इसके प्रमुख लक्षण हैं। स्नायुरोग मे मन-संबंधी संघर्ष शारीरिक और मानसिक लक्षणों मे व्यक्त होता है।

'अतिचिंतन' मे मानसिक दुर्बलता शारीरिक रोग के रूप मे व्यक्त होती है। वस्तुत: रोगी शरीर के रोग से त्रस्त नहीं रहता। वह प्रसन्न और स्वस्थ रहता है। शरीर के रोग के लक्षण उसमे दृष्टिगत नहीं होते; किंतु उसके मन मे हर समय यह भाव बना रहता है कि वह शरीर के रोग से त्रस्त है। इनकी यह विशेषता होती है कि वे बाह्य जगत् से अपने को पूर्ण-रूपेण समेटे रहते हैं। उनकी रुचि और शक्ति-बल का केन्द्रीयण शरीर हो जाता है और इस प्रकार शरीर मे ही ध्यान लगा रहता है।

---

[1] फ्रायड:—कलेक्टेड पेपर्स

एडलर ने अतिचिन्तन के रोग का विवरण हीनत्व-ग्रंथि के आधार पर किया है। बाह्य सुविधाओं के अभाव मे मनुष्य की आत्मप्रतिपादन वृत्ति की तुष्टि का अवसर नहीं मिलता। इसलिये इस वृत्ति का दमन होता है। दमित इच्छाएँ अभिव्यक्ति का प्रयास करती हैं। आत्मप्रतिपादन और हीनत्व-भाव मे संघर्ष होता है और रोगी कहानियाँ रच-गढ़ कर अभ्यन्तर मे समझौता लाने का प्रयत्न करता है। युक्ताभ्यास से बहुत कुछ शान्ति-संतोष मिल जाता है। किन्तु रोगी जान मे मिथ्या कहानी शरीर-यातना के विषय मे नहीं गढ़ता। वस्तुतः उसे यह अनुभूति होती है कि उसके शरीर मे कुछ दोष है। अनेक दृष्टान्त हैं जिनमे यह स्पष्ट है कि मित्रों और संबंधियों का ध्यान आकर्षित मात्र करने के लिए शारीरिक कष्ट का बहाना प्रारम्भ हुआ। जो व्यक्ति अपने को तिरस्कृत अनुभव करता है, उसमे यह विशेपता अधिक पायी जाती है। वस्तुतः ऐसे रोगियों मे भावात्मक तादात्म्य का अभाव रहता है। दृष्टांत है :

> "पैंतीस साल की एक महिला थी। उसे हमेशा कमज़ोरी की शिकायत बनी रहती। उसे इंजेक्शन दिये गये और डॉक्टर हर दूसरे दिन आकर उसकी निगरानी कर लेता था। शारीरिक रूग्णता का इसके अलावा और कोई लक्षण नहीं था कि वह पीली थी और मरीज सी दिखती थी। महिला को यह विश्वास दिलाने का प्रयास किया गया कि उसकी शिकायतें काल्पनिक और भ्रान्ति-मूलक हैं। यह सुनकर वह क्रुद्ध हो गयी और उस डॉक्टर को उसने दुबारा फिर कभी नहीं बुलाया। वह सदैव ऐसे डॉक्टर के तलाश मे रहती जो कि उसके प्रति वास्तविक सहानुभूति प्रकट कर सके।"

विश्लेषण करने पर रोग का कारण स्पष्ट हुआ। उसका पति चित्र-निर्देशक था। रात मे वह देर से लौटता था। कई युवतियों से उसका संबंध था। पति का ध्यान आकर्षित करने के लिए उसे अचेतन मे सिर का दर्द और कमज़ोरी का बहाना अच्छा साधन मिला। फ्रायड के अनुसार शरीर-संबंधी भ्रम अतिरिक्त कामेच्छा का द्योतक है। संभव है उसके अज्ञात मन मे यह भाव बन गया हो कि उसका पति अन्य स्त्रियों की ओर आकर्षित है। जिन व्यक्तियों मे आत्मप्रतिपादन की वृत्ति तीव्र होती है और इसे संतुष्ट न कर सकने के कारण हीनत्व-ग्रन्थि पड़ी रहती है, वे शरीर के बहाने अपनी असमर्थता

का युक्ताभ्यास करते हैं। इस दृष्टांत मे फ्रायड की व्याख्या विशेष चरितार्थ नहीं होती क्योंकि पति और पत्नी दोनों मे परस्पर राग-भाव था। वह रूपवती थी और सम्भवतः उसका पति उसकी ओर आकर्षित था। इसलिये बहुधा अतिचिंतन रोग के लक्षण हीनत्व और आत्मप्रतिपादन के संघर्ष के परिणाम स्वरूप होते हैं।

'कल्पनाग्रह' के रोग मे भी क्रियाओं के रूप मे प्रतीक मिलते हैं। इसका दृष्टान्त कल्पनाग्रह के रोगियों का नियमित कार्य-संपादन है। 'दि मीनिग ऑफ सिम्बलस्' पर व्याख्यान देते हुए फ्रायड ने कल्पनाग्रह के दो रोचक उदाहरण प्रस्तुत किये हैं और इनके प्रतीकात्मक महत्व पर अपनी मति के अनुसार व्याख्या दी है। पहला दृष्टांत एक तीस वर्ष की स्त्री का है :

> "युवती की विचित्र बान थी। दिन मे अन्य नियमित कार्यों के अतिरिक्त वह ऐसा भी करती कि अपने से बगल के कमरे मे बार-बार दौड़ती-जाती, कमरे के बीच मेज़ के पास विशिष्ट भंगिमा मे खड़ी होती, नौकरानी के लिए घंटी बजाती, और उसे कुछ नगण्य आदेश देती। कभी-कभी वह बिना कुछ कहे ही लौटा देती और फिर दौड़कर वापस आती।"[1]

> "उन्नीस वर्ष की एक शिष्ट और साधु स्वभाव की लड़की थी। वह मानसिक दुर्बलता से आक्रान्त हो गयी। अकस्मात् ही वह चिड़चिड़ी, असंतुष्ट और म्लान रहने लगी; रात मे विश्राम करने के पूर्व कुछ कार्य वह नियमित रूप से सम्पादित करती। साधारण-सामान्य व्यक्ति भी कुछ निश्चित क्रियाएँ नियम से करते हैं; किन्तु उसका कार्य असामान्य था। उसके कार्य और सामान्य व्यक्ति के कार्य मे पर्याप्त भेद मिलता है। उसका कार्य-संपादन मानसिक तनाव का द्योतक है। कमरे मे शांति रखने के लिए वह अतिक्रमित रूप से सजग रहती और इसके लिए उसकी दो योजनाएँ थीं : एक, कमरे की बड़ी घड़ी को बन्द करना और सब छोटी घड़ियों को वहाँ से हटाकर दूसरे कमरे मे रख देना; दूसरे, सब गुलदस्तों को इस तरह से दूबारा हटा बढ़ाकर रखना कि उनके गिरने की कोई आशंका ही न हो। विस्तर सजाते समय

---

[1] फ्रायडः—लेक्चर्स ऑन साइकोएनिलिसस, पृष्ठ २११

> तकिया ऐंसे विशेष स्थान पर रखती कि पलंग के लकड़ी के स्टैण्ड से वह अलग स्पर्श करे। तकिया तिरछी रहती।"[1]

इस तरह की आदतें रोगी के दुःखान्त अनुभवों को ज्ञात मन मे आने से रोकने के हेतु नकाबपोश का कार्य करती हैं। फ्रायड ने इस वर्ग के हठ प्रवृत्यात्मक कार्य का विवरण प्रचलित स्वप्न-प्रतीक के आधार पर किया है और इस प्रकार कल्पनाग्रह का मुख्य कारण दमित काम-भाव प्रमाणित किया है। कल्पनाग्रह के लक्षण काम-प्रतीक है : "कल्पनाग्रह अपने को दोषी ठहराने का भाव है जो दमन के कारण परिवर्त्तित रूप मे पुनः जागृत होता है—ताड़नाएँ सदैव बचपन की किसी कामवृत्ति संबंधी क्रिया से, जिससे आह्माद मिला हो, संबंधित होती हैं।"[2] विशिष्ट मुद्रा मे मेज़ के पास खड़ा होना, बिस्तर को विशेष प्रकार से सजाने की आदत, कमरे मे शान्ति अनिवार्य समझना—ये सब कामात्मक वस्तुओं और संबंधों को प्रदर्शित करती हैं। इस प्रकार इन रोगियों की वैधिक आदतें उनकी कामेच्छाओं की द्योतक है; इनसे आंशिक प्रकटीकरण होता है और ये रक्षार्थ क्रियाएँ हैं। कल्पनाग्रह अज्ञात मन का स्वतः प्रदर्शन है और इस प्रकार के तथ्यों को अभिव्यक्ति है जो ज्ञात मन मे नहीं मिलते। विश्लेषण द्वारा यह अन्वेषण हुआ है कि इन रोगियां की इच्छाओं का केन्द्रीयण अतीत की किसी विशेष अनुभूति मे होता है जिनसे वे अपने को मुक्त न कर सके हैं। किन्तु रोगी को इनके उद्गम का आभास नहीं रहता कि ये किधर से उद्भूत हुई हैं।

कल्पनाग्रह के रोगियों मे हाथ धोने की हठ प्रवृत्यात्मक क्रिया विशेषतः मिलती है। यह अज्ञात मन की वर्जित इच्छा का प्रतीकात्मक प्रदर्शन है। आत्मसम्मान के स्थायीभाव को ठेस पहुँचने तथा अज्ञात मन मे पाप का भाव उदित होने से ही ऐसा होता है। यह प्रतीक ईसाई धर्म मे भी मिलता है। जो दोषी-अपराधी हैं उनका संबोधन इस भांति होता है कि 'तुम्हारा हाथ रक्त मे रंगा है, इसे स्वच्छ करो'। किंतु मनोदौर्बल्य पीणित व्यक्तियों के 'हाथ धोने' की क्रिया साधारण व्यक्तियों से पृथक् होती है। धार्मिक व्यक्ति का यह चेतन प्रदर्शन है; कल्पनाग्रह का रोगी अज्ञात रूप से इस प्रतीक का प्रयोग

---

[1] फ्रायड:—लेक्चर्स ऑन साइकोएनिलिसस, पृष्ठ २२४

[2] फ्रायड:—कलेक्टेड पेपर्स, खंड I, पृष्ठ १६२

अपने दोष के भाव को प्रकट करने के लिये करता है। शेक्सपियर की नायिका लेडी मैकबेथ इसका सुंदर दृष्टांत है। राजा की हत्या के पश्चात् अव्यक्त रूप से 'हाथ धोने' की आदत उसकी पड़ जाती है। यह एक प्रकार से उसका स्वभाव बन गया और निरंतर प्रयास करने पर भी इससे वह अपने को मुक्त न कर सकी। उसे यह ज्ञान था कि उसकी हाथ धोने की आदत उसके अज्ञात मनकी 'शुद्धि करने की इच्छा' का द्योतक है : यह 'नैतिक मन' की इच्छा का प्रतीक है जो नीतिशास्त्र के 'अन्तःकरण' का पर्याय है। लेडी मैकबेथ एक मनोवैज्ञानिक दृष्टांत है। जिस रूप मे उसका हाथ का मलना, निद्रा मे विचरण करना, निद्रा-विचरण के समय बातचीत करना—जिस ढंग से सुप्तावस्था मे विस्तर से वह उठती है, रात के कपड़े पहनती है, दराज खोलती है, कागज निकाल कर उस पर मुहर लगाती है और लौटकर विस्तर पर आती है—यह सब उसके आन्तरिक द्वन्द्व और तनाव का प्रतीकात्मक प्रदर्शन है। वह पश्चाताप करती है। अपने को दोषी ठहराना नैतिक आदर्शों को ठेस पहुचने पर ही होता है। उसकी बातचीत की क्रिया उसके दिल की आवाज़ है। तब वह अपने मन को शांत करती है। फिर उसे डर लगता है। अन्य पात्रों द्वारा शेक्सपियर ने उसकी चिंता का सुंदर विश्लेषण दिया है। शेक्सपियर के नाटक के पात्र कल्पित नहीं है। इनका अस्तित्व मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी स्वीकृत है। वस्तुतः काल्पनिक और वैज्ञानिक सत्य मे विशेष अन्तर नहीं होता। यह केवल माध्यम का प्रश्न है। कवि की कल्पना उसकी अन्तर्दृष्टि पर बनती है; वैज्ञानिक की अनुसंधान, निरीक्षण और प्रयोग पर निर्भर होती है। कवि अचेतन रूप से मानव-स्वभाव के वस्तु-तथ्यों और कार्य-पद्धतियों के बारे की व्याख्या करता है; वैज्ञानिक चेतना मे उनका परीक्षण करता है। जिन सत्यों को फ्रायड ने विश्लेषण के आधार पर प्रमाणित करना चाहा, कवि इनकी कल्पना अपने काल्पनिक कलात्मक स्वप्नों मे करता है। वस्तुतः कवि की कल्पनाओं का भी वैज्ञानिक आधार होता है।

'हठ-प्रवृत्ति' का एक रोचक दृष्टांत स्टेकल ने दिया है :

"एक उन्चास-वर्षीय स्त्री को नित्य प्रातःकाल अत्यधिक घबराहट होती और इससे वह निरंतर दो-तीन घंटे तक बड़बड़ाया करती। उसका पति

शेक्सपियरः—मैकबेथ, एक्ट ५

उसकी अनर्गल बातें सुनना पसन्द नहीं करता था और वह नौकरों से बात करने मे अपनी तौहीन समझती थी। ऐसी परिस्थिति मे उसके पति ने पड़ोस की एक संबंधी स्त्री को नियुक्त किया, जो उसकी बातें सुना करती। नियमित रूप से सुबह साढ़े आठ बजे वह उस युवती के कमरे मे दौड़ती पहुंचती, गृहस्थी संबंधी दुःखड़ा रोने लगती, बच्चों के बारे मे अपनी चिता का बखान करती और यह बताती की कैसे दुःखमय दिन कट रहे हैं। यह कथा दो घंटे तक चलती और बेहद थक जाने पर ही अपना मुँह बन्द करती। एक बार उसे लारेंजेटिस का रोग हुआ और डॉक्टरों ने उसे बातचीत करने से बिलकुल मना कर दिया। उसे प्रतिदिन दो घंटे के लिए बाहर जाना पड़ता और तब वह शान्त चित्त होकर घर लौटती। जब युद्ध छिड़ने पर उनकी आर्थिक अवस्था बहुत दयनीय हो गयी, उसने पति को यह स्वीकृति दी कि युवती नौकरी से हटा दी जाय। अब उसके पास बातें करने के लिए कोई न रह गया। वह दुःखी और असंतुष्ट रहने लगी। लाचार होकर पति को इस युवती की नियुक्ति फिर से करनी पड़ी। रोचक बात यह रही कि उसकी लड़की की भी यही आदत पड़ गयी और वह अपनी माँ को अपनी बातें सुनाने के लिए बाध्य किया करती।"[१]

कल्पनाग्रह के रोगी की हठ प्रवृत्यात्मक क्रियाओं और विशेष प्रकृति की निरंतर अतिव्यक्त क्रियाओं तथा आदिम जाति के टैबुओं मे, जिनसे मानसिक संघर्षों की अभिव्यक्ति होती है, पर्यात्त समानता हैं। प्राचीन काल मे वर्त्तमान की हठ क्रियाएँ 'टैबू' समझी-संबोधित की जाती थीं।

आदिम जातियों ने इन टैबुओं को समाज से मान्य रीति-परम्परा समझ इनके अनुशासन मे रहना अपना कर्त्तव्य माना; मानसिक रोग से त्रस्त मनुष्य भी अपनी कल्पित रोक-थाम के लिये सजग रहता है। भेद यह है कि एक का सामाजिक महत्व होता है और यह प्राचीन परम्परागत है और दूसरा व्याधिजनक लक्षण है। दोनों ही प्रकार के अभ्यास प्रयोजनहीन मालूम पड़ते हैं, यद्यपि इन दोनों के व्यवहार-स्थापन की पृष्ठभूमि मे मानसिक इतिहास छिपा होता है। एक प्रकार से दोनों ही क्रियाओं का संपादन आभ्यन्तरिक दबाव से होता है

---

[१] बिलयम स्टेकलः—पिक्युलियैरिटीज़ ऑफ व्हिवेयर, खंड १, पृष्ठ १९१

और यदि कार्यक्रम व्यवस्थित रूप से पूर्ण नहीं हो पाता तो चिन्ता उत्पन्न होती है। इनमे समान रूप से 'विस्थापन कार्य-पद्धति' दृष्टिगत होती है; यह इच्छा या भाव का यथार्थ वस्तु से अन्य वस्तु पर, जो इससे संबंधित है, विस्थापन है। दोनों ही प्रकार की क्रियाएँ प्रतिबंधित इच्छाओं से रक्षार्थ हेतु सम्पादित होती हैं। वस्तुतः जो इच्छाएँ प्रतिबंधित हैं उनकी ये पुनरावृत्ति हैं। बहिरंग दृष्टि से वे चेतन मन से संबंधित प्रतीत होती है; वस्तुतः इनका उद्गम अज्ञात प्रकृत इच्छाओं मे होता है।

हठ-प्रवृत्ति मे 'अगम्यगामी इच्छा' सब प्रकृत इच्छाओं मे सबसे अधिक तीव्र होती है। यही विश्लेषण आदिवासियों के टैबुओं के संबंध मे भी दिया जाता है। दमन के फलस्वरूप अनेक प्रकार के अभ्यस्त व्यवहार की बान दैनिक जीवन मे पड़ती है। ये अधिकांशतः पुनरावृत्ति हैं, अथवा दैनिक क्रियाओं का विधिवत् विस्तारण है, जैसे वस्त्र धारण करना, स्नान करना, घूमना इत्यादि। फ्रायड का सिद्धान्त है कि जो मनुष्य मानसिक दुर्बलता से त्रस्त है वह 'इडिपस' है, जो अपनी माँ को प्यार करता है और माँ के प्रेम-पात्र पिता की ईर्ष्या-वश हत्या करना चाहता है। आस्ट्रेलिया, फीज़ी तथा पूर्वीय अफ्रिका की प्राचीन आदिम जातियाँ इसके प्रमाण हैं कि मानव जाति मे अगम्यगामी इच्छा के प्रति कितना अधिक भय और संवेदनशीलता होती है। संभव है इससे रक्षार्थ हेतु ही टैबुओं की व्यवस्था हुई हो। कल्पनाग्रह के रोगियों मे अगम्यगामी इच्छा की बहुतायत होती है।[१] फ्रायड के इस सिद्धान्त पर युंग और मैकडुगल ने बहुत आक्षेप किये है : एक, यह धारणा पर्याप्त नहीं है; दूसरे, संभव है आदिम प्राचीन निवासियों मे अगम्यगामी संबंध के प्रति भय न रहा हो।

बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी व्यक्तित्व प्रकार मे, जैसा युंग ने वर्गीकरण किया है, सामान्यतः बहिर्मुखी द्वारा विधिवत् क्रियाएँ संपादित होती है और अन्तर्मुखी मे अद्भुत विचार-भाव मँडराते रहते हैं। कल्पनाग्रह मे दोनों प्रकार के व्यक्ति मिलते हैं। जिन अद्भुत विचारों से कल्पनाग्रह का अंतर्मुखी प्रकार का रोगी त्रस्त होता है उनसे उसे सुख नहीं प्राप्त होता; बल्कि वह विचारों मे डूबने-उतराने के लिए बाध्य रहता है। वह समझता है कि विचार अनर्गल और निरर्थक हैं; वह उनका आखेट बनना नहीं चाहता, फिर भी उसे चिंता घेरे रहती है।

---

[१] फ्रायडः—टोटम एन्ड टैबू

आत्महत्या और अपराध के भाव उसके मस्तिष्क मे प्रमुखतः मँडराते हैं। इन विचारों से वह बचने का प्रयास करता है, किन्तु असफल रहता है। एक विचार से मुक्त होने का प्रयास करने पर दूसरा विचार उठ खड़ा होता है। इस प्रकार एक विचार से दूसरे विचार की ओर स्थानापन्न होता रहता है और भाव-विचार की एक लड़ी सी बन जाती है। आभ्यन्तर मे संघर्ष होने से जीवन रहस्यमय हो जाता है। जब रोगी को यह पूर्ण विदित हो जाता है कि वह उन विचारों से अपने को मुक्त नहीं कर सकता, जो उसके भावनाओं को व्यक्त करते हैं, तब उसके जीवन मे स्खलन आ जाता है। साधारण व्यक्तियों के लिए भले ही अनर्गल विचार अर्थहीन विदित हो, किन्तु वस्तुतः ये अर्थयुक्त होते हैं। इनसे मन की अवस्था का दिग्दर्शन होता है। पृष्ठभूमि मे गूढ़ इतिहास छिपा मिलता है।

कल्पनाग्रह का रोगी स्वभाव से शक्तिशाली होता है। उसका बौद्धिक स्तर ऊँचा होता है और नैतिक विकास विशेष हुआ रहता है। उसके विचार कभी-कभी आदत-रूप मे परिणित हो जाते हैं। चेतन मन मे वह उन विचारों और क्रियाओं की विवेचना नहीं दे पाता, क्योंकि उसके विचार अज्ञात मन से संबधित होते है और जबतक यथार्थ मानसिक कारण का अन्वेषण नहीं हो जाता, रोग के लक्षण का अर्थ नहीं ममझा जा सकता। वस्तुतः, रोग के लक्षण, जो विचार के रूप मे है, अज्ञात इच्छाओं के प्रतीक होते है जिनसे वह चेतना मे अपरिचित है। ज्ञात और अज्ञात मन के बीच पर्दा होता है, रोक-थाम रहता है, और पहरेदार की नियुक्ति-सी रहती है जिसके कारण अभिव्यक्ति के लिए अज्ञात मन की इच्छाओं मे परिवर्त्तन करना पड़ता है।

फ्रायड ने कल्पनाग्रह के रोग का एक सुदर दृष्टात दिया है :

"बारह वर्ष की उम्र से एक व्यक्ति के मन मे तेरह की संख्या हमेशा मँडराती रहती। इसी से उसने पाठशाला छोड़ दिया और जीवन-भर वह म्लान तथा निर्बल बना रहा। घड़ी बजने से तेरह मिनट पहले और तेरह मिनट बाद वह चिंतित हो जाता। किसी होटल में तेरहवें संख्या के कमरे मे न ठहरता और जब कभी उसे अपने घर से तेरहवाँ मकान पार करना पड़ता तो वह व्यग्र हो उठता। महीने के तेरहवें दिन वह चारपाई पर पड़ा रहता और सत्ताइसवें दिन भी न उठता, क्योंकि अंग्रेजी के शब्द 'टवेन्टी सेवेन्थ' मे तेरह वर्ण होते हैं। किसी के 'ओह गुड मौर्निंग'

कहने पर वह झुंझला पड़ता। सीढ़ी चढ़ते समय वह तेरहवें नम्बर को लाँघ जाता। तेरह मेहमानों को वह किसी भी हालत मे अपने घर नहीं बुलाता था। कमरे मे उपस्थित अतिथि तथा मेज़ मिलाकर यदि तेरह हो जाते तो वह उनमे से एक हटा देता। यदि घड़ी ने दस बजाया और तीन व्यक्ति कमरे मे बैठे हैं तो उसे चिता घेर लेती। पत्र की तेरहवीं पंक्ति और किसी भी प्रकार जोड़ने-घटाने से तेरह की संख्या आने पर उसे कष्ट होता। उसके धार्मिक जीवन मे भी तेरह की संख्या का महत्व था। धार्मिक पुस्तक का तेरहवाँ पद वह अशुभ मानता था। आगे चलकर वह इस संख्या से ऐसा भयभीत हुआ कि सब प्रकार के कार्य के लिये अयोग्य हो गया।"

इस संख्या की महत्ता समझने के लिये रोगी के सम्पूर्ण मानसिक इतिहास के गूढ़ स्तर मे प्रवेश करना आवश्यक है। संभव है 'तेरह की संख्या' रोगी के अपराध-भाव से सबंधित रही हो और इसी से वह इस संख्या से अचेतन रूप से सजग रहता। संभव है जीवन की कुछ दुःख-भरी घटना का स्मरण, जिसे वह गुप्त रखना चाहता था, तेरह की संख्या दिला रही हो।

कल्पनाग्रह का एक दूसरा दृष्टात फ्रायड के अनुयायी अर्नेस्ट जोन्स ने दिया है :

"रोगी एक मुद्रक था जिसकी उम्र छियालिस साल थी। कल्पनाग्रह के रोग से चार बार चार प्रकार से वह त्रस्त हुआ। बीच-बीच मे वह कभी-कभी स्वस्थ भी हो जाता था। अगला आक्रमण पिछले से अधिक समय तक चलता रहा। अठाइस वर्ष की अवस्था मे पहली वार आक्रमण हुआ। उस समय एक माह तक उसके मन मे यह विचार बना रहा कि उसकी माँ ने किसी की हत्या की है। चार वर्ष पश्चात् यह भाव उसके मन मे पुनः उठा और तीन-चार माह तक वह चक्कर काटता रहा। बयालिस बर्ष की उम्र मे उसे यह कल्पना हुई कि वह डाइबिटीज़ का रोगी है और यह विचार एक वर्ष से अधिक तक उसमे विद्यमान रहा। तत्पश्चात् यह विचार उठा कि कोई उसकी लड़की की मृत शरीर को कब्र से निकाल ले गया है। अठारह मास तक वह यही सोचता रहा।"[१]

---

[१] अर्नेस्ट जोन्स :—पेपर्स ऑन साइकोएनिलिसस, पृष्ठ ५२८

यह अद्भुत विचार कि उसकी कन्या की मृत शरीर को कोई कब्र से निकाल ले गया है, यह आभास कि सड़क पार करते समय उसने गाड़ी मे मृत शरीर को रखा देखा है, यह आशा-विश्वास कि वह कन्या की मृत शरीर को खिड़की से पुनः देख सकेगा—मातृ-पितृ काम-ग्रंथि के प्रतीकात्मक प्रदर्शन है। अधिकांशतः कल्पनाग्रह रोगियों के अद्भुत विचार और उनकी विधिवत् क्रियाएँ कुछ-न-कुछ दुःख-भरी भावनाओं से संबंधित रहती हैं, जिन्हें उन्होंने अपने जीवन मे अचेतन रूप से दबा-भुला दिया है। कल्पनाग्रह वस्तुतः जीवन मे अनुभूत अपराध-भाव का विकृत प्रदर्शन मात्र है।

बर्नर्ड हार्ट द्वारा प्रस्तावित कल्पनाग्रह की परिभाषा है: "विचार अथवा क्रिया के रूप मे भय का आक्रमण चेतन पर इस प्रकार होना कि इसके सबंध मे रोगी को यह अनुभूति होवे कि यह सब नियंत्रण के परे है। यह चेतन-क्षेत्र पर आच्छादित नही रहता और न उसकी निर्विरोध हुकूमत ही रहती है। यह अपूर्ण है जो स्वयं रोगी के लिए अनुपयुक्त और तत्वहीन है।" यह बहुत कुछ भाव-ग्रंथियों पर निर्भर करता है, जो वहिष्कृत होने से उसके व्यक्तित्व से संबंधित नहीं रह गयी है। जब भाव तीव्र होता है तब कल्पनाग्रह भी तीव्र हो जाता है, क्योंकि विचार और क्रिया की दृढ़ता बहुत कुछ दमित प्रकृत इच्छा की तीव्रता पर निर्भर करती है। कल्पनाग्रह मे मुख्यतः दो तथ्यों का समावेश रहता है: एक, रोगी पर कुछ विचार का आघात होना; दूसरे, संवेगात्मक अवस्था-संबंधी पश्चाताप या क्रोध और शंका का उठना। कल्पनाग्रह संबधी विचार और क्रियाओं को शक्ति और जीवन मानसिक शक्ति द्वारा मिलती है—वह जो साधारण दिशा की ओर प्रवाहित होने के स्थान पर दूसरी दिशा मे प्रवाहित होने लगती है। वास्तविक तुष्टि की व्यवस्था के अभाव मे कामशक्ति को आत्मबल और सतोष देने की व्यवस्था क्रियाओं और विचारों द्वारा की जाती है। प्रकृत वृत्ति के दास मानव के पास एकमात्र यही उपाय बच जाता है। यह तो जीवन से एक प्रकार का समझौता है।

जिस प्रकार कल्पनाग्रह के रोगी के अद्भुत विचार दमित कामवृत्ति अथवा 'मातृ-पितृ काम-ग्रंथि' के प्रतीकात्मक प्रदर्शन हैं उसी प्रकार 'चितारोग' भी मन की विकृत अवस्था का द्योतक है। चिंता साधारण प्रकार की मानसिक दुर्बलता है; फिर भी इसके लक्षण पर्याप्त प्रतीकात्मक होते हैं। इसका भी उद्गम

बचपन की अनुभूतियों मे है जो काम-संबंधी या हीनत्व-ग्रंथि संबंधी होती हैं। अनुभूतियों का प्रभाव अज्ञात मन पर पड़ता है और जो कुछ अज्ञात मन मे संग्रहीत होता है उसकी छाया निरंतर पड़ती रहती है। फ्रायड के विश्लेषण के अनुसार चितारोग के लक्षण काम-भाव से संबंधित होते हैं: "चितारोग के संबंध मे चिकित्सकों का यह अनुभव रहा कि चिंता और कामशक्ति मे सदैव क्रम और नियम से संबंध रहा है। चितारोग का मूल कारण अभुक्त उत्तेजना है। कामोत्तेजना होती है; किंतु उसका समाधान नहीं हो पाता। इस काम-शक्ति के स्थान पर, जो उपयोग मे आने से वंचित की गई है और समाधान नहीं हो पायी है, चिंता दृष्टिगत होती है। मैं यह कथन पूर्णतः न्यायसंगत समझता हूँ कि प्रत्यक्ष मे अतिरिक्त कामशक्ति चिंता मे परिवर्तित हो गई है।"[1] किंतु यह पूर्ण सत्य नहीं है। गौर्डन द्वारा यह संकेत किया गया है कि चिंता का कारण कामेच्छा से निवृत्ति मात्र नहीं है। चिंता किसी भी दो या अधिक प्रकार के संवेगों का पारस्परिक संघर्ष हो सकता है। मैकडुगल का भी यही दृष्टिकोण है जो सामान्य और विशिष्ट दोनों ही दृष्टि से मानसिक दौर्बल्य सिद्धांत मे लागू हो सकता है। कहीं काम-भाव की प्रधानता होती है; कहीं हमे काम-तथ्य नहीं मिलता। इस कारण चितारोग के लक्षणों द्वारा अन्य इच्छाओं का भी प्रदर्शन होता है। पिछली कृतियों मे फ्रायड ने अपने सिद्धांतों का संशोधन किया और यह प्रमाणित किया कि चिंता का केन्द्र नैतिक मन होता है, अहं नहीं होता। नैतिक मन आभ्यन्तरिक नीति संबधी सिद्धांत है जिसका स्वभावतः अवांछनीय प्रकार की क्रियाओं पर रोक-थाम रहता है। नैतिक मन का भय सदा बना रहता है। यह सामाजिक संबंधों के आदान-प्रदान के लिये अनिवार्य है।

चिन्तारोग मे मनुष्य को अपने तथा सगे संबंधियों के बारे मे दुःखद घटनाएँ घटित होने की आशंका घेरे रहती है। अधिकांशतः चिन्ता का विषय परिवार मे किसी निकटवर्त्ती की मृत्यु का भय होता है। मृत्यु की आशंका निराधार होती है। यह मस्तिष्क की कोरी कल्पना-गढ़ना मात्र रहती है और वस्तुतः यह उन दमित इच्छाओं का प्रदर्शन है जिनकी पूर्त्ति यथार्थ जीवन मे नहीं हो सकी है। इसमे भाव या उद्वेग ही चिंता का रूप ले लेता है। संभव है चिन्तारोग के लक्षण अतिरिक्त अतृप्त कामवृत्ति के द्योतक हों; यह भी संभव है कि ये लक्षण असंतुष्ट

[1] फ्रायडः—न्यु इन्ट्रोडक्टरी लेकचर्स, पृष्ठ १०९

आत्मप्रतिपादन वृत्ति के स्रोत हों। वस्तुतः हीनत्व-ग्रंथि पड़ने से यह रोग होता है। बचपन का निरंतर यह अनुभव कि वह किसी का स्नेह पात्र नहीं है, चिन्ता का कारण बनता है। हीनत्व-भाव की उद्भूति होने से मनुष्य स्वभाव से दूसरों पर आश्रित हो जाता है। वह अपनी प्रतिष्ठा, व्यवसाय, और परिवार मे अत्यधिक तल्लीन होता है और ये उसकी चिन्ता का विषय बनते हैं। जिस व्यक्ति की रुचि जितनी सीमित रहती है, उसकी चिन्ता उतनी ही गाढ़ी-प्रबल होती है। चिन्ता आत्मनिष्ठ होती है और मनुष्य को इसकी चेतना नहीं रहती। बाह्य विपदाओं से मुक्त होना सरल है; आंतरिक का बंधन प्रबल होता है और मनुष्य उससे बँधा रहता है। फ्रायड की शब्दावली मे यह आभ्यन्तर की मातृ-पितृ भाव-ग्रन्थि का सूचक है।

कल्पनाग्रह मे चिन्ता आदत और विचार के रूप मे व्यक्त होती है और भय से रक्षा-मात्र के लिए होती है, अर्थात् इसका लक्षण चिन्ता से रक्षा पाने का एकमात्र उपाय है। चिन्तारोग मे दमित इच्छाएँ चिन्ता के ही रूपों मे प्रकट होती है, जो आभ्यन्तर के संघर्ष की द्योतक हैं और इस प्रकार अज्ञात मन के परिवर्तित रूप की उत्पादक है। इसमे मिले-जुले प्रकार के प्रतीक होते हैं। अज्ञात मन के तथ्यों का प्रदर्शन दोनों ही रूपों, शारीरिक क्रियाओं और मानसिक प्रतिमाओं मे होता है। तीव्र चिन्ता रहने पर हृदय और नाड़ी की गति धीमी पड़ जाती है और रक्त-प्रवाह और पिंड-प्रवाह मे परिवर्त्तन हो जाता है। इस प्रकार मानसिक चिन्ता मे कुछ-न-कुछ शारीरिक परिवर्त्तन समन्वित रहता है।

> "एक उन्नीस वर्षीय युवक से सम्पर्क पड़ा जो घर से बाहर इस चिन्ता से निकलना नहीं चाहता था कि यदि उसे डॉक्टर की आवश्यकता पड़ी और डॉक्टर न मिला तो उसके दिल की गाड़ी बन्द हो जायगी।"

फ्रायड ने चिन्ता के सिद्धांन्त का निरूपण 'वस्तु-चिन्ता' और 'रोगग्रस्त चिन्ता' मे भेद बतलाते हुए किया है: पहली प्रकार की चिन्ता भय की प्रतिक्रिया है; दूसरी प्रकार की प्रकृति मे विचित्र और प्रयोजनहीन होती है। रोगग्रस्त चिताएँ तीन प्रकार की होती हैं: प्रमुख चिन्ता, भीति चिन्ता, और हिस्टेरिक चिन्ता। भीतिरोग मे चिन्ता सदैव किसी-न-किसी वस्तु से संबंधित रहती है और भय की वस्तु किसी अन्य वस्तु से संबंधित होती है, जो वस्तुतः उस व्यक्ति की किसी वेदना भरी अनुभूति से संबंधित होती है। भय काम-भाव का

द्योतक होता है : "अकेले रहने पर तथा अपरिचित को देखकर बालक के मन मे परिचित की अथवा माँ की अभिलाषा उठती है। इस काम-संबन्धी प्रेरणा पर नियंत्रण नहीं किया जा सकता, इसे स्थगन की अवस्था मे नहीं रखा जा सकता; यह चिंता मे रूपान्तरित हो जाती है।"[1] फ्रायड द्वारा प्रतिपादित यह विवरण स्वीकृत नहीं किया जा सकता, भले ही कुछ ऐसी घटनाएँ होवें जहाँ भय की वस्तुएँ काम-संबन्धी संवेगात्मक अनुभूतियों से संबंधित हैं। संभव है भीतिरोग किसी भयात्मक अनुभूति से, जो प्रकृत अतृप्त इच्छा से संबंधित है, उत्पन्न हुआ हो। भय की प्रारम्भिक अवस्था की स्मृति नहीं रहती। यह वर्त्तमान की घटना से संबन्धित नहीं होता; यह अतीत की घटना से संबंधित रहता है। वृक्ष पर चढ़ने मे या नदी पार करने मे जो भय लगता है उससे असाधारण भय तीव्रता और उत्पत्ति के कारणों की दृष्टि से भिन्न होता है। यदि बालक खरगोश से खेलता है और खरगोश काट लेता है, उसे खरगोश से भय लगने लगता है। किन्तु बालक का खरगोश के प्रति भय और रोगी के भय मे भेद होता है। 'खुली जगह का भय', 'बन्द जगह का भय' और 'अधंकार का भय' इत्यादि विशेष महत्व के हैं। किसी लड़की का बहते जल से भयभीत रहना, किसी युवक का बन्द कमरे से भयभीत होना, या भय के कारण दीवार से कुर्सी लगाकर बैठना—ये सब रोचक दृष्टांत हैं।[2] अहं-भाव अपरिपक्क होने से या जातीय और अहं-भाव मे समन्वय न होने से, अथवा जीवन की महती आकांक्षाओं के नप्ट होने से भय होता है।

मैकडुगल की भीतिरोग की व्याख्या फ्रायड से भिन्न रही। उनके अनुसार आत्मप्रतिपादन की वृत्ति का दमन करने से भीतिरोग हो जाता है, जिससे मनुष्य मे अपराध-भाव, तिरस्कार-भाव, और अपने ही पर क्रोध के भाव उठते हैं। सामान्यतः मननशील प्रकार के व्यक्ति इसका आखेट होते हैं। स्टेकल ने एक दृप्टान्त दिया है और इसकी व्याख्या उनके सिद्धान्तों पर ही आधारित है। एक युवती खुले स्थान के भीतिरोग से त्रस्त थी—यह इस कारण नहीं कि उसने अपने काम-भाव को दबा दिया था, क्योंकि बहुतों से वह प्रेम का स्वाङ्ग रचा करती और यह उसके लिए एक प्रकार का मनोरंजन-सा था।

---

[1] फ्रायड:—न्यु इन्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स, पृष्ठ १०९

[2] मैकडुगल:—आउटलाइन ऑफ एबनौरमल साइकॉलजी, पृष्ठ ३०४

वस्तुतः उसे ईश्वर के कोप का भय था कि वह अपवित्र है। अपवित्र कार्य करने से उसके मन मे भय का भाव उत्पन्न हो गया था।

"पड़ोस मे एक व्यक्ति को मुसलमानों से बड़ा भय लगता था। हिंदू-मुसलमानों मे सामाजिक वैमनस्य का दौरा था। सड़क की थोड़ी गाली-गलौज़ उसे भयभीत करने के लिये पर्याप्त थी। वह दौड़कर मकान की खिड़कियों और दरवाजे बंद कर लेता। वह अपढ़ था। पत्र-पत्रिकाएँ नहीं पढ़ता था; केवल पूछा करता कि हिंदू-मुसलमान दंगा तो नहीं हो जायगा। डील-डौल मे हृष्ट-पुष्ट, इच्छाशक्ति का बली और जो निश्चय करता उससे न डिगता, ऐसी प्रकृति का था। विश्लेषण द्वारा यह स्पष्ट हुआ कि उसका भय उसके जीवन की पिछली अनुभूतियों से संबंधित है। जब वह ग्यारह वर्ष का था, उसने अपनी बहिन के हाथों से सोने की चूड़ियाँ चुपके से निकाल ली और बाजार मे बिक्री करने के लिये गया। तभी एक मुसलमान साथी ने धोखा दिया। चूड़ियाँ खोयी और रुपया भी न मिला। इससे उसके मन मे घृणा और अवहेलना का भाव उत्पन्न हो गया। अपने व्यवहार पर उसे घृणा हुई और उसके मनमे यह भाव उठा कि वह सचमुच घृणा का पात्र है। उसके आत्मभाव पर धक्का लगा। यद्यपि इस घटना को वह भूल गया तथापि इसकी छाप उसके मन पर दृढ़ बनी रही और इसीसे मुसलमान जाति के प्रति उसके मन मे अज्ञात रूप से एक भय का भाव बन गया।"

शरीर और विचारों से सबंधित प्रतीकों पर विचार-विमर्श हो जाने के पश्चात् मानसिक प्रतिमाओं के प्रतीकों पर प्रकाश डालना है। इसके लिये मनोविक्षेप वर्ग के रोगियों की मानसिक अवस्था पर विचार करना होगा। मनोविक्षेप मे, जैसा फ्रायड ने अपने ग्रंथ न्यु इन्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स मे लिखा है: "यथार्थता से दूरी दो प्रकार से संभव है: एक, या तो दमित अज्ञात मन अत्यधिक बली होने से ज्ञात मन को जो यथार्थता से सीमित है पूर्णरूपेण आच्छादित कर ले; दूसरे, यथार्थता ऐसी असह्य प्रतीत हो कि संघर्ष के भय से भयभीत अहम् अपने को अज्ञात मन की वृत्तियों को सौंप दे।"[१] स्थिरभ्रम

---

[१] फ्रायड :—न्यु इन्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स, पृष्ठ २०७

और असामयिक मनोह्लास के रोगियों की भ्रमात्मक मानसिक प्रतिमाएँ प्रतीकात्मक स्वभाव की होती हैं।

'स्थिरभ्रम' एक प्रकार की विक्षिप्तता है जिससे रोगी अन्य व्यक्तियों के कार्य-व्यापार की मिथ्या व्याख्या करता है और इस प्रकार से उसमे अनेक प्रकार के भ्रम निर्मित हो जाते हैं जिनका बुनियादी आधार यथार्थ जीवन मे नहीं मिलता। फ्रायड ने स्थिरभ्रम का एक रोचक उदाहरण दिया है :

> "एक युवती का किसी युवक से प्रेम था। वह उसकी ओर आकर्षित थी। वह निर्भीक अपने 'प्रिय' के साथ चैन से समय बिताती और उससे मधुर प्रेमालाप करती। एक दिन प्रेमालाप के समय उसे ऐसा आभास हुआ कि उसने कैमरे के टिक की आवाज़ सुनी है और कुछ व्यक्तियों को खिड़की के सामने से जाते भी देखा है। उसके 'प्रिय' ने उसे समझाने का प्रयास किया : 'ऐसा कुछ नहीं'। वह न मानी और धीरे-धीरे उसका विश्वास उसके प्रिय के प्रति कम होने लगा। उसके मन मे यह 'भ्रम' घर कर बैठा कि उसे ज़लील करने के लिये उसके 'प्रिय' ने फोटो लेने का आयोजन किया है। जब से उसके मनमे यह भाव उठा वह व्यवहार से कटु हो गई और साधारण सी साधारण बात पर उससे खीझती और ताड़ना दिया करती। उसमे अवज्ञा का भाव उत्पन्न हो गया और वह अपने मे विश्वास खो बैठी। यह भाव-कल्पना विक्षिप्त व्यक्ति की कल्पना है, क्योंकि दोषारोपण पूर्णरूपेण कल्पित था।"[१]

विश्लेषण करने पर पता लगा कि यह रोगिणी के अज्ञात मन के अपराध और अवज्ञा के भाव का प्रक्षेपण है। इसी से उसने अपना दोष स्वीकार न कर अपने 'प्रिय' को दोषी ठहराया। उसकी चेतना मे यह भाव उठा कि उसका 'प्रिय' उससे प्रेम नहीं करता, उसे अपमानित करना चाहता है। अज्ञात मन का संघर्ष प्रकृत और मूल रूप मे व्यक्त नहीं होता और व्यक्त होने के पूर्व ही परिवर्त्तित-परिवर्धित हो जाता है। इसीसे यथार्थता समझने के लिये प्रयास करना पड़ता है। नैतिक मन का प्रतिबंध अज्ञात मन की इच्छाओं की पूर्त्ति पर रहता है और फलस्वरूप स्थिरभ्रम के रोगी के

---

[१] फ्रायड :—कलेक्टेड पेपर्स, खंड २

अज्ञात मन के मूल तथ्यों का प्रक्षेपण अन्य व्यक्तियों पर होता है। इस प्रकार आरोपण से प्रतीकात्मक प्रक्रिया मे सहायता मिलती है। अपराध और घृणा का भाव 'प्रिय वस्तु' की ओर स्थानान्तरित हो जाता है। यह प्रक्रिया अजाने चलती है और रोगी यह नहीं जान पाता कि उसका विश्वास कोरा भ्रम है। प्रक्षेपण मे पहले संघर्ष का दमन होता है और तब दमित इच्छाओं का वस्तुनिष्ठ प्रतीकात्मक प्रदर्शन होता है। इससे कामशक्ति का अहं की ओर उसी प्रकार 'प्रत्यावर्त्तन' होता है जैसे 'संक्रमित दौर्बल्य' मे प्रारम्भिक प्रेम-वस्तु की ओर। कामशक्ति को वाह्य वस्तुओं से समेट लेने पर या मुक्त कर लेने पर और उसका केन्द्रीयण अहं पर करने पर रोगी नाना प्रकार के संदेह-भ्रमों का आखेट बन जाता है। प्रतीकात्मक प्रदर्शन मे प्रक्षेपण सहायक होता है।

> "एक रुग्ण स्त्री को सदैव यह पुकार सुनाई पड़ती रहती कि उसके आचरण के लिये कोई उसे ज़लील कर रहा है। इससे घबड़ाकर उसके मनमे आत्महत्या का विचार उठा। अनेक भ्रमों से वह ग्रस्त हो गई और हाथो से विचित्र इशारे भाव-भंगी किया करती। वह भाव-ग्रथियो से घिरी थी, अर्थात् वह सदैव भाव-ग्रंथि संज्ञा-हीनता मे रहती। जो कुछ वह कहती और करती उसमे, आभ्यन्तर मे भाव-ग्रथियों से उत्पन्न स्वप्न-मात्र रचा रहता।"

इस प्रकार के दृष्टातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि रोगी की प्रतिक्रियाएँ प्रमुखतः भाव-ग्रंथियों से निर्धारित होती हैं। ये छद्म प्रदर्शन हैं और कैसी भी अद्‌भुत हों, आक्रान्त भाव-ग्रंथियों के बारे मे ज्ञान होने पर इनका विवरण सदैव संभव होता है।

'अपमान-भ्रम' की व्याख्या फ्रायड और एडलर तथा मैकडुगल ने अलग-अलग ढंग से दी है। फ्रायड के दृष्टिकोण से अपमान-भ्रम सदैव 'प्रिय' की ओर होता है; मैकडुगल के दृष्टिकोण से यह स्पष्ट आशंकाएँ है जो सामाजिक वातावरण की ओर निर्देशित हैं। ऐसे भ्रम मे वस्तुतः काम-भाव गौण रहता है; इससे रोगी के मानसिक क्षेत्र मे अपराध तथा हीनत्व-भाव को केवल बल मिलता है। एडलर के अनुसार अपमान-भ्रम मे सामाजिक अपमान मुख्य रहता है। भ्रम-विरचन जो विक्षिप्तता का सूचक है, वस्तुतः पुनर्निर्माण की कार्य-पद्धति का प्रयास होता है। 'प्रिय' से असुन्दर होने के कारण उसमे अपमान-भ्रम जागृत होता है। आभ्यन्तर मे आत्मप्रतिपादन की वृत्ति के

कारण वह अपने हीनत्व-भाव का आरोपण 'प्रिय' पर कर देती है। इस प्रकार यह अयोग्यता का युक्ताभ्यास मात्र है। फ्रायड के विचार से यह अपने 'प्रिय' से समझौता करने का बहाना है।

इसी प्रकार 'ऐश्वर्य-भ्रम' के भी अनेक दृष्टान्त है

"एक रोगी के मन मे निरंतर यह विचार उठता कि उसे ईश्वर ने एक बडे सुधारक का कार्य करने के निमित्त भेजा है। रोगी को एक तो यह भ्रम रहा कि वह एक बडा सुधारक है; और दूसरा यह कि वह एक स्त्री के रूप मे परिवर्तित हो जायगा। विचारगम्य होते उसमे ये भ्रम सदैव बने रहे। आश्चर्य है कि यह भाव ऐसे व्यक्ति का है जिसमे धर्म की ओर आस्था नही थी, यद्यपि उसमे पर्याप्त नीति-सबधी सिद्धान्त रहा।"

वस्तुत. उपर्युक्त भ्रम रोगी की भाव-कल्पना है। यह प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। उसका सुधारक होने का भ्रम काम-सबधी अपमान-भ्रम का धार्मिक भ्रम मे रूपान्तरण है। धार्मिक भ्रम कामात्मक भाव का प्रतीक होता है। अपमान-भ्रम का ऐश्वर्य-भ्रम मे परिवर्तन होना प्रतिक्रिया-मात्र है। ईश्वर का प्रसंग उठते ही उसके भाव को धार्मिक रूप मिल गया। उसे ईश्वर से आदान-प्रदान का आभास हुआ और दैवी गान सुनाई पड़ने लगा। स्त्री रूप मे परिवर्तित होने की भाव-कल्पना प्रसग के अनुकूल थी, क्योकि शक्तिहीन करना अपमान की बात नही समझी जाती थी, यह वस्तुओं की व्यवस्था के साथ लययुक्त है।"[१] उसके शरीर के अंग-अग मे एक विचित्र आह्लाद की अनुभूति होती रही जो एकमात्र स्त्री जाति मे ही सभव होता है।

युग ने भी ऐश्वर्य-भ्रम के रोचक दृष्टांत दिये है। युग की व्याख्या के अनुसार 'ऐश्वर्य-भ्रम' रोगी के ऐश्वर्य भाव-ग्रथि का द्योतक होता है :

"एक निर्धन स्त्री को ऐश्वर्य-भ्रम हो गया और यह उसकी प्रतिक्रियाओं से स्पष्ट होता रहा। वह 'सार्क्रेटिज', 'प्रोफेसर', 'पॉलिटेकनिक', 'समिट' इत्यादि शब्दों की प्रतिक्रियाएं देती थी। वह अपने और सार्क्रेटिज मे तादात्म्य स्थापित करती। वह कहना चाहती थी मै हूँ और सार्क्रेटिज की

फ्रायड:—कलेक्टेड पेपर्स, खंड ३, पृष्ठ ३९०

[१] फ्रायड:—कलेक्टेड पेपर्स, खंड १, पृष्ठ ४३२

तरह सताई जा रही हूँ'। वह यह तादात्म्य सत्य रूप मानती और यही चाहती कि इसे सब सत्य और शिव समझें। 'मै स्विटज़रलैंड हूँ', अर्थात् मै स्वतंत्र हूँ और मेरे ऊपर कोई अंकुश नहीं होना चाहिये। 'मै डबल पॉलिटेकनिक हूँ', अर्थात बुद्धि और गुण मे सर्वोच्च हूँ। सार्क्रेटिज़ और डबल पोलिटेकनिक की प्रतिक्रियाएँ एक दूसरे के अनुरूप हैं। 'समिट' उसकी सब क्रियाओं और उपाधियों का संबोधन है। 'क्राउन' अच्छाई और वैभव का, जिसे मानव विजय पाने पर प्राप्त करता है। 'मॉनोपली' से उसकी निज की आकांक्षा द्योतित होती है।"

इसी प्रकार उसके अन्य प्रतिक्रिया शब्दों की भी व्याख्या की जा सकती है। उत्तेजक शब्दों की प्रतिक्रियाओं मे वह जिन शब्दों का प्रयोग करती उनसे उसका महत्वाकांक्षणी होना प्रकट होता है। उसकी कल्पनाएं उसके अज्ञात मन की ख्याति और आर्थिक लाभ की इच्छा के द्योतक हैं। वस्तुतः मन के निचले स्तर पर उसका सदैव यह प्रयास रहा कि वह सामाजिक बंधन से मुक्त हो जाय और उसे समाज मे ऊँचा स्थान प्राप्त हो। "सभी तीव्र इच्छाएँ कल्पनाओं के लिये सामग्रियाँ प्रदान करती हैं जिनमे उनका प्रतिनिधित्व इस ढंग से होता है कि उनकी तुष्टि हो जाती है। यह यथार्थ धारणाओं के रूप मे नहीं होता; स्वप्न-तुल्य रूपकों मे होता है।"[1] वह अज्ञात भाव-ग्रंथियों से पूर्णतः आक्रान्त रही और यह उसके विभिन्न उत्तेजनों की प्रतिक्रियाओं से स्पष्ट होता है।

इस विश्लेषण का यह निष्कर्ष है कि व्याधिजनक भ्रम सदैव इच्छाओं-वासनाओं का प्रतीकात्मक रूप मे पूरक होता है। असह्य मानसिक यातनाएँ होने पर मन की गठन जटिल बन जाती है। मन मे विचित्र भाव, विचार और प्रतिमाएँ उठने लगती हैं और इस प्रकार व्यक्ति मनोविक्षेप से त्रस्त हो जाता है, जिसमे संतुलित क्रमबद्ध तर्कयुक्त क्रियाओं के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। उसका अज्ञात मन उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर शासन करता है।

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि मनोविक्षेप मे कामशक्ति वाह्य वस्तुओं या व्यक्ति से हटकर अहम् मे केन्द्रित हो जाती है। इस मनोवृत्ति को 'आत्मसम्मोह' कहते हैं। ऐसी अवस्था मे व्यक्ति को रुचि का विषय

---

[1] युंगः—साइकॉलजी ऑफ डिमेन्शिया प्रीकाक्स, पृष्ठ ११५

अपना ही शरीर रहता है। आत्मसम्मोही को इच्छाओं की तुष्टि के लिए कोई वाह्य वस्तु की आवश्यकता नहीं पड़ती। वाह्य वस्तुओं की ओर से अपने को समेट लेने से रोगी अन्य व्यक्तियों के व्यवहार और संबंध का मिथ्या अर्थ लगाता है और कल्पित कहानियां गढ़ता है जिसका वास्तविक क्षेत्र मे कोई आधार नहीं रहता। यह अनुशीलित प्रक्षेपण की कार्य-पद्धति की सहायता से होता है। रोगी अपनी स्वभर्त्सना के अचेतन भाव का आरोपण अन्य विषय-वस्तुओं पर करता है और उस वस्तु को अपना प्रतिद्वन्द्वी समझने लगता है, चाहे वह वस्तु समाज (मैकडुगल) हो अथवा प्रेम-पात्र (फ्रायड)। जब कभी कोई व्यक्ति ऐसा कार्य करता है जो उसके अहं के आदर्शो के विपरीत रहता है, यद्यपि उसका व्यवहार उसकी प्रकृत इच्छा से लय मे होता है, उसमे अचेतन अपराध-भाव उत्पन्न होता है और वह उसका प्रक्षेपण मात्र करता है।

स्थिरभ्रम रोग मे कामशक्ति विकास की किसी भी अवस्था-विशेष पर केन्द्रित हो जाती है। इस प्रकार के केन्द्रीयण का प्रभाव अनर्थपूर्ण पड़ता है। जब कोई व्यक्ति अपनी कामशक्ति को परिमार्जित (फ्रायड) करने मे असफल होता है, अभिव्यक्ति की राह न मिलने से कामशक्ति की तीव्र लहर द्वारा उसकी सामाजिक प्रवृत्तियों का संभोगकरण हो जाता है। प्रेम मे निराश होने पर कामशक्ति विशेष सबल हो जाती है और इस प्रकार उसका विस्फोटन मनो-विक्षेप के रूप मे होता है। स्थिरभ्रम का रोगी बड़ी युक्तिपूर्वक कार्य करता है। वह वृत्यात्मक कैथेक्सिस के सम्भोगीकरण से अपनी रक्षा करता है। इसी कारण ऐसी मानसिक विक्षिप्तता मे, जब तक कि विश्लेषण न किया जाय, काम-भाव स्पष्ट नहीं रहता। स्तर पर सामाजिक हीनता या सामाजिक आघात मुख्य तत्व दृष्टिगत होते हैं। वस्तुतः किसी व्यक्ति के प्रति भ्रमात्मक कल्पनाएँ अत्यधिक आकर्षण ओर इससे संयुक्त अपराध के भाव के कारण होती है। अस्वस्थ दमित इच्छाओं के रक्षार्थ ये कार्य करती हैं। भ्रम का मुख्य कारण अन्तःकरण या अचेतन अपराध-भाव होता है। वस्तुओं से मुक्त अहं मे स्थानान्तरित मानसिक शक्ति का उपयोग भ्रमात्मक कल्पनाओं की रचना मे संभव होता है। भ्रम उसकी विचित्र मानसिक अवस्था, मानसिक प्रतिबन्ध और उसकी आगामी पुनः रचनाओं को व्यक्त करता है। भाव-कल्पना का हीर दमित इच्छा है। अचेतन घृणा का भाव जो प्रेरक रूप है, प्रक्षेपण द्वारा दूसरे पर आरोपित होता है

फ्रायड :—गोल्डेन बाउ

जैसे यह् वाह्य प्रत्यक्षीकरण का परिणाम हो—वह अवस्था जिसमे व्यक्ति वाह्य जगत पर दायित्व आरोपित करता है जिसका उद्‌गम उसमे होता है और जिसका दायित्व उसपर है : 'वह मुझसे घृणा करता है । मेरा उससे घृणा करना न्यायसंगत है' । भ्रम मन के 'द्विभाव' का द्योतक होता है । द्विभाव का अर्थ है : ज्ञात स्तर पर आकर्षण और तदनन्तर अज्ञात मे घृणा । द्विभाव का प्रमाण ऐतिहासिक अध्ययन करने पर भी मिलता है । प्राचीन समाज मे राजा की सत्ता रहती थी और प्रजा उनकी अनन्य भक्त होती थी । एक प्रथा के अनुसार राजतिलक के पहले दिन नियमित रूप से नये चुने राजा को कड़ी सजा दी जाती थी । वह मृत-तुल्य कर दिया जाता । वही राजा चुना जाता जो अधिकांश व्यक्तियों का दुश्मन होता । फ्रायड का द्विमुखी सिद्धांत प्राचीन समाज-व्यवस्था और सभ्यता का अध्ययन करके स्थापित हुआ है । यह सिद्धांत राजा-प्रजा के परस्पर संबंध या माता-पिता और बालक के संबंध पर ही आधारित नहीं है, बल्कि हरएक व्यक्ति के जीवन मे इसका प्रमाण मिलता है ।

कामशक्ति की ओर विमुखता और इसका अन्तर्मुखीकरण होते हुए भी स्थिरभ्रम के रोगी का संबंध वाह्य जगत् से भ्रान्तिमय विक्षेप, जैसे असामयिक मनोह्लास, की तरह पूर्णतः विच्छिन्न नहीं हो जाता । असामयिक मनोह्लास मे रोगी विकृत रूप से अन्तर्मुखी हो जाता है और वह अपने को वास्तविकता से समेट लेता है । वह एक प्रकार से वाह्य जगत को भूल-सा जाता है और आभ्यंतरिक अंशभूतों से प्रेरित होने से उसका प्रत्यक्षीकरण भी विकृत हो जाता है । प्रत्यक्ष को भ्रमात्मक बनाने की प्रवृत्ति स्थिरभ्रम के रोग मे भी होती है जिसमे रोगी वैमनस्य की कामात्मक इच्छाओं को मानसिक सत्ताओं के रूप मे नहीं स्वीकार करता । परन्तु मिथ्या प्रदर्शन का सबसे अतिक्रमित रूप असामयिक मनोह्लास की भ्रांति के लक्षण मे मिलता है ।

असामयिक मनोह्लास मे प्रतीक और प्रतीकात्मक संबंध अधिकांश मिलते हैं । पेलिटियर का कथन है—"विक्षिप्तता की उत्पत्ति मे प्रतीक का स्थान बहुत महत्व का है । अपमानित और प्रत्यावर्त्तित वर्गों के विक्षिप्तों मे यह सबसे अधिक मिलता है । इसका कारण यह है कि प्रतीक निचले स्तर की विचार-प्रणाली है । प्रतीक की संभावित परिभाषा है कि यह दो या अधिक वस्तुओं मे तादात्म्य संबंध का मिथ्या प्रत्यक्षीकरण है, या उनकी घनिष्ट

[1] युंग :—साइकॉलजी ऑफ डिमेन्शिया प्रीकॉक्स

पारस्परिक साम्यता है जो वास्तव मे बहुत अस्पष्ट अनुरूपता है।" भ्रान्तियाँ अज्ञात मन की भाव-ग्रन्थियों के प्रतीक हैं। असामयिक मनोह्लास के रोगी की भ्रान्तियाँ, विशिष्ट व्यवहार मे एकरूपता, शिष्टता, वृत्यात्मक क्रियाएँ, मानसिक निष्क्रयता, मूर्च्छा, गूंगापन और नवशब्दनिर्माण—जिनका बाह्य जगत मे कोई आधार नही होता, विचित्र मानसिक अवस्थाओं और भाव-कल्पनाओं से निर्धारित होते है। ज्यों-ज्यों वास्तविकता का आधिपत्य कम होने लगता है, आम्यन्तरिक क्षेत्र निर्धारक बनता है। फेरेन्कज़ी ने लिखा है: "मानसिक ह्रास होने पर व्यक्ति अपनी समूची रुचि और भावात्मक संबंध का बाह्य जगत् से अन्तर्मुखीकरण करता है, अथवा वह अपने को वाह्य जगत् से समेटता है; इसलिए उसका बचपना, उसकी स्वतः कामवृत्ति की तुष्टि, सांस्कृतिक-सामाजिक पात्रों के प्रति उदासीनता इत्यादि द्वारा वाह्यजगत की ओर विमुखता प्रकट होती है।"[१] अन्तर्मुखी स्वभाव का होने के कारण एकमात्र उसे यह अनुभूति होती रहती है कि जगत् का रूप जो वह चाहता है वैसा नही है। इसी से भाव-कल्पना के जगत् मे रहने की ओर रुचि उसमे अधिक होती है और वह वास्तविक संतुष्टि को निर्मित-कल्पित के लिये त्यज देता है। वास्तविक जगत् की ओर अवज्ञा इस बात की द्योतक है कि उसके जीवन मे विचित्र घटनाएँ घटी हैं जिनके कारण उसकी प्रवृत्यात्मक इच्छा का दमन हुआ है। जब कभी अहं और वृत्यात्मक जीवन की माँगों मे संघर्ष होता है और व्यक्ति बलपूर्वक दमन इस प्रकार करता है कि मन का अंशभूत अज्ञात मे स्थान बना स्वतंत्र जीवन व्यतीत करने लगता है, तब आम्यन्तरिक और वाह्य मे सामन्जस्य कठिन हो जाता है। ज्ञात तथा अज्ञात मे एकीकरण और सामजस्य नहीं हो पाता। फलस्वरूप व्यक्तित्व के इस स्वतंत्र भाग, मुक्त भाव-ग्रन्थियों की कल्पित दुनियाँ निर्माण होती है और इस प्रकार व्यक्ति को अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ होने लगती है। भ्रान्तियाँ मन के उस भाग की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति हैं जिनकी स्वतंत्र सत्ता स्थापित हो गई है। व्यक्ति वातावरण से असंतुलित हो जाता है।

असामयिक मनोह्लास का विवरण मनोविश्लेषण के अनुयायी चार्ल्स बर्ग ने उपमा के रूप मे दिया है। अहं के पथ प्रदर्शक होने पर इड निश्चल हो

[१] फेरेन्कजी:—फर्दर कॉन्ट्रिब्युशन टु दि थ्योरी एन्ड टेकनीक ऑफ साइकोएनिलिसस, पृष्ठ २२

जाता है और इस बोझ को अहं स्वयं उठाता है। साधारण स्वस्थ और संतुलित जीवन के लिये अहं और इड दोनों को ही चालित रहना आवश्यक है। यदि एक प्रतिबंधित है तो दूसरा अकेले संतोषप्रद कार्य नहीं संपादित कर सकता। असामयिक मनोह्लास मे रोगी की मानसिक अवस्था ऐसी रहती है जिसमे इड पर प्रतिबंध रहता है। इड का संतोषप्रद स्थानापन्न अहं द्वारा कभी नहीं हो सकता। बिना इड के अहं की अवस्था वैसी ही होती है जो राजा के बिना प्रजा की। ऐसी परिस्थिति मे अहम् की शक्ति कम हो जाती है और मनुष्य के स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव पड़ता है। इड निर्धारक, चंचल, और क्रिया-स्रोत होता है : "शक्ति के उद्गम अश्व को निष्क्रिय कर अहं अपनी गाड़ी स्वय चलाना चाहता है और वह भी ऐसी कुशलता से जैसा उसके प्रतिद्वन्द्वियों ने कभी न किया हो।"[१] परन्तु वह असफल होता है। अहं रूपी चालक भी निष्क्रिय हो जाता है. क्योंकि उसकी सफलता अश्व के सहयोग पर आधारित होती है। अहं कभी भी इड का स्थान नहीं ले सकता। जीवन का मूल तत्व इड मे, मनुष्य की मूल प्रकृत अवस्था मे निहित होता है। इड बल प्रदान करता है और व्यक्ति को चालित करता है, यद्यपि उसकी प्रतिक्रियाएँ सदैव अज्ञात होती हैं। युगों की बुद्धि इड मे निहित होती है। कठिन नियंत्रण होने पर कोई भी स्वस्थ क्रिया संभव नहीं रहती।

असामयिक मनोह्लास की मुख्य विशेषता आत्मसम्मोही प्रवृत्ति है, जिसमे रोगी को आह्लाद की अनुभूति अपने ही शरीर को प्यार करने मे होती है। वह अपने अहं और वस्तु-कामशक्ति मे एकत्व स्थापित कर लेता है, स्वकथन करता है : 'देखो ! मै वस्तु-विषयी की ही तरह हूँ, तुम मुझे प्यार कर सकते हो'। यह चुनौती : 'मिरर, मिरर ऑन द वॉल, इन सबमे कौन अधिक सुंदर है' पूर्णरूपेण आत्मप्रेम है। आत्मप्रेम के प्रवाह मे बहना, अथवा स्थानान्तरण करना बाह्य वस्तुओं को त्यागना है। जब तादात्म्य स्थापित करने की वस्तुएँ अनेक होती हैं और उनमे समन्वय नही स्थापित किया जा सकता तब विकृत लक्षण दृष्टिगत होते हैं। बहुव्यक्तित्व का यही रहस्य है कि इसमे अनेकानेक तादात्म्य मिलते है और इनका चेतना मे अथवा ज्ञात मन पर आधिपत्य स्थापित हो जाता है। अहं से तादात्म्य ऐसा घटाटोप होता है कि मानसिक कल्पित प्रतिमा को पृथक् करने मे रोगी सर्वथा असफल हो जाता है।

---

[१] चार्ल्स बर्ग :—डीप एनिलिसस, पृष्ठ ३६

किंतु उसकी मानसिक प्रतिमा और वास्तविकता मे कोई संबंध नहीं रहता। हिस्टीरिया और कल्पनाग्रह के रोग मे संबंध के न रहते हुए भी विश्लेषण द्वारा यह प्रत्यक्ष है कि इसकी भाव-कल्पना मे काम-संबंध बना रहता है; असामयिक मनोह्लास मे सभी सामाजिक संबंध भूल जाते हैं। अहं की योजना वृत्यात्मक इच्छाओं पर शासन करने की रहती है जिससे व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य की वृद्धि नहीं हो पाती; बल्कि वह रोग का आखेट हो जाता है। बात यह है कि जीवन को स्वस्थ-समृद्ध रखने के लिये छाया और प्रकाश दोनों ही समान रूप से आवश्यक होते हैं। अहं और इड मे समन्वय लाना है—ऐसी स्थिति जिसमे पारस्परिक संबंध एक दूसरे पर हुकूमत करने तथा प्रतिद्वन्द्वी का न रहे।

कुछ दृष्टांत हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि असामयिक मनोह्लास के रोगी मे किस हद तक दिशाभ्रम होता है। जैने के एक रोगी का वार्तालाप था :

> "मुझे ऐसा मालूम पड़ता है कि मै अपने बच्चों को अब कभी न देख पाऊँगी। हर चीज़ के प्रति मेरे मे अवज्ञा-सी पैदा हो गयी है। मन हताश रहता है और इच्छा होती है कि मै चिल्लाऊँ और अपनी दुःख-गाथा कहूँ। मै जानती हूँ कि मुझे दुःखी रहना चाहिये—यह मुझसे नहीं हो पाता। मुझे दुःख और सुख की अनुभूति नहीं होती। भोजन स्वादिष्ट है, किंतु पूर्वानुभूति आनन्द बिना निगल जाती हूँ। अपने को बहुत भारी पाती हूँ जिससे नैतिक भावना का अनुभव करने मे रुकावट पड़ती है।"

एक अन्य रोगी ने कहा :

> "मै अपनी छोटी लड़की के बारे मे सोचना चाहती हूँ, किन्तु नहीं सोच पाती। बच्ची का विचार मुश्किल से मन मे आता है; कोई भाव वेदना नहीं उठती।"[१]

अतएव असामयिक मनोह्लास के रोगियों की भ्रांतियों का विवरण देने के लिए इड के स्वभाव की ओर इंगित करना आवश्यक है जो अहम् के आदर्शों का प्रतिद्वन्द्वी होता है। अनेक मानसिक रोग अत्यधिक साधु प्रकृति तथा

---

[१] फ्रायड :—दि इगो एण्ड दि इड

[२] युंगः—दि साइकॉलजी ऑफ डिमेन्शिया प्रीकॉक्स, पृष्ठ ७७-७८

ऊँचा आदर्श रखने से होता है, अर्थात् युंग के शब्दों मे यह शैडो की ओर विमुख होना है। इड को दबाने का जितना अधिक प्रयास किया जाता है इसके विस्फोटन की आशंका बढ़ती है। मानव को बहुत बली 'शैडो' का सामना करना पड़ता है। 'शैडो' व्यक्तित्व का आवश्यक अंग है; इसके बिना कोई व्यक्ति अपने जीवन की नाव नहीं खे सकता।

असामयिक मनोह्लास मे भाव का उच्छेद नहीं हो जाता; भाव स्थानान्तरित और प्रतिबंधित मात्र होता है। वस्तुतः भावात्मक संबंध का अभाव हो जाता है। मुक्त भाव-ग्रंथियों का स्वतंत्र अस्तित्व स्थापित होता है और इनका सामन्जस्य चेतन अहं से नहीं रहता। इसी से उसे विश्व एक महान् भ्रांति रूप मे धुधला और अनिश्चित-सा दिखलाई पड़ता है। यह सब आभ्यन्तर मे सघर्ष के विष का प्रसारण होने से घटता है।

प्रश्न यह है कि स्थायीभ्रम रोग और असामयिक मनोह्लास को जो एक ही वर्ग (आत्मसम्मोही) के है, किस प्रकार पृथक् किया जा सकता है। इन दोनों रोगों की कार्य-पद्धतियाँ पृथक्-पृथक् होती हैं। स्थायीभ्रम मे प्रक्षेपण की कार्य-पद्धति द्वारा भ्रम के निर्माण मे अचेतन इच्छाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होती है; असामयिक मनोह्लास मे रोगी भ्रमात्मक कल्पनाओं का ही उपयोग करता है। पहले मे सफलता पुर्ननिर्माण मे होती है; दूसरे मे दमन मे। इसके अतिरिक्त सहवर्गी कामेच्छा का विकास असामयिक मनोह्लास मे उसी अनुपात मे नहीं होता जिस अनुपात मे इसका महत्व स्थिरभ्रम रोग मे होता है। भ्रम और भ्रान्तियाँ क्रमश स्थिरभ्रम और असामयिक मनोह्लास की विशेषताएँ है।

'उत्साह-विषाद मनोदशा' मे रोगी को विशेपतः आह्लाद और विषाद की अनुभूतियाँ क्रम से होती है। पहले उत्साह की अनुभूति होती है और फिर विषाद की। कभी तो ये दोनों अवस्थाएँ क्रम से आती हैं और कभी बीच मे साधारण अवस्था आती है। ये अवस्थाएँ अज्ञात मन के तथ्यों की अभिव्यक्तियाँ हैं। एडलर के दृष्टिकोण से अत्यधिक शासन करने की प्रवृत्ति उत्साह-विषाद रोग की प्रारम्भिक अवस्था है। उत्साह की अवस्था मे रोगी हंसता है, बातचीत करता है, और बहुत आवेगपूर्ण अवस्था मे रहता है। इसमे भयभीत भाव के हटाने का प्रयास होता है। अहं उसकी भाव-ग्रंथि पर विजय प्राप्त कर लेता है; एक प्रकार से यह उसकी आस्था ही मेट देता है। विषाद की

अवस्था मे तीव्र हीनत्व-भाव प्रदर्शित होता है। यह जीवन के तीन मुख्य समस्याओं से असामन्जस्य के कारण होता है। मैकडुगल के अनुसार अत्यधिक उत्साह और विषाद की क्रमिक अवस्था से दमित स्थायीभाव की अभिव्यक्ति होती है, जिससे व्यक्ति अपने को दोषी ठहराना प्रारंभ कर देता है।

'विषाद रोग' मनोविश्लेषण की दृष्टि से अहं के प्रति नैतिकमन के व्यवहार पर निर्भर करता है। किसी व्यक्ति पर विषाद का आक्रमण तभी होता है जब नैतिक मन बहुत कठोर हो जाता है और अभागे अहं की भर्त्सना करता है। ऐसे व्यक्तिओं के नैतिक मन का स्तर बहुत ऊँचा रहता है और अहं और नैतिक मन के तनाव के फलस्वरूप रोगी अपने मन मे अपराध का भाव डालता है और वह निराश-सा रहने लगता है। अपने को दोषी ठहराना इस रोग की प्रमुख विशेषता है। यह अनुभूति रोगी स्वय नहीं करता; बल्कि यह उस व्यक्ति पर आरोपित करता है जो उसका 'प्रिय' है या जिसे उसे प्यार करना चाहिये। फ्रायड का कथन है: "वह स्त्री जो अपने पति के प्रति दया का भाव व्यक्त करती है कि उसने ऐसी साधारण स्त्री से अपना संबंध जोड़ा है, वास्तव मे अपने पति को दोषी ठहराती है कि वह इतना साधारण व्यक्ति है।"[१] अपने को दोषी ठहराना कभी-कभी आत्महत्या की भाव-कल्पना मे परिणित हो जाता है और यह नैतिक मन का अह और मूल वासना (इड) पर अत्यधिक शासन के कारण होता है। उत्साह मे नैतिक मन और अहं का सैद्धान्तिक भेद मिट जाता है और व्यक्ति एक अद्भुत बल का अनुभव करता है। अहं नैतिक मन का दृष्टिकोण मान लेता है। पिछली कृतियों मे फ्रायड ने यह निर्धारित किया कि दमन का कार्य नैतिक मन द्वारा किया जाता है। नैतिक मन इसे स्वयं संपादित करता है, अथवा नैतिक मन की आज्ञा से अहं इस कार्य को सपादित करता है। उपचार मे रोगी को नैतिक मन के आदर्शों से युद्ध करना पड़ता है और उसे इन्हें औसत स्तर पर लाने के लिये प्रयास करना पड़ता है। विश्लेषक का ध्येय उपयुक्त वातावरण उपस्थित करना है और इसी मे उसकी सफलता है।

संक्षेप मे विभिन्न मानसिक रोगों के लक्षणों की विवेचना समान रूप से आसान नहीं है। कुछ रोगों मे व्यक्ति कठिन भाव-ग्रन्थियों और प्रतिबंधों का

---

[१] फ्रायड :—कलेक्टेड पेपर्स, खंड ४, पृष्ठ १५८

आखेट होता है। विचारों के क्षय होने से ये निरतर प्रतिबधित हो जाते है जो रोगी के लिये अदृश्य शक्ति सदृश है और जिससे वह जो व्यक्त करना चाहता है व्यक्त नही कर पाता। अभिव्यक्तियाँ अद्भुत और अतिबर्धक रूप मे होती है। इसी से विवरण मे कठिनाई पड़ती है। इसके दृष्टांत मनोविक्षेप वर्ग के मानसिक रोग है। मनोविक्षेप मे रोगी बाह्य से सम्पूर्ण सबध विच्छेद कर लेता है; मनोदौर्बल्य मे वास्तविकता से संबंध भाव-कल्पना मे भी बना रहता है। मनोदौर्बल्य मे कल्पनाग्रह की व्याख्या हिस्टीरिया से आसान है। कारण यह है कि कल्पनाग्रह मे प्रयोग हुई भाषा ऐसी होती है जो सामान्य रूप से चेतन स्तर पर प्रयोग की जाती है। हिस्टीरिया रोग की भाषा रहस्यात्मक होती है। कल्पनाग्रह के लक्षण मानसिक प्रक्रिया से शारीरिक स्फूर्ति का रूप नहीं लेते। वस्तुतः सभी प्रकार के विकृत व्यवहार का महत्व अज्ञात मन के प्रसग मे होता है। यदि ज्ञात मन के तथ्यो की अभिव्यक्ति रहस्यमय है, उस पर तर्क-वितर्क होता है; किंतु अज्ञात मन के नियमो, सिद्धान्तो और कार्य-पद्धतियों के बारे मे हम अजान है। अज्ञात मन की भाषा, जिसमे उसकी अभिव्यक्ति होती है, ज्ञात मन को सदैव अस्पष्ट रहती है।

अतएव मानसिक रोग के लक्षण पहेली है। जब तक मनोचिकित्सक अपनी गूढ़ दृष्टि, निरीक्षण, अवबोधन और पक्षपातरहित मनोवृत्ति से अज्ञात मन के गूढ़ स्तर मे प्रवेश नही करता, किसी प्रकार की व्याख्या सभव नही हो सकती।

धर्म और प्रतीकवाद

हॉफडिंग के अनुसार "धार्मिक विचार मनुष्य के जीवन के संघर्ष मे मनोभावों, आकांक्षाओं और इच्छाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है।"[१] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से धर्म मानव-स्वभाव, उसकी आवश्यकताओ और इच्छाओं का अध्ययन है। धर्म का सामान्य ऐतिहासिक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि प्रतीक की समस्या सभी धर्म-पद्धतियों मे उपस्थित रही। पश्चिम मे यह समस्या तब उठी जब ईसाईयो ने यह अनुमान लगाया कि रहस्यात्मक अनुभूति यथार्थ नही बल्कि प्रतीक रूप मे होती है। ईसाई सिद्धात का सम्पूर्ण धर्मसूत्र प्रतीकात्मक रूप मे होता है और इस प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति द्वारा अप्रतीकात्मक का प्रकाशन होता है। ईश्वर स्वर्ग और भूलोक का निर्माता है, यह अभिव्यक्ति सर्वत्र प्रतीकात्मक रूप मे हुयी है। पूर्व मे भी यह प्राचीन काल से प्रचलित परम्परा है कि ईश्वर अनुभूति का विषय नही होता; हमे केवल उसके प्रतीक का साक्षात् होता है। ध्यानावस्थित होने के लिये जिन मूर्त्तियो का प्रयोग होता है, वे प्रतीकात्मक है। पौराणिक कथाएँ धार्मिक महत्व की होती है और इनमे यह वृत्तात मिलता है कि किस प्रकार ईश्वर की मूर्तियों का वास्तविक विष्णु, कृष्ण मे परिवर्त्तित होना संभव है। इस प्रकार प्रतीक का प्रश्न सदैव प्राचीन धर्म और दर्शन-विषयक समस्या रही। इसमे कोई नवीनता नही है, फिर भी इस तथ्य पर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करना आवश्यक है। धार्मिक प्रतीक या प्रतिमाएँ, जैसा अर्बन ने लिखा है: "सीमित और अंतरदृष्टयात्मक संबंधों से उद्धृत की गयी है और इनसे ऐसे तथ्यों की अभिव्यक्ति होती है जो अधिक सार्वभौम और आदर्श संबंधों के लिये हैं, जिनकी अभिव्यक्ति

[१] फिस्टरः—साइकोएनिलिटिकल मेथड, पृष्ठ २७६

विस्तार अधिक होने से और आदर्शवादिता के कारण सीधे नहीं की जा सकती।"[१] दैवी प्रतिमाएँ ही नहीं धर्म के नियम भी प्रतीकात्मक होते हैं।

अन्य क्षेत्रों की तरह धर्म मे भी प्रयुक्त प्रतीक विकृत रूप मे होते हैं। धार्मिक प्रतीक भी उन्हीं नियमों से बद्ध हैं। धर्म प्रतीक अन्य प्रकार के प्रतीकों से इस आधार पर भिन्न होता है कि इसका संकेतिक अन्तर्दृष्टि और प्रत्यक्ष से परे होता है। वैज्ञानिक क्षेत्र मे प्रतीक और जिस तथ्य का यह प्रतीक है, प्रकृति मे दृष्टि-विषयक होते हैं। वैज्ञानिक प्रतीक द्वारा दृष्टि-विषयक संबंध का प्रतिनिधित्व होता है। सौन्दर्य प्रतीक मे दृष्टि-विषयक या वस्तु-संबंधी को अधिक महत्व निर्देशित होना है, किंतु धर्म प्रतीक असीम का प्रच्छन्न प्रतिनिधि होता है; प्रत्यक्ष विश्व के पार्थिव तथ्यों से तात्त्विक की अभिव्यक्ति होती है। कारलाइल के चिंतन के अनुसार प्रतीक का महत्व सदैव धार्मिक होता है: "वास्तविक प्रतीक मे, जिसे ऐसा संबोधन किया जाता है, सदैव स्पष्ट और प्रत्यक्ष रूप से असीम का रहस्योद्घघाटन होता है। इसमे निराकार का संयोजन साकार मे होता है जिससे वह दृष्टिगत हो सके और यह प्राप्य सा हो।" कॉलिंगवुड के अनुसार "जो हम कहें और जो उसका अर्थ है—प्रतीक या शब्द और उसके अर्थ मे जो भेद है ऐसा भेद है जिसके प्रकाश मे ही धर्म को समझना संभव है; किंतु यह एक ऐसा रहस्य है जो धर्म से भी छुपा हुआ है।"[२]

धर्म मे प्रतीकवाद के प्रसंग मे दो सिद्धांत हैं: प्राकृतिक और आदर्शवादी। प्रकृतिवाद के अनुसार धार्मिक प्रतीक गुण-विशेषता मे प्रत्यावर्त्तन की अवस्था है और इसकी व्याख्या उत्पत्ति-विषयक दी जा सकती है। इस सिद्धांत के अनुसार प्रतीक की व्याख्या उसके उत्पत्ति-स्थान की ओर जाने से मिलती है। यह एक प्रकार का अवकरण है—उच्च से निम्न की ओर, अधिक विकसित से कम विकसित की ओर दिशा मोड़ना है। इसी विधि का प्रयोग मनोविश्लेषण मे धार्मिक प्रतीकों की व्याख्या के लिये किया गया है। किंतु विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान के प्रवर्त्तक युंग के दृष्टिकोण से यह धार्मिक प्रतीकों की व्याख्या के लिये अनुपयुक्त है। प्रतीक की व्याख्या का अर्थ है उस संकेतिक को प्राप्त

---

[१] अर्बनः—लैन्ग्युएज एन्ड रियैलटी, पृष्ठ ५८०

[२] आर्थर सिमन्सः—द सिम्बौलिस्ट मूवमेंट इन लिटरेचर

करना जिसकी अभिव्यक्ति किसी अन्य रूप मे नहीं समझी गयी है, न तो प्रकाशित हुई है। अर्बन ने भी प्रकृतिवाद या फ्रायड धार्मिक प्रतीकवाद की व्याख्या नहीं अंगीकार की है, क्योंकि इसे स्वीकार करना सैद्धान्तिक रूप से प्रतीक की आस्था मेटना है। इसका अर्थ है धार्मिक प्रतीक केवल भावों की अभिव्यक्ति है। धार्मिक प्रतीकों के इस भावात्मक सिद्धांत को मानना, दार्शनिक दृष्टि से यह कहना है कि प्रतीक का अस्तित्व नहीं होता। आदर्शवादी सिद्धांत मे धार्मिक प्रतीकवाद सदैव सार्वभौम सत्य, सार्वभौम आस्था और सार्वभौम सौंदर्य के प्रसंग मे प्रयोग किया गया है। यह सिद्धांत वेदांत के आभास और सत्य के परस्पर संबंध की धारणा पर आधारित है।

स्लीरमेकर के विचार से धर्म मन की प्रतीकात्मक प्रक्रिया की उपज है। रावनहाफ ने लिखा है—

> "धार्मिक व्यक्ति ने अनानुभवगम्य शक्ति के बारे मे जिसे उसने अपने आदर की वस्तु बनाया है, जो विचार-वृत्त संकलन किया है उससे प्रिय और कोई वस्तु नहीं होती—यह उसकी काव्यात्मक कल्पना की उपज होती है।"[१]

सेबेटियर का कथन है कि "धार्मिक ज्ञान की विभिन्न विशेषताओं मे यह एक विशेषता है कि यह प्रतीकात्मक होता है।" यूकन का कथन है : "मानव जीवन का प्रभावोत्पादक परिणाम धर्म को तभी प्राप्त होता है जब इसके सत्य को भाव-कल्पना का प्रकाशयुक्त रंग मिलता है और प्रभावपूर्ण प्रतिमाओं का सृजन होता है।"[२]

धार्मिक प्रतीक मानसिक अनुभूतियों के प्रदर्शन के लिए प्रभावोत्पादक मोहक माध्यम हैं। ईसाई धर्म के 'क्रास' के प्रतीक से त्याग की अभिव्यक्ति होती है, जिसमे समस्त वृत्तियों और इच्छाओं का हनन हो गया है। बौद्धधर्म का प्रतीक कमल, जो तालाब मे शांत-स्थिर पड़ा है और जिसपर से जल स्वयं अपने आप फिसल जाता है और जो रात मे अपनी पंखुड़िया समेट लेता है, मन की उस अवस्था का द्योतक है जिसमे मानव के मानसिक जीवन के

---

[२] कॉलिंगवुड:—स्पेकुलम मेन्टिस, पृष्ठ १२५

[१] फिस्टर :—साइकोएनिलिटिकल मेथड, पृष्ठ २७५

फिस्टर :—साइकोएनिलिटिकल मेथड

तीनों स्तर परस्पर समन्वित होते है। ये सत्ताएँ इड, अहं और नैतिक मन की है। हिन्दू धर्म मे ईश्वर का हरएक अवतार महत्वशील धार्मिक प्रतीक है और यह मानवीय, राष्ट्रीय और सार्वजनिक आकस्मिक काल के लिए होता है।

धार्मिक प्रतीकों का सामान्यत: वर्गीकरण दैवी वस्तुओं और दैवी क्रियाओं मे सभव है। मूर्त्तियाँ एक वर्ग का प्रतीकवाद है। मनोविश्लेषण की दृष्टि से दैवी वस्तुएँ जिस रूप मे भी विभिन्न सम्प्रदायों मे पूजी जाँय, ये सब 'पिता के स्थानापन्न' है। युग के सिद्धात मे ये अज्ञात मन की 'दैव भाव-प्रतिमा' (आरचेटाइपल इमेज ऑफ दि डिटी) के ही अनुरूप निर्मित हुई है। यह अत्यधिक शक्तिशाली भाव-प्रतिमा है और इसकी अनुभूति मे देवत्व संबन्धी गुण होना है। दैवी क्रियाओं के प्रतीकों से, जैसे अग्नि उत्पन्न करना और खेत जोतना, धर्म की दृष्टि से प्रच्छन्न या आध्यात्मिक क्षेत्र संबंधी तथ्यों की अभिव्यक्ति होती है; मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इनके द्वारा अज्ञात मन की जननाकांक्षा का प्रकाशन होता है।

धर्म वस्तुत· मानव मन की अद्भुत मनोवृत्ति अथवा रुख मात्र है और इसका स्वरूप गतिशील अज्ञात मन के भाव या इच्छाओं के अनुसार निर्मित होता है। धर्म की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का सही अनुमान लगाने के लिये आदिकालीन इतिहास के पृष्ठ को उलटना होगा। वैयक्तिक मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रमुख सत्ता के अस्तित्व मे विश्वास करने का मूल उद्गम भय का भाव है, जो हीनत्व-ग्रथि के कारण उत्पन्न होता है। इस हीनत्व-भाव या तिरस्कार के भाव के कारण मनुष्य अपने को छोटा समझने लगा और उसकी आस्था अपने से अधिक शक्तिशाली सत्ता मे उत्पन्न हो गयी। मनोविश्लेषण मे धर्म की उत्पत्ति का मूल कारण पिता पर आश्रित होना माना गया है। ईश्वर पर आश्रित होना पिता पर बालक का आश्रित होने का विस्तार मात्र है। प्रारम्भ मे बालक पिता पर अवलंबित रहता है; आगे चलकर यह आकर्षण ईश्वर की ओर स्थानान्तरित हो जाता है। ईश्वर के प्रति भी वही तीव्रता और घनिष्ठता रहती है। फ्रायड ने अपने ग्रंथ 'टोटम ऐंड टैबू' मे यह स्पष्ट लिखा है कि ईश्वर मे विश्वास करना पिता और पुत्र के संबध की पुनरावृत्ति है। ईश्वर उन्नत पिता है और पिता के लिए इच्छुक होना धर्म की आवश्यकता का मूल है। सृष्टि के प्रारम्भ मे असभ्य अशिक्षित

मनुष्य अपने को निःसहाय और एकाकी अनुभव करता था और इसी से एक बलशाली सत्ता मे उसका विश्वास उत्पन्न हुआ। इसके अनुयायी औटोरैंक का कथन है कि धर्म की उत्पत्ति आश्रय-भाव से हुई है। इस प्रकार ईश्वर शारीरिक और मानसिक आवश्यकता है। ईश्वर का उद्गम किसी व्यक्ति के पराश्रित तथा बचपन की इच्छाओं के क्रम को बनाये रखने के लिए हुआ है।

विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान की दृष्टि से धर्म की उत्पत्ति का कारण न तो हीनत्व-ग्रंथि है और न बालक का पिता पर आश्रित होना ही है। वस्तुतः व्यक्ति के अज्ञात मन मे आध्यात्मिक अनुभूति होती रहती है और फलस्वरूप आध्यात्मिक सत्ता मे, जिससे विश्व शासित और निर्देशित रहता है, विश्वास जाग्रत होता है। धर्म अज्ञात मन की प्रक्रिया है। यह प्रवेगात्मक शक्ति है; यह सामाजिक प्रतिबंधों (टैबूओं) के कारण नहीं उत्पन्न होता। यह शिक्षा का प्रतिफल नहीं, बल्कि मानवीय स्वभाव होता है। परन्तु धर्म की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर विचार करने वाले कतिपय सिद्धान्त इससे सहमत नही है। ल्यूबा के विचार से माँ के स्तनपान की वृत्ति की तरह धर्म की कोई वृत्ति नहीं होती। धार्मिक चेतना सीखने की प्रक्रिया का परिणाम है जो तभी संभव है जब वृत्यात्मक आधारभूमि स्पष्ट उपस्थित हो।

इस प्रकार मानसिक आवश्यकताओं के कारण ईश्वर की विशिष्ट सत्ता मे मनुष्य की आस्था उत्पन्न हुई। सत्ता की पूजा करना धर्म का प्रमुख ध्येय होता है। जिस व्यक्ति का बौद्धिक स्तर निर्बल होता है, वह सूक्ष्म तथ्यों पर ध्यानावस्थित नहीं हो सकता और इसी से मूर्ति-पूजा प्रथा चली। मूर्तियाँ प्रतीक मात्र हैं; किंतु इनके पूजने की प्रथा सर्वत्र प्रचलित है। नाइट का कथन है: "मूर्तिपूजकों का यह विश्वास था कि दैवी सत्य प्रतीक मे छिपा रहता है और पहेली और कल्पित आख्यायिकों मे प्रच्छन्न रहता है, यह निर्बल मानवीय को समायोजित रखता है बनिस्पत कि यह ज्ञान और मूल दर्शन मे प्रदर्शित हो।"[1] सम्पूर्ण एशिया मे रहस्यवादियों की प्रतीकात्मक पूजा प्राचीन काल से प्रचलित है। प्राचीन समाज मे पशु-पूजा को चुनौती दी जाती थी, क्योंकि मनुष्य के व्यक्तित्व की पूजा करना जटिल होता है, इसमे अत्यधिक विभिन्नता होती है

[1] नाइट :—सिम्बॉलिकल लैन्ग्युएज ऑफ एनसेन्ट आर्ट एण्ड माइथॉलजी, पृष्ठ ९६

जिसकी परिभाषा देना या सामान्यीकरण करना कठिन होता है। पशु एकरूप होते हैं। महिष का बल, खरगोश की द्रुतगति, सर्प की चलायमानता, उलूक की गम्भीरता इत्यादि नियत और सार्वभौम रूप मे प्रदर्शित की गयी हैं। इसीसे महिष, अजया, सर्प और गो-पूजा क्रमिक तथा नियमित रूप से प्राचीन प्रथा मे मिलती हैं। यह अभ्यर्थना पशु-आकृतिवाद के नाम से प्रसिद्ध है। ग्रीस मे महिष-पूजा प्रचलित थी। मिश्र मे बकरी द्वारा जनन की सक्रिय शक्ति का प्रतिनिधित्व होता है। सर्प भी सन्तानोत्पत्ति शक्ति का प्रतीक माना गया है, क्योंकि सामान्यत: सर्प के रूप मे 'काम-पूजा' स्थान-स्थान पर प्राचीन काल से प्रचलित है। 'पृथ्वी-माँ' जनन की निश्चेष्ट शक्ति का प्रतिरूप है; गाय रचनात्मक शक्ति का प्रतीक है। भेड़िया, चीता, सिह इत्यादि शिकारी पशु हैं और इसीलिए स्वभावत: ध्वंस के प्रतीक होते हैं। इन सब प्राकृतिक प्रतीकों की पूजा मन्दिरों मे पर्याप्त रूप से प्रचलित है। इन प्रतिमाओं का कार्य प्रतीकात्मक शक्ति का दिग्दर्शन कराना है; इनसे प्राकृतिक रूप का प्रदर्शन नहीं किया गया है। इनके द्वारा मानव के जीवन की आधारभूमि का प्रतिनिधित्व होता है, जैसे मानव की सफलता, जनन-शक्ति, और मृत्यु इत्यादि। प्रारम्भिक और मूल इच्छाओं की पूर्त्ति होने के कारण पशुओं की पूजा की जाती है। भैंस भैंस है, सर्प सर्प है—इसका कोई महत्व नहीं होता। ये सब धर्म-प्रतीक वस्तुत: 'इरौस' और 'थैनेटस', अर्थात् जिजीविषा और मरणाकांक्षा के प्रतीक हैं। फ्रायड ने अपनी पिछली कृतियों मे इन प्रकृत आवश्यकताओं को मानव-जीवन का मुख्य प्रेरक माना है जो प्रगति के लिये बाध्य करते हैं। इस प्रकार पुनीत पशुओं द्वारा मानव-स्वभाव और उसकी भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं और वृत्तियों का मानवीकरण होता है।

पशु-पूजा का अवशेष अब भी दृष्टिगत होता है। परन्तु सामाजिक उन्नति के कारण अनेक स्थलों पर पशु-पूजा के स्थान पर मानवीय प्रतिमा की पूजा विकृत रूप मे होने लगी है। 'एन्थ्रौमार्फिज़म' का अर्थ है ईश्वर की कल्पना मानव रूप मे करना। ईश्वर को मनुष्य स्वरूप के अतिरिक्त व्यक्ति कौन सा रूप दे सकता है। मानवीय स्वरूप अन्य वस्तुओं से अधिक उपयुक्त प्रतीक होता है। हिगल का कथन है : "यह उत्कृष्ट प्रतीकवाद है इसकी अपेक्षा कि आदिम असभ्य जातियों ने पशुओं मे देवत्व प्रतिमा का अनुसंधान किया।"[१] पशु के स्थान पर मानव रूप मे पूजन का प्रारम्भ विशेष मनोवैज्ञानिक महत्व

---

१ अर्बन:—लैन्ग्युएज एण्ड रियैलटी, पृष्ठ ५८३

का है। इससे मानव की आत्मसम्मोही प्रवृति की पूर्ण-रूपेण प्रतिच्छाया मिलती है जो इसका द्योतक है कि व्यक्ति ने अपनी मानसिक शक्ति को वाह्य वस्तु से समेट कर अहं मे केन्द्रित कर लिया है और अहं को मुख्य संचालक माना है। अतएव हरएक वस्तु मे वह अपनी ही छाया देखता है। इसी से वह ईश्वर को अपने ही रूप मे देखता है। समस्या यह है कि मनुष्य अभी तक 'स्व' के वास्तविक स्वभाव को दार्शनिक भाषा मे और अपने व्यक्तित्व को मनोवैज्ञानिक भाषा मे नहीं समझ सका है।

ईश्वर-पूजन पशु के रूप मे संपादित हो या मानव के रूप मे, यह निर्विवाद है कि अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक होती है। धर्मशास्त्र मे दृष्टिगत विश्व से लिया हुआ स्वरूप तात्विक का प्रतीकात्मक प्रदर्शन माना गया है। यह वास्तविक प्रकृति-तत्व नहीं होता। इसी से मूर्त्ति-पूजन का विरोध भी मिलता है। मूर्ति-पूजन प्रथा के प्रचलित होने का मूल कारण यह है कि इससे प्रेरणा मिलती है, एक प्रकार की शक्ति और साहस का अनुभव होता है; यह आभास होता है कि ये प्रतिमाएँ ही ईश्वर हैं। वुडबर्न ने लिखा है: "मूर्त्ति का यथार्थ महत्व प्रतीकात्मक होता है और इसका प्रभाव विशेषतः ऐसे व्यक्तियों की चेतना पर पड़ता है जिन्होंने मानसिक प्रतिमाओं का प्रयोग करना नहीं सीखा है।"[१] साधारण व्यक्तियों के लिये बिना मूर्त्ति या दृश्य चित्र के प्रार्थना और पूजन की कल्पना संभव नहीं है। इसीसे ध्यानावस्थित होने के लिये मूर्तियों का रहना आवश्यक होता है। भारतीय मंदिरों मे शिव, विष्णु, बुद्ध, महावीर आदि मूर्तियाँ आदर्शों को स्थूल रूप देने के उद्देश्य से स्थापित की गई हैं। सूक्ष्म रूप मे बिना दृश्य वस्तु के, जो इनका प्रतिरूप है, कल्पना करने पर आदर्श अस्पष्ट रह जाता है। दृष्टांत के लिये जैन धर्म मे चौबीस तीर्थंकरों का पूजन मूर्ति रूप मे इस कारण प्रचलित नहीं है कि ये मूर्तियाँ ईश्वर के रूप हैं (जैनधर्म ने ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं स्वीकार किया है); वस्तुतः ये आदर्श के प्रतीक हैं जहाँ पहुँचना व्यक्ति का लक्ष्य होता है। स्थूल प्रतीक की यही महत्ता होती है।

धार्मिक प्रतीकवाद पर ज्ञानात्मक दृष्टि से विचार करके इसे सहज ही तात्त्विक दृष्टि से विचार हुये प्रतीकों से पृथक् किया जा सकता है।

---

१ वुडबर्नः—दि रेलिजस एटीट्यूड, पृष्ठ ११८

हॉफडिंग का कथन है : "मुख्य भेद यह है कि इसका चित्र अधिक स्थूल, समृद्ध और भावात्मक होता है। संक्षेप मे यह काव्य-प्रतीक की तरह है।"[1] इसकी विशेषता यह है कि इसमे ज्ञानात्मक दृष्टि से एक स्थूल रूप प्राप्त होता है; तात्त्विक मे मौलिक यथार्थता, दृश्य तथ्य और प्रकृति-तत्त्व और आकाश और काल की धारणाएँ पूर्णतः सूक्ष्म हैं। धर्मशास्त्र का ईश्वर दर्शन के तर्क-सिद्ध ईश्वर से भिन्न होता है। तत्वज्ञान के स्वयंभूत को पूजन, अर्चना, प्रार्थना की आवश्यकता नहीं पड़ती। वह मानव की इच्छाओं से नहीं प्रभावित होता; निर्गुण और निराकार का केवल चिन्तन सम्भव होता है। भगवान बुद्ध की प्रतिमा से मानव को प्रकाश मिलता है। ईसाई धर्म का मूल तथ्य काया को तपाना है और इसका मोहक प्रतीक 'क्रॉस' मे मिलता है। धर्म का अस्तित्व श्रद्धा मे है; दर्शन तर्क का विषय होता है। मनोविज्ञान के लिये धर्म अनुभूति का विषय है। इसमे सत्य के अस्तित्व के संबंध मे प्रश्न नहीं उठता। ईश्वर का अस्तित्व एक मनोवैज्ञानिक सत्य है; यह मानसिक आवश्यकता है जिसके आश्रय मे कोई व्यक्ति अपने को निराश्रय होने से बचा सकता है। मनोविज्ञान का संबंध धार्मिक अनुभूति के मानवीय पक्ष से होता है। यह इसमे मान्य नही है कि धर्मसूत्र अनोखा और नित्य सत्य है। धर्म को अज्ञात मन की प्रक्रिया समझना आधुनिक पद्धति है। यह एक प्रवेगात्मक प्रक्रिया है जिसके वारे में चेतना द्वारा कोई व्याख्या संभव नहीं है।

मनोविश्लेषण मे ईश्वर-पूजन के प्रतीकों को अज्ञात मन के भाव-कल्पनाओं का वाह्य रूप या जो वस्तुनिष्ठ है, माना गया है। अर्थात्, मानव के अज्ञात मन की कामवृत्ति संबंधी इच्छाओं की यह परिवर्त्तित रूप मे पूर्त्ति है। संभव है कि मूर्ति-पूजन द्वारा भक्त की दमित इच्छाओं की अभिव्यक्ति प्रतीक रूप मे होती हो और यह प्रकृत इच्छाओं और उनकी पूर्त्ति की संभावनाओं मे समझौता लाने का प्रयास हो। अपने को अर्पण करने के हेतु व्यक्ति को जब वाह्य वस्तुएँ प्राप्त हो जाती है, उसे अद्भुत शांति का अनुभव होता है। कामशक्ति को लौकिक वस्तुओं से समेटने पर और उसे भाव-कल्पनाओं से उत्पन्न विश्व के विभिन्न पदार्थों मात्र पर केन्द्रित करने पर व्यक्ति अपने भावों को स्वतंत्रता पूर्वक अभिव्यक्त कर पाता है। वस्तुतः मनुष्य अपनी इच्छाओं का

---

[1] अर्बन:—लैन्ग्युएज एण्ड रियैलटी, पृष्ठ ५८१

प्रक्षेपण ईश्वर मे करता है—अधिकांशतः उन इच्छाओं का जिन्हें वह जीवन मे संतुष्ट करना चाहता है और सीमित, संकुचित और प्रतिबंधित जीवन होने के कारण नहीं कर सका है। इसलिये धर्म मनोविश्लेषण की दृष्टि से कामवृत्ति का विकृत रूप मात्र है।

इसके अतिरिक्त धर्म मे प्रारम्भिक अभिव्यक्ति की पद्धति की ओर स्पष्ट रूप से प्रत्यावर्तन होता है। ईश्वर की प्रतिमा मे मनुष्य केवल बाल्यकाल की परिस्थिति की ओर पुनःस्थापन पाता है। प्रारम्भिक अवस्था मे बालक अपने को ही सर्वशक्तिमान मानता है। वाद मे ईश्वर के सर्वशक्तिमान गुण मे आस्था उत्पन्न होने पर यह विचार विस्थापित हो जाता है। फ्रायड ने धर्म के प्रसंग मे भी काम-सिद्धांत का समर्थन किया है। किंतु धर्म काम-क्रिया का परिवर्तित और परिवर्धित रूप मात्र है इसका पर्याप्त प्रमाण होते हुए भी यह नैतिक दृष्टि से मान्य नहीं है और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसे सार्वभौम सिद्धान्त नहीं माना जा सकता। कुछ विशिष्ट धार्मिक पूजा या कर्मकाण्ड मे कामवृत्ति का प्रतीकात्मक प्रदर्शन भले ही हो, यह ध्रुवसत्य है कि धर्म वस्तुतः अज्ञात मन की स्वाभाविक क्रिया है। धार्मिक क्रिया एक हठ प्रवृत्ति है। यह आभ्यन्तर से उत्तेजना प्राप्त करना है। इसके अतिरिक्त यदि ईश्वर कामवृत्ति की पूर्ति मात्र होता तो तपस्या और त्याग का महत्व धर्म मे क्यों रखा गया ?

विश्लेष्णात्मक मनोविज्ञान की धर्म की व्याख्या फ्रायड और तात्त्विक दृष्टिकोण से पूर्णतः भिन्न है। युंग के दृष्टिकोण से दैवी वस्तुओं के प्रतीकों द्वारा प्रच्छन्न अस्तित्व का प्रतिनिधित्व नहीं होता। 'दैव भाव-प्रतिमा' जो सामूहिक अज्ञात मन मे है, यह उसका दिग्दर्शन मात्र है। यह जन्मजात अज्ञात मन की भाव-प्रतिमा बड़ी प्रभावशाली और प्रभावोत्पादक है और इसके अनुरूप ईश्वर को निश्चित रूप दिया जाता है। यह मानव जाति के सांस्कृतिक विकास के विभिन्न युगों मे पृथक्-पृथक् नामों से प्रसिद्ध थी। जैसे, टोटम पूजन, आत्मपूजन, बहुदेवपूजन और एकदेवपूजन पृथक्-पृथक् विधियाँ हैं। ईश्वर हमसे अलग नहीं है; वह आभ्यन्तर मे है, अज्ञात मन की छाया मे है और जो अज्ञात मन मे है उससे व्यक्ति विमुख नहीं हो सकता और न तो उसे बहिष्कृत ही कर सकता है। जब कभी इस भाव-प्रक्रिया का प्रक्षेपण

फ्रायड :—फ्युचर ऑफ एन एल्युजन

नष्ट कर दिया जाता है, अमूर्त प्रतिमा अपने उद्गम की ओर मुड़ती है और प्रक्षेपण के लिए नये अवसर की प्रतीक्षा की जाती है। जब तक इस प्रतिमा के प्रक्षेपण का अवसर नहीं मिलता, यह भाव-प्रतिमा मृत-तुल्य निर्जीव बन मन के निचले स्तर मे पड़ी रहती है। परन्तु प्रक्षेपण किसी क्षण भी संभव है। इसी से व्यक्ति की मनोवृत्ति मे काया-कल्प की संभावना सदैव रहती है। इस सिद्धांत मे नास्तिक का आस्तिक मे आकस्मिक परिवर्तन की समस्या की व्याख्या उपयुक्त दी गयी है। ईश्वर की सत्ता मे श्रद्धा न करना और फिर उपासक बन जाना, प्रकृति के नियम का उलंघन नही होता। युग का कथन है कि यदि ईश्वर की धारणा अवैज्ञानिक परिकल्पना है और रहस्यमयी है, तब भी यह रहस्यवादी धारणा है जो अज्ञात मन की प्रकृत प्रवृत्तियों से बाधित है। ईश्वर मानसिक शक्ति का प्रतिरूप है। ईश्वर की प्रतिमा अक्षय है, क्योंकि इसका स्थानान्तरण एक जाति से दूसरी जाति और एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति मे होता रहता है। इसके समर्थन मे युंग ने सूर्य के पौराणिक आख्यानों का उल्लेख किया है। इसी से फ्रायड का यह आक्षेप रहा कि युंग वस्तुतः मनोवैज्ञानिक नहीं रहस्यवादी हैं। उनका आक्षेप सारगर्भित है, क्योंकि युंग की ईश्वर की धारणा रहस्यमय है। भाव-प्रतिमा के स्वभाव के बारे मे युग ने सामान्यतः कोई विवरण नही दिया है। संभवतः यह भाव-प्रतिमा एक प्रकार की संवेगात्मक अनुभूति है, जो वंशानुगत और सार्वभौम होती है।

आक्षेप भले ही किया गया हो, विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान की ईश्वर-संबंधी धारणा फ्रायड की धारणा से अधिक विकसित है। इस दृष्टिकोण से धार्मिक क्रिया प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया नही है; मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का विस्तार है। युग ने ईश्वर की आस्था को बाल्यकाल की अनुभूति और उसका विस्तार नहीं बतलाया है, बल्कि इसका उद्गम ऐतिहासिक सामूहिक अज्ञात मन या जातीय अज्ञात मन मे माना है। उन्होंने अपने ग्रन्थ 'ऐनेलिटिकल साइकॉलजी' मे लिखा है : "सामूहिक अज्ञात मन विश्व के प्रत्येक मनुष्य और काल की सभी अनुभूतियों का अवशेष है। यह विश्व की प्रतिमा भी है जो असंख्य वर्षों से निर्माण मे प्रक्रियागत है। समय के साथ इस प्रतिमा की कुछ विशेषताएँ जो प्रभावोत्पादक और शासन करती हैं विशेष महत्व की हो गई है। वास्तविक संचालक देवतागण हैं। यह प्रतिनिधित्व मुख्य नियम और सिद्धांत-

---

सी०जी० युंग :—साइकॉलजी एण्ड रेलिजन

बद्ध है। साधारण नियमों के अनुरूप प्रतिमाओं का उद्भव होता है, जो धर्मनिरपेक्ष प्रक्रियाओं के कारण मस्तिष्क को प्राप्त है।"[1] ग्रेनस्टेड ने युंग पर आक्षेप किया : "परिकल्पित जातीय या सामूहिक अज्ञात मन ईश्वर की रचनात्मक यथार्थता के लिये, जिसकी श्रद्धा की जा सकती है, महत्वहीन स्थानापन्न है।"[2] इसलिये ग्रेनस्टेड के अनुसार युंग की ईश्वर की धारणा अव्यक्तिगत और विचारशून्य है।

ग्रेनस्टेड और अन्य प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिकों द्वारा आलोचना होने पर भी युंग की ईश्वर की धारणा विवेकपूर्ण है। युग के दृष्टिकोण से वह शक्ति जो धार्मिक क्रियाओं का स्तम्भ है आभ्यंतर से उठती है; इसका प्रेरक बाह्य वस्तु नहीं होता। मनुष्य से परे कोई दैवी सत्ता नहीं होती। दैवी सत्ताएँ मानसिक शक्ति संबंधी प्रतिमाएँ हैं। धर्म की शक्ति प्राचीन प्रारम्भिक प्रकार का विचार है जो अज्ञात मन मे निहित होता है। जीवन के लक्ष्य के संबंध मे फ्रायड और युंग का मत एक ही है। युंग ने धर्म के संबंध मे अधिक मान्य और विचारगम्य सिद्धांत प्रतिपादित किया है, क्योंकि युंग की 'लिबिडो' और 'अज्ञात मन' की धारणा सीमित नहीं है। ईश्वर अज्ञात मन की प्रतिमा का प्रक्षेपण है। ईश्वर को अज्ञात मन का प्रतीकात्मक प्रक्षेपण कहने का अर्थ यह नहीं होता कि यह कुछ नहीं है, क्योंकि प्रक्षेपण की कार्य-पद्धति भाव-कल्पना नहीं होती; यह एक वास्तविक मनोवैज्ञानिक कार्य-पद्धति है, जो हरएक व्यक्ति मे कार्यरत रहती है। समस्या यह उठती है कि प्रक्षेपण क्या है और दृश्य विश्व और पूजन मे आरोपण किस प्रकार किया जाता है! जिस वस्तु-तथ्य मे प्रक्षेपण होता है, उसकी फ्रायड ने एक निश्चित रूप-रेखा रखी है। किन्तु कामात्मक तथ्य के कारण उनकी आलोचना की गई है। युंग पर आक्षेप होने का कारण उनकी भाव-प्रतिमा का रहस्यमय स्वभाव है जो पूजन मे प्रक्षेपित होता है। यह कहना संभव नहीं है कि यह नकारात्मक रूप मे दमित इच्छाओं से निर्मित प्रतिमा है; सकारात्मक रूप से यह महत्वशाली जातिगत विशेषता है जो सार्वभौम है। किन्तु इस मूल्यवान वशागत प्रतिमा का विषय-तथ्य क्या होता है, इसका स्वभाव क्या है—यह समस्या अभी भी नहीं सुलझाई गई है।

---

[1] सी० जी० युंग :—एनिलिटिकल साइकॉलजी, पृष्ठ ४३२

[2] ग्रेनस्टेड :—साइकॉलजी एण्ड गॉड, पृष्ठ २३४

युंग ने इस पर विशेष बल दिया है कि जिन देवताओं की पूजा होती है, वे मानसिक शक्ति के प्रतीक हैं—"दैवी शक्ति भाव-प्रतिमा का प्रक्षेपण है जो व्यक्ति के धार्मिक भाव के अनुसार भावों से परिप्लावित होता है; इस कारण शक्ति का प्रतिनिधि ईश्वर होता है।"[१] यह शक्ति अज्ञात मन से बाह्य ओर कार्यरत रहती है और यह स्वभावतः अत्यधिक प्रकृत शक्तिमान और रचनात्मक रूप से प्रतिनिधित्व के लिए प्रयास करती है। ईश्वर के विभिन्न प्रतीक लिबिडो के विभिन्न रूपान्तरण हैं। इस कारण ईश्वर की वही विशेषताएँ होती है जो विशेषताएँ लिबिडो की होती है। ईश्वर से लिबिडो का प्रतिनिधित्व होता है। यह इस बात से स्पष्ट है कि ईश्वर का अभिन्न तथ्य शक्ति है; यह संस्थान नही है।

इसलिये ईश्वर की अनुभूति मनुष्य मे सबसे महत् मानसिक शक्ति है। इसका प्रभाव व्यक्तित्व पर अत्यधिक पड़ता है। जो व्यक्ति ईश्वर या उनके प्रतीकों सूर्य, अग्नि इत्यादि की आराधना करता है, वह शक्ति का उपासक है। सूर्य, अग्नि, ज्वाला और सर्प 'लिबिडो' के प्रतीक होते हैं। इनका पूजन विशेषतः आदिम निवासियों मे देवताओं के रूप मे प्रचलित रहा है। रहस्यवाद मे आन्तरिक ज्योति अग्नि और प्रकाश के रूप मे मानी गयी है। संस्कृति के आदि काल से ही सूर्य और अग्नि की पूजा प्रचलित है। सूर्य और अग्नि को ईश्वर का मानवीकरण माना जाता रहा, जिनकी प्रकृति रचना और ध्वंस दोनों प्रकार की है। प्राकृतिक घटकों की विभिन्नता, जिनकी पूजा विभिन्न देवताओं के रूप मे होती थी, विभिन्न इच्छाओं का विभिन्न रूप मे प्रदर्शन हैं। बाल्यकाल मे 'लिबिडो' पूर्णतः क्षुधा वृत्ति मे केन्द्रित रहता है; तत्पश्चात् काम-भाव मे, जिसकी अभिव्यक्ति जनन की इच्छा या विकास की शक्ति के रूप मे होती है। धर्म लिबिडो का अकाम-भाव की ओर प्रवाह है।

युग ने अपने ग्रंथ 'साइकॉलजी एण्ड रेलिजन' मे 'डॉगमा एण्ड नैचुरल सिम्बलस्' के परिच्छेद मे यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि किस प्रकार अज्ञात मन मे वास्तविक धार्मिक क्रियाएँ सतत चालित रहती हैं। जो स्वप्न धार्मिक महत्व के हैं और जिनके द्वारा 'दैव भाव-प्रतिमा' का प्रतिनिधित्व होता है, वे इसके ज्वलन्त प्रमाण है। अज्ञात मन की धार्मिक प्रक्रियाएँ स्वतंत्र

[१] सी० जी० युंग :—साइकॉलजी ऑफ दि अन्कॉन्शस, पृष्ठ ७१

विकास-संबन्धी क्रियाएँ हैं, जो चेतना पर बरबस हावी होती हैं और इसका प्रभाव स्वतः सभी क्रिया-व्यापारों पर पड़ने लगता है। वस्तुतः धर्म-संबन्धी विचार की उद्‌भूति अज्ञात मन से होती है और इसका मुख्य लक्ष्य अज्ञात मन की प्रकृत और अशिव-पाशविक वृत्ति से मनुष्य की रक्षा करना है। मनुष्य की आध्यात्मिक अनुभूति निश्चित रूप से अज्ञात मन की तस्वीर है। इसी कारण धार्मिक भावनाओं का प्रभुत्व अनिवार्य रहता है। इसी प्रकार रूढ़ि 'अनेक शताब्दियों की अनेक व्यक्तियों के मस्तिष्क की एक साथ निरंतर कार्य करने' का प्रतिफल है।[१] युंग का कथन है : "रूढ़ि-हठधर्म्मिता स्वप्न की तरह है जिससे वाह्य मन अथवा अज्ञात की स्वतः प्रेरित और स्वतंत्र क्रिया की अभिव्यक्ति होती है।"[२] रूढ़ि द्वारा मनुष्य के वास्तविक रूप का वैज्ञानिक सिद्धांत की अपेक्षा अधिक प्रदर्शन होता है। यह सचमुच 'अज्ञात मन की जीती-जागती सक्रिय कार्य-पद्धति है जो पश्चाताप, त्याग और मोक्ष के नाटक के रूप मे उपस्थित होती है।'[3]

वस्तुतः हरएक धार्मिक सम्प्रदाय की एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि होती है जिसका प्रमाण आत्मा का अविनाशी होना, आवागमन, बलिदान, प्रार्थना, और यह कि लौकिक प्रेम को अलौकिक नैसर्गिक प्रेम के लिये त्यजना इत्यादि है। इन धार्मिक सिद्धातों के अन्तःसंबंध होते हैं। लौकिक आह्लाद के स्थान पर अलौकिक आह्लाद की कामना करने का सिद्धांत 'वास्तविकता सिद्धांत' की 'सुख-वासना सिद्धात' पर प्रभुता का द्योतक है। वास्तविकता और सुख-वासना सिद्धांत मनोवैज्ञानिक सिद्धांत हैं और इनसे प्रमुखतः मानव जीवन संचालित और निर्देशित होता है। अहम् 'वास्तविकता सिद्धांत' से चालित रहता है और इसकी प्रभुता विशेषतः इड पर होती है जो 'सुख-वासना सिद्धांत' से संचलित होता है। तभी सामाजिक सामंजस्य और व्यक्तित्व का विकास संभव होता है। इसी प्रकार मुक्त आत्माओं मे विश्वास होना, जो एक धार्मिक सिद्धान्त है, वास्तविकता की सुख-वासना अथवा अहं की इड पर प्रभुता की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। फ्रायड ने लिखा है : "यह मानसिक छाप जो

---

[१] सी० जी० युंगः—साइकॉलजी एण्ड रेलिजन, पृष्ठ ५६

[२] सी० जी० युंगः—साइकॉलजी एण्ड रेलिजन, पृष्ठ ५६

[3] सी० जी० युंगः—साइकॉलजी एण्ड रेलिजन, पृष्ठ ५७

स्थानापन्न से बनी है इतनी प्रभावशाली है कि विशिष्ट धार्मिक पौराणिक कथानकों मे इसकी स्पष्ट झाँकी मिलती है। यह सिद्धांत कि लौकिक इच्छाओं के त्याग से अगले जन्म मे मनोवांछित फल की प्राप्ति होगी, यह केवल मानसिक विद्रोह का पौराणिक प्रक्षेपण मात्र है।"[१] मानव के मानसिक जीवन का निर्धारण करने के प्रसग मे फ्रायड की इन दो पृथक् शक्तिशाली माध्यमों की मान्यता मैकडुगल को स्वीकार नहीं है: "अन्य अन्वेषणों मे फ्रायड का यह विभेदीकरण सबसे अधिक अर्थहीन और तर्कहीन रहा, यद्यपि अभी तक वह इस ओर दृढ़ हैं।"[२]

बलिदान की प्रथा उन इच्छाओं की तुष्टि को त्यागने का प्रतीक है जिनका संतुलन अहं और नैतिक मन मे कभी संभव नहीं होता, अर्थात् जो मानव जाति की नैतिक धार्मिक और सामाजिक संस्कृति से विपरीत स्वभाव की है। बलिदान प्रकृत और असंस्कृत इच्छा का परित्याग करना है। इसके द्वारा मन के अपराध-भाव का दिग्दर्शन होता है और इस प्रकार त्याग की भी एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि होती है। आत्मा की अनश्वरता के समानान्तर तथ्य व्यक्ति के मानसिक जीवन मे मानव-विकासीय और जाति-विकासीय अज्ञात मन के तत्त्वों मे मिलता है। शरीर नश्वर है; सामूहिक अज्ञात मन अनश्वर है। इसका अस्तित्व शरीर की मृत्यु या क्षय होने पर भी बना रहता है। इस अनश्वर तत्त्व को दार्शनिकों ने आत्मा कहकर संबोधित किया है; मनोवैज्ञानिकों ने सामूहिक अज्ञात मन। अज्ञात मन के इस भाग के तथ्यों का स्थानान्तरण एक जाति से दूसरी जाति और एक जीवन से दूसरे जीवन मे होता रहता है। इसलिये इनमे भेद नहीं है। इसी प्रकार आवागमन के सिद्धांत का भी मनोवैज्ञानिक निरूपण संभव है।

परम सत्ता द्वारा, बाह्य जगत जिसका प्रतिरूप है, अज्ञात मन की प्रभुता तथा उसके कार्य-संचालन शक्ति का प्रदर्शन होता है। ज्ञात से अज्ञात का प्रदर्शन वैसा ही होता है जैसे दृश्य विषयक से तात्त्विक का। 'पाप की धारणा' भी प्रतीकात्मक है। इसके द्वारा अज्ञात अपराध-भाव की व्यंजना होती है जिसपर व्यक्तित्व के असाधारण विकृत विकास का दायित्व रहता है। धर्म के मूल मे अपराध-भाव तथा उससे निवृत्ति की चेतना रहती

---

[१] फ्रायड:—कलेक्टेड पेपर्स खंड ४, पृष्ठ १८

[२] मैकडुगल :—साइकोएनिलिसस एण्ड सोशल साइकॉलजी, पृष्ठ ५३

है। पौर्वात्य संस्कृति के बहुमान्य निर्वाण-सिद्धांत का साम्य 'मरणेच्छा' से है जो मानव के जीवन मे कामवृत्ति की तरह प्रभावशाली रहती है। इस वृत्ति का उल्लेख फ्रायड ने अपनी पिछली कृत्तियों मे किया है। ईश्वर पिता का प्रतिरूप है, इसकी पुष्टि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी की जा सकती है। पिता का सर्वज्ञानी, सर्वव्यापी तथा नीति का प्रतिमूर्ति होना पुत्र के संबंध मे अनंगल नहीं होता। अतएव धार्मिक रूढ़ि से वस्तुतः अज्ञात विषय-वस्तुओं की कार्य-पद्धतियों और प्रक्रियाओं की अभिव्यक्ति होती है। विशेषतः प्राच्य धर्मो से अज्ञात मन के मनोवैज्ञानिक इतिहास का प्रदर्शन होता है। युंग ने पौर्वात्य विचार-धारा की विशेष-रूप से प्रशंसा की है, क्योंकि यह ऐसे तथ्यों का प्रदर्शन है जो अभी तक मनोवैज्ञानिकों के सम्मुख समस्या मात्र थे।

धर्म के प्रसंग मे फ्रायड के 'मातृ-पितृ काम-ग्रंथि' और 'द्विभाव' के सिद्धान्त विशेष महत्व के है। ये दो स्तम्भ हैं जिनपर धर्म की व्याख्या अवलम्बित हैं। मनोविश्लेषण के अनुसार नीति, धर्म और सामाजिक भावों की उत्पत्ति द्वेष भाव और मातृ-पितृ काम-ग्रन्थि के निवारण की यथार्थ प्रक्रिया से हुई है। प्रश्न है: धर्म और नीति की अनुभूति मातृ-पितृ काम-ग्रंथि की प्रारम्भिक अवस्था मे इड, अहम् और नैतिक मन मे से किसको हुई। चिन्तन से यह सिद्ध होता है कि इड सुख-वासना सिद्धान्त से संचलित रहता है और यह सदैव इच्छाओं की तुष्टि की ही योजनाएँ गढ़ता रहता है। इसीलिए इसके आकर्षण की वस्तु आध्यात्मिक सत्ताएँ नहीं बन सकतीं। यह अहम् के लिए भी संभव नहीं, क्योंकि वास्तविकता के सम्पर्क मे आने पर अहं को ऐसी अनुभूति कभी नहीं होती। वस्तुतः यह नैतिक मन की अनुभूति है जो आंतरिक नियम का प्रतिनिधि है और अपने को सदैव नियंत्रण मे बाँधे रहता है। यह नैतिक मन की विशेषता है कि इसे धार्मिक और नीति संबंधी स्थायीभावों की अनुभूतियाँ होती हैं। धर्म और नीति संबंधी अनुभूतियाँ बाह्य प्रभाव के कारण नहीं होतीं; यह आंतरिक संघर्ष का प्रतिफल है—मातृ-पितृ कामेच्छा, जो पैतृक और जातीय संपत्ति है, और उससे रक्षा करने की इच्छा का पारस्परिक द्वंद्व है: "नैतिक मन की उत्पत्ति, जैसा हमे विदित है, पिता को आदर्श मानकर उनके साथ तादात्म्य स्थापित करने से होती है। इस प्रकार का प्रत्येक तादात्म्य कामहीन अथवा परिमार्जन स्वभाव का रहता है।"[1]

[1] फ्रायड :—दि इगो एन्ड दि इड, पृष्ठ ८०

परिमार्जन के पश्चात् काम-तत्व मनुष्य की सारी शक्ति को अपने मे आबद्ध नहीं कर पाती। यह शक्ति विद्रोह और ध्वंसात्मक इच्छाओं के रूप मे प्रकट होती है। 'टोटम एण्ड टैबू' और 'ग्रुप साइकॉलजी' मे फ्रायड ने प्रतिपादित किया है कि धर्म की नींव अज्ञात मन के अपराध-भाव मे है जो अनाचार इच्छा से प्रेरित है। केम्फ, ब्रिल और फ्लुगल ने भी मातृ-पितृ काम-ग्रंथि को बहुत महत्व दिया है। केम्फ ने लिखा है: "अधिकतर युवक अनाचार इच्छा मे फँसे रहते है। पागलखाने और कैदखाने मे ये बहुत बड़ी संख्या मे मिलते है।"[१] किंतु यह आश्चर्य है कि मातृ-पितृ काम-ग्रंथि स्थूल कामेच्छा रूप मे किस प्रकार मानव के व्यक्तित्व का प्रकृत अज्ञात सारभूत अंग बनी रहती है। इडिपस ने अपने पिता की हत्या की और माँ से विवाह किया, यह इस धारणा के लिये पर्याप्त प्रमाण नहीं है। वह तो उसकी सौतेली माँ थी। एडलर ने इस सिद्धांत की विशेष अवज्ञा की है। माता-पिता तथा बच्चों के पारस्परिक संबंध के तनाव के बारे मे उन्होंने लिखा है: "फ्रायड ने इस प्रश्न का समाधान अनुचित रूप से किया है कि यह माँ के प्रति स्थायी आकर्षण का परिणाम है।"[२] मैकडुगल के दृष्टिकोण से मातृ-पितृ काम-ग्रंथि केवल उन्हीं व्यक्तियों मे पड़ जाती है जिनमे मानसिक दुर्बलता की आशंका रहती है; यह नितांत अर्थहीन है कि यह अनुभूति साधारण व्यक्तियों या बच्चों की होती है। युंग के लिये मातृ-पितृ काम-ग्रंथि का मूल्य प्रतीकात्मक होता है—यह एक रहस्यवादी के आध्यात्मिक पुनर्जीवन की आकांक्षा है। माँ का अर्थ है अप्राप्य और जिसे मनुष्य को सभ्यता-संस्कृति के लिये बरबस त्यजना पड़ता है; पिता जिसकी हत्या इडिपस पौराणिक कथानक मे हुई है, आत्मनिष्ठ पिता है जिससे स्वतंत्र जीवन यापन करने के लिये मनुष्य को अपने को मुक्त करना आवश्यक है।

विरोध होते हुये भी मनोविश्लेषकों ने मातृ-पितृ काम-ग्रंथि के सिद्धांत और इसकी जीवन मे महत्ता के बारे मे विशेष बल दिया है। अर्नेस्ट जोन्स ने लिखा है कि "माँ पर अपना एकमात्र हक जमाना और अपने को उनका स्नेह पात्र समझना विश्व के प्राचीन काल से पिता और पुत्र, वृद्ध और युवक के

---

[१] केम्फ :—साइकोपैथॉलजी

[२] मैकडुगल :—साइकोएनिलिसस एण्ड सोशल साइकॉलजी, पृष्ठ १७२

संघर्ष की जड़ रही। यह अनेक लेखकों और कवियों का मोहक विषय था और धर्म और पौराणिक कथानक की प्रमुख प्रेरणा रही।"[१] फ्रायड के समर्थकों का यह विश्वास था कि बाल्यावस्था की ओर प्रत्यावर्तन होने पर भी जिस व्यक्ति की प्रकृत वृत्ति परिमार्जित रहती है, वह मातृ-पितृ काम-ग्रंथि की प्रतिक्रिया मे माता-पिता को लिप्त न होकर अपने को ईश्वर को अर्पण करता है।

मनोविश्लेषण की स्थापना है कि ईश्वर के प्रति उपासक की मनोवृत्ति द्विभावात्मक होती है। उसमे प्रेम और घृणा का भाव साथ ही साथ उठता है। यह विवरण धर्म के ऐतिहासिक चित्रण और प्राचीन सामाजिक परम्पराओं के आधार पर दिया जा सकता है। धार्मिक पूजन की सबसे प्राचीन प्रथा टोटम की थी जिससे संरक्षणशील देवी-देवता की प्रतिच्छाया मानव को आभासित होती थी। जिस वृक्ष या पशु को मानव-जाति ने पूजन के लिये पवित्र समझा, वही 'टोटम' माना गया। टोटम पिता के स्थानापन्न का पहला रूप था; ईश्वर बाद का विषय है जब कि उनका पूजन मानव रूप मे प्रारंभ हुआ। यद्यपि अब टोटम-प्रथा प्रचलित नहीं है तथापि इसका ईश्वर से निकटवर्ती संबंध है। टोटम-पशु या पादप के पूजन का स्थान देवी-देवताओं की पवित्र मूर्तियों ने ले लिया है। अर्पण-पूजन से प्रेम और सम्मान का भाव प्रदर्शित होता है; सामयिक बलिदान द्वारा उस विषय-वस्तु के प्रति अज्ञात घृणा का भाव भी प्रकट होता है। दक्षिण भारत के द्रविणों ने प्रयोजन सिद्धि न मिलने पर मर्त्तियों का परित्याग किया। अफ्रीका के निवासी भी अपने देवताओं का निरादर फल न मिलने पर करते हैं। अनुभवी मानवशास्त्री गोल्डनवीसर ने इसका खंडन किया है: पहला, टोटम का बलि देना एक ऐसी प्रथा है जिसके बारे मे जातिविद्यावादियों को ज्ञान नहीं था; दूसरे, पिता की हत्या करना और उसका मांस भक्षण करने की प्रथा असभ्य आदिम जातियाँ भी घृणा की दृष्टि से देखती थीं। मनुष्य का मांस-भक्षण अकाल के समय होता है और यह भी अप्रचलित-सा है।

यह प्राचीनतम प्रथा 'आत्मपूजन' से विस्थापित हुई। प्राकृतिक वस्तुएँ जैसे सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी, पर्वत, नदी और प्रकृति की अन्य विभूतियाँ पूजी जातीं, क्योंकि इनमे आत्मा है ऐसा विश्वास प्रचलित था। प्रश्न है: आदिम

[१] ई० जोन्स:—एसेज़ ऑन अपलाइड साइकोएनिलिसस, पृष्ठ ४६

निवासियों का आत्माओं के अस्तित्व मे विश्वास क्यों रहा ? उनमे विपत्ति की भीति और लोकैषणा का भाव जम गया था। इसी से वे पूजा-पाठ करते थे।

आत्मवाद के पश्चात् अनन्त देवी-देवताओं के पूजन की प्रथा चली। इन्द्र वरुण, अग्नि आदि की पूजा यत्र-तत्र होने लगी। विभिन्न क्षेत्रों मे मानव का विकास होने पर धर्म मे भी आन्दोलन हुआ और अनेक देवी-देवताओं की पूजा का स्थान एकेश्वरोपासना ने ले लिया। जिस प्रकार बहु-विवाह के स्थान पर एक विवाह की प्रथा चली, उसी प्रकार आधुनिक समाज के घटना-प्रवाह मे प्रमुख शक्ति का रूप एक ईश्वर की सत्ता ने ले लिया। वस्तुतः टोटम, आत्म, देवी-देवता और ईश्वर सभी इच्छा-पूरक और पिता के स्थानापन्न होते है। भेद केवल रूप का है जिससे जाति के विकास की विभिन्न अवस्थाओं की ओर संकेत होता है। यह व्याख्या मनोविश्लेषण मे मिलती है। यदि ईश्वर पिता का स्थानापन्न मात्र है तब प्रश्न उठता है : हिन्दू धर्म की दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी, ईसाई धर्म की 'वर्जिन' आदि देवियो की पूजा किस प्रकार प्रचलित हुई। यह समस्या सुलझ नहीं पाती। इन रूपों मे पूजा मूल मे मातृशक्ति के प्रति आदर भाव और पुनर्जन्म की इच्छा का ही द्योतक माना जा सकता है।

मनोविश्लेषण मे धर्म को कोई महत्ता नही दी गई है। इसमे धर्म को 'भ्रम' का एकमात्र परिणाम माना गया है। यह विवरण 'फ्यूचर ऑफ एल्यूज़न' नामक ग्रन्थ मे विस्तार से मिलता है। धर्म एक विशिष्ट अर्थ मे 'भ्रम' होता है। धर्म इस अर्थ मे 'भ्रम' है कि इसमे इच्छा की पूर्त्ति विस्तार से हुई है। फ्रायड ने धर्म के प्रसंग मे भ्रम की धारणा को परिभाषित किया है : "किसी प्रकार का विश्वास भ्रम है जब कि प्रेरणा मे मुख्य तथ्य इच्छा की पूर्ति करना होता है और इसका सबध वास्तविकता से विमुखता का रहता है जिस प्रकार भ्रम मे स्वभावतः घटता है।"[१] अतएव धार्मिक विचार भ्रम मात्र है। यह तर्क-विचार का परिणाम नहीं होता और आध्यात्मिक अनुभूति का भी यह विषय नही है। यह प्राचीन सबल इच्छाओं की पूर्त्ति मात्र है। जो व्यक्ति अज्ञात इच्छाओं का महत्व नही समझता, वह

फ्रायड :—टोटम एण्ड टैबू

[१] फ्रायड :—दि फ्युचर ऑफ एन इल्यूज़न, पृष्ठ ५५

हरएक वस्तु को ईश्वर की ही शक्ति समझता है, यद्यपि ईश्वर अज्ञात मन की इच्छाओं का प्रक्षेपण मात्र है और यह तत्त्ववाद की अनुभवगामी वास्तविकता नहीं है। फ्रायड के मत से धर्म कल्पना की उपज है और कल्पना सदैव 'सुख-वासना सिद्धान्त' से संचलित रहती है। उसका वास्तविकता से कोई संबंध नहीं रहता। इस प्रकार फ्रायड ने धर्म को आध्यात्मिक अर्थ मे महत्ता नहीं प्रदान की है।

प्रश्न उठता है कि धर्म को किस प्रकार भ्रम का परिणाम और अन्ध-विश्वास को विकृत काम-भाव का परिणाम माना जाय। व्यक्ति मे कामवृत्ति के अतिरिक्त अन्य प्रेरणाएँ भी होती हैं और इनमे प्रमुख अज्ञात आध्यात्मिक प्रेरणा है जिससे मानसिक अवस्था मे समन्वय स्थापित रहता है। यदि मनुष्य मे कोई आध्यात्मिक प्रवृत्ति उसके आचरण को निर्धारित और शासित करने के लिए न होती, वह स्वार्थ भाव से अप्रतिबंधित रूप से प्रेरित रहता और फलस्वरूप उसके मानसिक क्षेत्र मे अनेकानेक उद्येश्यहीन क्रियाएँ मात्र होतीं। इस कारण युंग का यह चिन्तन सत्य है कि अज्ञात मन धार्मिक क्रियाओं का स्रोत है और धार्मिक प्रतीकों का आध्यात्मिक महत्व होता है। स्टेकल की दृष्टि से भी धार्मिक प्रतीकों की महत्ता आध्यात्मिक मे है। वस्तुतः धर्म के स्थायीभाव का मूल उद्गम 'असीम की संवेदना' है। यह असीमित, स्वच्छन्द और समुद्र की तरह अथाह का भाव है। फ्रायड को यह 'अथाह असीम भाव' मान्य नहीं था।

धर्म की सामान्य विवेचना विस्तृत रूप मे अभी तक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से की गई है। अब कुछ धर्म-प्रतीकों की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि के बारे मे अन्वेषण करना है। धर्म मे 'चक्र' का प्रतीक प्रचलित है। फारस मे पूजन का स्थान चक्राकार होता था; यह पत्थरों से घिरा रहता था और उसके मध्य मे पवित्र अग्नि जला करती। फारस के निवासियों की पूजन-वस्तु का यह एकमात्र प्रतीक है, क्योंकि वे मंदिरों और मूर्तियों की अवहेलना करते हैं। यह प्रथा अब भी प्रचलित है। 'चतुष्कोण' पूजने का एक अन्य प्राचीन प्रतीक है। पूर्वीय देशों मे धार्मिक रीतियाँ सम्पन्न करने के लिये चौकोर वेदी बनायी जाती है। विवाह मे प्रथम बार ससुराल आने पर दूलहे को चौकी पर बैठाकर विवाह की रीति-रस्म अदा की जाती है। हर परिवार मे देवपित्र का अलग स्थान रहता है और वहाँ दीवार पर चौकोर आकृतियाँ

अंकित रहती है। देवी-देवताओ और परिवार के पूर्वजो का इस पर आवाहन किया जाता है जिससे कि जब तक विवाह का कार्य संपादित होता रहे, उनका आशीर्वाद वर-वधू को प्राप्त रहे।

ईसाई धर्म का प्रतीक 'त्रिदेव' है—पिता, पुत्र और पवित्रात्मा। इसकी विशेषता है एक दूसरे मे समावेश करना: पिता पुत्र मे समाविष्ट रहता है; पुत्र पिता मे; और पवित्रात्मा का समावेश दोनों मे होता है। किंतु ईसाई धर्म के 'त्रिदेव' की यह धारणा अपूर्ण है, क्योकि ईश्वर की चार अवस्थाएँ होती है; तीन नही होतीं। चौथी अवस्था व्यक्तित्व की छाया-भाव (शैडो) है। 'छाया' से पैशाचिक का प्रतिनिधित्व होता है। प्राचीन दर्शन मे भी इस चौथी अवस्था का अपना स्थान है। तीन तत्त्वो जल, वायु और अग्नि—के अतिरिक्त, जिनका प्रतिनिधित्व 'त्रिदेव' द्वारा होता है, चौथा तत्त्व भी होता है और यह जननी का प्रतीक पृथ्वी है। इस प्रकार स्थूल त्रिदेव मे स्त्री तथ्य भी अगीकार हुआ और 'चतुष्देव' प्रतीक का निर्माण हुआ। यह आध्यात्मिक क्षेत्र मे विकास का परिणाम है। अतएव धर्म-भाव की अभिव्यक्ति 'त्रिदेव' की अपेक्षा 'चतुष्देव' प्रतीक मे अधिक सक्षिप्त और सर्वांग रूप मे होती है: "मै पूर्ण कैसे हो सकता हूँ, यदि छाया न डाल सका।" 'छाया' व्यक्तित्व का आवश्यक अंग है। इसी से ईश्वर का वास्तविक प्रतिनिधित्व करने के लिये रूढ़िवादी ईसाई धर्म के 'त्रिदेव' की धारणा मे अज्ञात मन द्वारा एक चौथा तथ्य जोड़ा गया। चार से प्रारम्भिक मानसिक क्रियाओं—सवेदना, विचार, भाव और अर्न्तदृष्टि—की भी अभिव्यक्ति होती है। चौथे तथ्य की ओर इंगित कर युंग ने प्रतीक क्षेत्र मे वस्तुतः एक नया मनोवैज्ञानिक अन्वेषण किया और यह स्थूल निष्कर्ष निकाला कि धर्म के अनेक प्रतीको का उद्गम अज्ञात मन के गर्भ-स्थल मे है।

बौद्ध धर्म के अनुयायियो ने 'चतुष्देव' प्रतीक का प्रयोग प्रचुरता से किया है। उनके मण्डलों अथवा चक्राकारों का उद्गम तिब्बत मे हुआ है। उनमे एक गोलाकार पद्म होता है, जिसमे चौकोण भवन अंकित रहता है। भवन के चार द्वारों द्वारा धर्म की चार मुख्य विशेषताओं का बोध होता है। भवन के मध्य मे बुद्ध की मूर्त्ति होती है। बौद्ध धर्म के चार 'आर्यसत्य'–सर्व क्षणिकम् क्षणिकम्,

---

फ्रायड:—सिविलिजेशन एण्ड इटस् डिस्कन्टेन्टस, पृष्ठ ८

सर्वम् दुखं दुखम्, सर्वं अनात्म्यम्, शांत निर्वाणम्—विश्व प्रसिद्ध हैं। ये मण्डलाकार इस बात के प्रमाण हैं कि चार सभी रचनाओं का आधार है और यह ग्रीक दार्शनिक पाइथोगोरा के 'ट्रेट्रकट्स' के ही समान है। ये मण्डल परम्परागत-रूप से मान्य है और प्राय: कर्मकाण्डवादी प्रकार के उत्सवों मे मिलते हैं। यह तांत्रिक योग मे ध्यानावस्थित होने का एक यंत्र माना जाता है। यद्यपि इन मण्डलों की उत्पत्ति पौर्वात्य धर्मों मे हुई तथापि इनकी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि होती है। जैकोबी ने अनेक दृष्टांतों द्वारा इसकी पुष्टि की है। युंग ने इन धर्म क्षेत्र के प्रतीकों का गूढ़ अध्ययन करके यह स्थिर किया है कि ये अज्ञात मन के चतुष्देव प्रतीक पर आधारित हैं। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि मानव स्वभाव का वैज्ञानिक अध्ययन वस्तुत: इन प्रतीकों के अध्ययन पर निर्भर होता है। मंडल प्रतीक स्वप्न मे भी मिलते है और युंग ने इनका विवरण धार्मिक अर्थ मे दिया है। युंग के अनुसार ये सब धार्मिक मनोवृत्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं और इस बात के प्रमाण है कि स्वप्नद्रष्टा का आंतरिक व्यक्तित्व संवेगात्मक और विचारात्मक असबंधता और व्यतिक्रम से मुक्त है। "एक लड़की ने स्वप्नावस्था मे एक मण्डल बनाया और इसके मध्य मे एक जीवन-शक्ति का स्रोत अंकित किया।" यह 'चार' के सिद्धांत पर ही बना था। बाल्मीकि और तुलसी के रामायण मे भी इसकी महत्ता का दिग्दर्शन होता है। जब राम सीता और लक्ष्मण के साथ वन मे वास करते थे, एक बार उन्हें एक स्वर्ण मृग दिखाई पड़ा। सीता हिरण की ओर आर्कषित हुई, मचल पड़ी और राम से हिरण लाने की हठ कर बैठी। राम चले गये। सहसा सीता ने 'हाँ लक्ष्मण'! की पुकार सुनी और लक्ष्मण को राम को बचाने के लिये जाने को बाध्य किया। लक्ष्मण ने सीता के चारो ओर रेखा खीच दी और जब तक वे वापस न आ जायँ सीता को उसके बाहर जाने के लिये मना कर दिया। जब राम और लक्ष्मण हिरण के पीछे बहुत दूर निकल गये, रावण भिक्षुक वेश मे आया और सीता से उसने भिक्षा मांगी। रावण ने घेरे के भीतर से भिक्षा लेना अस्वीकार कर दिया। बाध्य होकर सीता बाहर आयी। रावण सीता को उठा ले जाना चाहता था और वह यह सब उस पवित्र घेरे के अंदर करने मे असमर्थ था। इसी से उसने सीता को गोलाकार के बाहर आकर भिक्षा देने का प्रस्ताव रखा। घेरा रक्षा हेतु था और

सी० जी० युंग:—साइकॉलजी ऑफ रेलिजन

उसके अंदर किसी प्रकार का भय नहीं था। इस प्रकार की अनेक किंवदंतियाँ मंडल प्रतीक की धार्मिक महत्ता के बारे मे प्रचलित हैं।

मंडल प्रतीकों जैसे गेंड़ली बाँधे सर्प, हाथ मे सोने का सिक्का लिये एक व्यक्ति, प्रदर्शनी का घेरा, ग्लोब इत्यादि के बारे मे युंग ने अपने निबंध 'ड्रीम सिम्बलस् ऑफ दि प्रोसेस ऑफ इनडिविजुएशन' मे उल्लेख किया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इनके द्वारा मानव के व्यक्तित्व की समष्टि की अभिव्यक्ति होती है। व्यक्तित्व की धारणा (कनसेप्ट) अहम् से भिन्न होती है और इनमे एकत्व स्थापित करना असम्भव-सा है। आत्म की अभिव्यक्ति केन्द्र और घेरे द्वारा की गयी है। मण्डल प्रतीक मे समन्वय स्थापित करने की शक्ति होती है। यह संश्लेष्णात्मक प्रतीक है जिसके द्वारा व्यक्तित्व के विभिन्न अंगों के समन्वय की व्यंजना होती है। यह मानवीय व्यक्तित्व का नाट्रकीयकरण है। आधुनिक मण्डल अद्भुत मानसिक अवस्था की एक अनैच्छिक स्वीकृति है। मण्डल के मध्य मे कोई देवी-देवता नहीं रहता; वस्तुतः इसके मध्य मे मनुष्य का स्थान है। देवताओं की पूर्णता का स्थानापन्न पूर्णतः समन्वित व्यक्तित्व से सहज ही हो सकता है और इसका दिग्दर्शन प्रतीकात्मक रूप मे ही संभव है।

युग ने अपने ग्रंथ 'दि सिक्रेट ऑफ दि गोल्डेन फ्लावर' मे योरप के प्रचलित मण्डलों का विवरण दिया है और इस प्रकार दस प्लेटों की व्याख्या की है जिनसे पौर्वात्य धर्म और दर्शन और प्राच्य मे अज्ञात मन के संबंध मे हुए अन्वेषणों के बारे मे स्पप्ट वृत्तांत मिलता है। इन मण्डलों द्वारा अद्भुत समन्वय की प्रक्रिया का प्रतिनिधित्व होता है। पहले प्लेट मे एक सुन्दर पुष्प है; दूसरे मे मत्स्य जो सुनहले पुष्प के केन्द्र से निकला है और उत्पत्ति का प्रतीक होता है; पाँचवी प्लेट मे प्रकाश का प्रदर्शन अंधेरे से पृथक् किया गया है, जिससे यह प्रदर्शित होता है कि दैवी आत्मा भौतिक आत्मा से भिन्न होती है; सातवीं प्लेट मे चक्र रूप घूमता ट्रेट्रकटियस है; और दसवें मे एक मण्डल सुरक्षित शहर के रूप मे दीवार और मोट से घिरा हुआ है।

इस प्रकार मण्डल के प्रतीक के आधार पर, विशेषकर पूर्वीय और प्राचीन सामाजिक परम्पराओं और मानसिक दौर्बल्य के रोगियों के स्वप्नों और चित्रों द्वारा, युंग ने यह प्रमाणित किया है कि मण्डल से किसी विशिष्ट मनोवृत्ति का

सी०जी० युंग :—इन्टेग्रेशन ऑफ पर्सनैलिटी

प्रदर्शन होता है, जिसका धार्मिक महत्व स्वीकार न करना असंभव-सा है। इससे आभ्यन्तर के ईश्वर, 'दैव भाव-प्रतिमा' का प्रतिनिधित्व होता है, जैसे स्वप्न की अपरिचित स्त्री 'ऐनिमा' की व्यंजना है, जो पुरुष मे स्त्रीत्व का गुण है। धार्मिक प्रतीकों द्वारा संतानोत्पत्ति शक्ति के प्रतिनिधित्व से अधिक जीवन के संतुलनात्मक सिद्धांत का प्रतिनिधित्व होता है। मनुष्य मे जोवन और जनन मात्र की इच्छा नहीं होती; उसमे उत्कृष्ट जीवन की भी प्यास होती है। मानसिक जीवन के संतुलन-समन्वय की अभिव्यक्ति ईश्वर की मूर्तियों मे बड़े मोहक रूप मे हुयी है। उत्कृष्ट, उच्च और व्यवस्थित जीवन यापन करने की मानसिक इच्छा वस्तुतः जीवन का एक प्रमुख सिद्धांत है और यह मनुष्य के व्यक्तित्व मे अन्य इच्छाओं की तरह गुथी हुआी है। दृष्टांत के लिये, गौतम और महावीर मे आध्यात्मिक भाव उत्पन्न करने का प्रयास नहीं किया गया था; उनमे स्वतः आध्यात्मिक जिज्ञासा थी जिससे प्रेरित होकर घर-बार, धन-दौलत त्यज, आभ्यन्तर से विश्व की पुकार सुन सत्य की खोज मे वे वनवासी हो गये। यह उनके व्यक्तित्व का एक अंग था।

मण्डल के ही समान स्वस्तिक और कुण्डलित वक्र (स्पायरल) भी धर्म के प्रतीक होते हैं, जिनका प्रयोग हिन्दू धर्म मे अधिकांशतः किया गया है। ये रूप-रेखाएँ अर्थहीन नहीं हैं; न तो ये प्राचीन संस्कृति मे उपस्थित अलंकृत करने की वृत्ति के प्रदर्शन मात्र हैं। ये बहुत प्राचीन है और इनका उद्गम-स्थान धार्मिक आस्था मे रहता है। स्वस्तिक का प्रतीक विशेष प्रचलित है। हरेक युग मे यह पवित्र प्रतीक उज्जवल भविष्य का सूचक माना गया है। इसका प्रयोग पहले-पहल मध्य, पश्चिमी और उत्तरी योरप तथा भारत मे किया गया। बौद्ध, जैन और वैष्णव आराधकों ने इस प्रतीक को मंगलमय माना है। स्वस्तिक के चार नोकों से देवताओं की अभिव्यक्ति होती है, अर्थात् उनके गुणों का दिग्दर्शन होता है। इसके द्वारा विकास की चार अवस्थाएँ—जनन, जीवन, मृत्यु और अमरत्व—प्रदर्शित होती हैं। 'क्रॉस' की तरह स्वस्तिक देवता का प्रतीक होता है और यह एक दैवी शक्ति से मण्डित पवित्र वस्तु है। इसी से यह सूर्य का भी प्रतीक माना जाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चार नोकों के होने के कारण स्वस्तिक एक चतुर्मुख प्रतीक है और इससे अज्ञात मन के धार्मिक भाव की अभिव्यक्ति होती है। यह मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के अनुरूप है और इससे अज्ञात मन के निम्न से निम्न स्तर का प्रदर्शन होता है। यह चार आधारभूत

मानसिक प्रक्रियाओं—संवेदना, भाव, विचार और अन्तर्दृष्टि—पर भी आधारित माना गया है।

इसी प्रकार कुण्डलित वक्र (स्पायरल) भी स्वाभाविक अलंकृत करने की कला मात्र के उद्देश्य से नहीं बनाया जाता जिससे बर्तन, लकड़ी और पत्थर सजाया जाता है। कुण्डलित वक्र का प्रतीकात्मक अर्थ होता है; इससे मानव जीवन के अज्ञात धार्मिक रुख की अभिव्यक्ति होती है। सर्प पवित्र माना गया है और यह नियम है कि इसकी गेंडुली विशेषतः स्पायरल आकार की बनती है। आरोहित पौधे, पवित्र हाथीदाँत और अंगूर की लताएँ भिन्न-भिन्न प्रकार के कुण्डलित वक्र का आकार लेती हैं। प्राचीन शिल्पकारों ने इसे व्यक्तिगत सजाव का आभूषण माना है, जो यूनान मे प्रचलित है। वस्तुतः इस प्रतीक की उत्पत्ति धार्मिक भाव से हुई है। इसका संबंध भँवरहवा से है जिसके बारे मे यह किंवदन्ती है कि यह ईश्वर और दैवी शक्तियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने का वाहन है। कुण्डलित वक्र से विकास-पद्धति का भी प्रतीकात्मक प्रदर्शन होता है। चीन, जापान, इण्डोनेशिया और अमेरिका मे यह प्रतीक 'मेघ गर्जन' के प्रतीक के रूप मे होता है। प्राचीन धार्मिक कथा मे हरेक वस्तु प्रतीक रूप मे प्रकट की गई है; कुण्डलित वक्र अपवाद नहीं होता। इससे स्वाभाविक शक्ति की भी अभिव्यक्ति होती है। इसी से स्वास्थ्य की देवी हाइजिया का चित्रण इस रूप मे हुआ है कि उसके शरीर के चारो ओर सर्प की कुण्डली बँधी हुई है और वह इससे पौष्टिक द्रव्य प्राप्त कर रही है।[1] हिन्दू कुटुम्ब मे स्त्रियों के गर्भवती होने पर विश्रामालय मे कुण्डलित वक्र का लाल वर्ण से चित्र बनाया जाता है। धर्म-भाव को व्यक्त करने के कारण यह 'स्वस्तिक' और 'क्रॉस' के प्रतीकों से संबंधित होता है।

'वृक्ष' से वृक्ष-पूजा की ओर ध्यान जाता है। प्राचीन काल मे यह विश्वास प्रचलित था कि हरेक वृक्ष मे आत्मा का वास होता है। मिश्र-निवासियों की यह धारणा रही कि वृक्ष और पौधों की उत्पत्ति देवी-देवताओं के अश्रु और स्वेदस्राव से होती है। 'माइग्रेशन ऑफ सिम्बलस्' नामक ग्रंथ मे एक चित्र है जिसमे यह चित्रण हुआ है कि जीवन के वृक्ष से आत्मा पौष्टिक द्रव्य प्राप्त कर रही है। 'वृक्ष' मातृ-देवी का प्रतीक है जो कि जीवन के

---

[1] मेकेन्जी :—माइग्रेशन ऑफ सिम्बलस्, पृष्ठ ८१

तलैया से पनपती है और असंख्य काल से पवित्र वस्तु की तरह सदैव पूजी गयी है।

इस प्रकार स्वस्तिक, कुण्डलित वक्र और वृक्ष के प्रतीक कैसे भी प्राचीन हों, इनके द्वारा विशिष्ट जटिल और गूढ़ आस्था की व्यंजना होती है, जिनकी अपनी ऐतिहासिक महत्ता है और जिनका उद्‌गम प्राचीन संस्कृति मे है। इनके पृष्ठभूमि मे कुछ मनोवैज्ञानिक प्रेरणाएँ सुनिश्चित रूप से होती हैं। पूर्वीय देशों के प्रतीक, जैसा युंग ने वर्णन किया है, प्रभावशाली प्रतिमाएँ हैं—किसी वस्तु के बारे मे धारणा बनाने की पद्धति, जिससे मानव की विकलता-बेचैनी का समाधान होता है।

भारतीय मंदिरों मे विद्यमान शिव-पार्वती की मूर्त्ति और विष्णु-लक्ष्मी की प्रतिमा विशेष मनोवैज्ञानिक महत्व की मानी गयी है। इनसे यह स्पप्ट होता है कि मनुष्य मे पुरुष और स्त्री दोनों ही गुण विद्यमान होते हैं। युंग के शब्दों मे इस मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि (साइकॉलजिकल इन्टचुशन) का प्रक्षेपण धार्मिक रूढ़ि (कल्ट) मे दैवी युग्म रूप मे हुआ है। एक प्रकार से दैवी युग्म द्वारा मानव मन की प्रकृत कार्य-पद्धतियां और विषय-वस्तुओं पर प्रकाश पड़ता है। यह मनुष्य मे 'स्त्री-पुरुष' के समन्वय की अभिव्यक्ति है। भारतीय योग सम्प्रदाय का 'अष्ट मार्ग' मानसिक परिवर्धन का प्रतीकात्मक प्रदर्शन है। मानव का मुख्य ध्येय विकसित मानसिक जीवन यापन अथवा प्रतीकात्मक उत्थान होता है।

दैवी पूजा के अतिरिक्त प्रतीकों के प्रयोग का बाहुल्य धार्मिक कृत्यों मे भी मिलता है। धार्मिक रीतियों का सतर्कता पूर्वक विस्तार से संपादन महत्व का विषय है। पूजा के बर्तनों को एक विशेष विधि से रखना, मंत्र का उच्चारण, निर्धारित-निश्चित रूप से विशिष्ट वस्तुओं का प्रयोग, विविध क्रियाओं का संपादन—इन सबका अपना महत्व होता है। धार्मिक रीतियों के संपादन से मनुष्य की आवश्यकताओं और इच्छाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होती है और इसी से इनका मनोवैज्ञानिक महत्व माना गया है। हिंदू-विवाह की प्रथा द्वारा, जिसमे धार्मिक रीतियों का विस्तार पूर्वक संपादन होता है और छोटी से छोटी बातों पर ध्यान दिया जाता है, नये दाम्पत्य जीवन की गंभीरता,

---

फ्रेजर—दि गोल्डेन बाउ

पवित्र संबंध तथा दायित्व पर प्रकाश पड़ता है। प्राचीन संस्कृति और व्यावहारिक प्रमाणों के आधार पर फ्रायड ने यह निष्कर्ष निकाला कि धार्मिक रूढ़ियों और परम्पराओं का कामात्मक महत्व होता है। यूनान मे यह प्रथा थी कि धार्मिक उत्सवों पर स्त्रियाँ एक विचित्र उन्माद मे भाग लेती थीं जब कि उनका दैनिक जीवन पूर्णतः अनुशासित, नियंत्रित और प्रतिबंधित होता था। धार्मिक उत्सवों मे गर्वीली राजकुमारियाँ भी अहं भाव को त्यज पर्वतों और जंगलों के बीच विचित्र पहनावे मे—अर्ध नग्नावस्था, केश-बिखरे जिसमे हांथीदाँत, लताएँ और जीवित सर्प लपटे रहते—इधर-उधर दौड़ती चिल्लाती-भागती रहतीं। प्राचीन सम्प्रदाय मे जनन की विशेषता को सबसे उच्च स्थान दिया जाता था। बेबीलोन मे इस विशेषता का विभाजन दो स्पष्ट मानवीकरणों मे हुआ है: एक पुरुष और दूसरा स्त्री, जिसके लिये एसीरियन ने 'बेल' और 'मिलिटा' और यूनानियों ने जियस और अफ्रोडाइट का नामकरण किया है। बेबीलोन मे ऊँचे से ऊँचे ओहदे की स्त्रियाँ अपने को एकबार व्यभिचारिणी बनातीं और यह उनका कर्त्तव्य-सा था। यह इस बात का प्रमाण है कि प्राचीन काल से ही 'काम' धर्म का अंग रहा है और धर्म की अनेक नियम-परम्पराएँ और कृतियाँ इसपर आधारित हैं।

जब युग ने प्राचीन परम्पराओं और धार्मिक कृत्यों का अध्ययन किया उन्हें भी फ्रायड के अनुसंधानों मे विशेष सत्यता का आभास मिला, यद्यपि उनकी आस्था मनुष्य की धार्मिक मनोवृत्ति मे विशेषतः थी। प्राचीन धार्मिक परम्पराओं मे जनन के प्रतीक का बाहुल्य मिलता है। हरेक धार्मिक रीति का संवेगात्मक महत्व होता है; यह अज्ञात मन की अकाट्य शक्ति के साथ बरतने का तरीका प्राचीन काल से चला आ रहा है। दृष्टांत के लिये, 'उर्वरीकरण' और 'प्रज्जवलन' की प्रथाएँ हैं। जमीन उपजाऊ बनाने का उत्सव विधिवत् मनाया जाता है और साधारण से साधारण नियमों के पालन के लिये असभ्य जातियाँ बड़ी सजग रहती हैं। उनमे यह प्रथा थी कि वे जमीन मे एक गड्ढा बनाते, जो झाड़ियों से घिरा रहता और सम्पूर्ण रात्रि इसके इर्द-गिर्द नृत्य होता और अपने भालों को इसमे गोभते। यह प्राचीन कृषक का जमीन को उपजाऊ बनाने के लिये प्रतीकात्मक रूप मे काम-क्रिया का संपादन था। फ्रेज़र ने प्रतीकात्मक काम-क्रिया के अनेक दृष्टांत दिये हैं।[1] यह इसका प्रमाण है कि प्राचीन समय

[1] फ्रेज़र :—दि गोल्डेन बाउ

मे भी ऐसी प्रकार की क्रियाओं द्वारा कामशक्ति का स्थानापन्न आवश्यक-सा था। ऐसी नियमित कृतियाँ प्राचीन धार्मिक रूढ़ि मे रहस्य मात्र थीं; मनोवैज्ञानिक विश्लेषण द्वारा अब इस रहस्य का उद्घाटन हुआ है।

योरप मे उन्नीसवीं शताब्दी तक अग्नि की रासायनिक उत्पत्ति की प्रथा अन्धविश्वास रूप मे प्रचलित रही है। बोनफायर की प्रथा तो योरोप के सभी देशों मे प्राचीन काल से प्रचलित है। उत्सवाग्नि के चारो ओर योरोप के निवासीगण नाचते-गाते और अपने चारागाह के साथ परिक्रमा करते हैं। हिन्दू-विवाह मे यह प्रथा है कि विवाह के समय वर-वधु को अग्नि की सात परिक्रमा करनी पड़ती है जिससे वंश चले। प्राचीन प्रथा का अब भी प्रचलित होना अग्नि की महत्ता का द्योतक है, अर्थात् यह कि अग्नि उपजाऊ बनाने की शक्ति का प्रचलित प्राचीन प्रतीक है। वेद मे भी अग्नि काम-प्रतीक माना गया है। युंग ने अपने ग्रंथ 'साइकॉलजी ऑफ दि अन्कॉन्शस्' मे यह इंगित किया है कि अग्नि का उत्पन्न होना एक प्रकार का 'काम प्रतीकवाद' है। इसकी व्याख्या विस्तार से मिलती है। वस्तुतः अधिकांश धार्मिक रीति-परम्पराओं की वस्तुओं और विचारों का आधारभूत 'काम' (सेक्स) ही होता है। प्रश्न है : असभ्य जातियों ने काम-क्रियाओं की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक रूप मे क्योंकर किया है! प्राचीन जाति असभ्य थी और नयी सभ्यता-संस्कृति के ओट मे वृत्ति-प्रवृत्ति का परिमार्जन करने का उनको अभ्यास नहीं था। वे कामशक्ति को उच्च स्तर पर प्रवाहित करना नहीं जानते थे। उनमे काम-क्रिया की चाह बहुत तीव्र और संगीन थी। उन्होंने अपनी अवशेष कामशक्ति के व्यय के निमित्त इन रीति-परम्पराओं का नियमित संपादन प्रारम्भ किया। जादू और धार्मिक रीति-रवाज़ ही उनके पास साधन थे। उन्हें कुछ आंतरिक प्रतिबन्धों की अनुभूति हुई और इसी कारण कामशक्ति वास्तविक वस्तु-क्रिया से हटकर आभ्यन्तरिक संतुष्टि के लिये अन्य वर्ग की वस्तु-क्रियाओं पर स्थानान्तरित हो गई। यह हठ (कम्पल्शन) आभ्यन्तरिक प्रतिरोध मात्र है। यह इच्छा का इच्छा से प्रतिरोध और कामशक्ति का कामशक्ति से प्रतिरोध है। इसी से आदिम निवासियों ने कामशक्ति को यथार्थ काम-संबंधी क्रियाओं से समेट लिया और व्यावहारिक वैध प्रतिरूपों का अजाने अन्वेषण किया। यह निर्विवाद है कि इस प्रकृत वृत्ति पर बाह्य और अन्तःस्थ का सदैव नियंत्रण रहा है जिससे कामशक्ति तिरछा मार्ग लेती

है और स्थानान्तरित क्रियाएँ होने लगती हैं। प्रतिबन्ध के कारण कामशक्ति अपने मूल स्थान से हटा दी जाती है और अन्य प्रकार की क्रियाओं से उसका स्थानापन्न हो जाता है।

'टोटम एन्ड टैबू' नामक ग्रन्थ मे फ्रायड ने इस विषय की व्याख्या विस्तार से की है कि वैध पूजा या धर्म-कर्म वास्तविक सहायक क्रिया नहीं होती; मनुष्य उसका संपादन करने के लिए प्रेरित होता है और इस प्रकार बाधक प्रकार की होती है। इसका संपादन अन्तर्वर्त्ती आवश्यकताओं के लिये होता है;, यह चेतन इच्छाओं की तुष्टि के लिए नहीं बरती जाती। यह आभ्यन्तरिक अनुभूतियों का स्वत: परिवर्धन है और प्राचीन मन के लिए एक सामान्य घटना है। ऐसे कर्म-काण्ड के संपादन द्वारा किसी व्यक्ति के स्वभाव तथा आवश्यकता का दिग्दर्शन होता है। इसके द्वारा सामान्य भाव और अनुभूतियाँ नहीं व्यक्त होती; जटिल मनोवृत्ति व्यक्त होती है। "नियमित धर्म-कर्म स्थायीभाव की निरन्तर पुनरावृत्ति है, पहली और आखिरी वस्तु की ओर। यह भावों का स्वतंत्र प्रदर्शन नहीं है, बल्कि सम्यक् मनोवृत्ति का अनुशासित नाटक है।"[१] जब धार्मिक क्रियाएँ संस्कारीय रूप लेती हैं, जैसे बलि देना, मंत्र जपना इत्यादि, तब शास्त्रसिद्ध पूजा और कल्पनाग्रह की नियमित क्रियाओं मे तुलना संभव है। हस्त् प्रक्षालन, भोग्य पदार्थों का सेवन, जल ग्रहण करना इत्यादि धार्मिक कृतियाँ जो अति साधारण और सामान्य हैं—ये भी प्रतीकात्मक महत्व की मानी-समझी जाने लगती हैं। 'धूल शोधन' एक साधारण व्यावहारिक क्रिया है, किंतु इसका प्रतीकात्मक मूल्य ऐसा प्रभावोत्पादक होता है कि यह कहना संभव है कि यह इसका प्राकृतिक अर्थ है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इसका अर्थ अपराध-भाव का निवारण है। इसी प्रकार भोजन का धार्मिक महत्व होता है। पशु के मांस-भक्षण का प्रतीकात्मक महत्व स्पष्ट होते ही व्यक्ति प्रीतिभोज का कार्य एक नये उत्साह से संपादित करता है। मांस उसी क्रम मे परोसा जाना चाहिए, उसी आकृति मे कटना चाहिये और इसका सेवन रीति से होना चाहिये। धीरे-धीरे हरेक कार्य का संपादन अर्थयुक्त हो जाता है। अल्प भूल भी क्रिया-संपादन की प्रभावोत्पादकता नष्ट करने के लिए पर्याप्त होती है। आदिम प्रतीक सिद्धांत के अनुसार

---

[१] सी० जी० युंग :—साइकॉलजी ऑफ दि अन्कॉन्शस

प्रीतिभोज वस्तुतः इच्छाओं की तुष्टि की अभिव्यक्ति है; यह नाटक मात्र नहीं है। यही अवस्था कल्पनाग्रह के रोगी की होती है। दैनिक जीवन मे घटित नियमित क्रियाओं मे कुर्सी चारपाई के पास एक विशिष्ट स्थान पर हो, चादर एक विशेष प्रकार से तही रहे और समतल बिछाई जाय, तकिया एक विशिष्ट ढंग से रखी जाय—तभी वह विश्राम के लिए जायगा।

धार्मिक पूजा अथवा अनुष्ठान पद्धति और कल्पनाग्रह के रोगी की क्रियाओं मे कहाँ तक साम्य है यह स्थापित करने के लिए दोनो वर्ग की क्रियाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आवश्यक है। शास्त्रसिद्ध पूजा अज्ञात दमन का परिणाम है; कल्पनाग्रह मे भी दमन की कार्य-पद्धति विशेष कार्यरत होती है। दोनों मे ही कुछ पैतृक वृत्तियों के परित्याग की ओर झुकाव रहता है। दोनों ही प्रकार की क्रियाओं के संपादन का कारण अन्तःस्थ वेदना का भय है जो सम्यक् रूप से इन क्रियाओं का संपादन न करने पर होता है। दोनों मे ही अज्ञात अपराध-भाव की प्रधानता रहती है और ये क्रियाएँ रक्षात्मक रूप मे घटित होती हैं। धार्मिक व्यक्तियों का यह भाव कि वे दुःखी और पापी हैं कल्पनाग्रह के रोगी के अपराध-भाव की ही तरह है। ईसाइ धर्म मे बपतिस्मा एक हठ प्रवृत्यात्मक क्रिया है और यह अज्ञात अपराध-भाव की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। इसकी एक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि है। अज्ञात अपराध-भाव से भय का भाव उत्पन्न होता है और प्रतिक्रिया-स्वरूप ऐन्द्रजालिक उत्सवों का संपादन होता है। धार्मिक पूजा स्थानापन्न की प्रवृत्ति का द्योतक है; कल्पनाग्रह मे भी यह कार्यरत होता है। धीरे-धीरे बिना महत्व की प्रतिक्रियाएँ धार्मिक कृतियों का मुख्य अग बन जाती है और आधारभूत विचार स्थानान्तरित हो जाते है। यह अतिशयोक्ति नहीं कि 'धर्म कल्पनाग्रह है और कल्पनाग्रह व्यक्तिगत धार्मिक पद्धति है'। कल्पनाग्रह धर्म-रोग के रूप मे विकृत प्रतिक्रिया मात्र है। इनमे केवल मूल्य की दृष्टि से भेद होता है। धर्म की विशेषता एकरूपता है, जैसे प्रार्थना; कल्पनाग्रह की क्रियाएँ सर्वत्र परिर्वात्तित होती रहती है और अर्थहीन होती हैं।

मनोविश्लेषण मे यह स्पष्ट व्याख्या है कि धर्म वस्तुतः मानव का सार्व-भौम कल्पनाग्रह प्रकार का मानसिक दौर्बल्य है। सामान्यत· प्राचीन काल से ही प्रवृत्यात्मक इच्छाओं के दमन की प्रथा प्रचलित है और इच्छाओं की पूर्त्ति का त्याग धर्म की उत्पत्ति का कारण माना गया है। यह इच्छाओं को दमित करने

की प्रथा का युक्ताभ्यास है। धर्म मानसिक दुर्बलता है। जिस प्रकार बालक को विकास की विभिन्न अवस्थाओं मे मानसिक दुर्बलता की अनुभूति होती है, उसी प्रकार मानव को युगान्तर से धार्मिक भाव की अनुभूति होती है। धर्म की उत्पत्ति 'मातृ-पितृ भाव-ग्रंथि' से हुई है। इसमे इच्छा-भ्रम भी निहित है जिसका समन्वय वास्तविकता से असंभव है। यह आनन्दपूर्ण संक्षोभ की अवस्था है। फ्रायड का कथन है: "धार्मिक सिद्धान्तों मे निहित सत्य इतना विकृत किंतु व्यवस्थित रूप मे परिवर्त्तित रहता है कि मानव उन्हें सत्य नहीं समझ पाता।"[1] सत्य तथ्य की प्रतीकात्मक व्यंजना होती है। धर्म-संबंधी दुर्बलता की अवस्था से मानवता का मुक्त होना उसी प्रकार संभव है जिस प्रकार बालक अपने बचपन के विकास की अवस्था से मुक्त होता है। फ्रायड का यह निष्कर्ष कि धर्म एक सामान्य कल्पनाग्रह है और कल्पनाग्रह से व्यक्तिगत धर्म की अभिव्यक्ति होती है, रोचक अन्वेषण हैं।

अब प्रश्न यह है कि मानव स्वभाव के किस अंग का दिग्दर्शन अध्यात्म अलौकिक धर्म मे होता है। इसके पूर्व यह स्पष्ट करना होगा कि धार्मिक रहस्यवाद का स्वरूप और इसकी विशेषताएँ क्या हैं? रहस्यवाद का आधारभूत तथ्य व्यक्तिगत आत्मा का विश्वआत्मा से मिलन होता है, जिसे परम, ईश्वर, असीम-निरपेक्ष संबोधन किया गया है, और उस उच्च गोपनीय आनन्द की अवस्था को प्राप्त करना है जिसमे व्यक्ति अपने अस्तित्व को दैवी शक्ति से पृथक् नहीं समझता। रहस्यवादी का प्रमुख आदर्श व्यक्तिगत अस्तित्व को मिटाना और ईश्वर से मिलन की आकक्षा से परिप्लावित रहना है। रहस्यात्मक अनुभूति इन्द्रिय-गम्य न होकर हृदय-गम्य होती है।

मनोविश्लेषण के दृष्टिकोण से रहस्यात्मक अनुभूति मानसिक विच्छेद की अवस्था का द्योतक है। यह अत्यधिक असम्बद्ध हो जाना है, अथवा सामान्य से विचलित होना है। रहस्यवादी चित्त-विभ्रमी (साइकोपैथ) होता है। वह हिस्टीरिया तथा अन्य प्रकार के रोगों से त्रस्त होता है जिससे उसे ऐन्द्रिक भ्रम और भ्रान्तियाँ होती हैं और इससे भावात्मक अवस्था मे परिवर्त्तन हो जाता है। तर्क और ज्ञान की न्यूनता होने से उसका अपराध अंगीकार करना मानसिक चिकित्सालय के रोगियों के समानान्तर होता है। तात्पर्य है कि

[1] फ्रायड :—कलेक्टेड पेपर्स

रहस्यवादी का जीवन असाधारण और विकृत होता है और उसके व्यवहार तथा अनुभूतियों पर अज्ञात मन की प्रभुता रहती है। स्वभाव की निर्बलता के कारण उसे यह भारी मूल्य चुकाना पड़ता है। यह भी संभव है कि रहस्यवादी की इच्छाएँ परवर्गी की ओर प्रकृत प्रेम-आकर्षण के परिमार्जित रूपमात्र हों। यह इच्छाओं का लौकिक से अलौकिक की ओर स्थानान्तरण है—वस्तुतः वह अवस्था-विशेष है जिसमे परिमार्जन चरम सीमा पर पहुँच जाता है। अतएव भौतिक प्रेम अभौतिक से स्थानान्तरित हो जाता है।

इड, अहम्, और नैतिक मन की धारणाओं के विकसित होने पर फ्रायड ने अपने पिछले ग्रन्थों मे धार्मिक रहस्यवाद की नयी व्याख्या की। उनकी यह नयी व्याख्या 'नैतिक मन के प्रक्षेपण' की धारणा पर आधारित है। यह विचारणीय प्रश्न है कि क्योंकर रहस्यवादी ईश्वर के चिंतन मात्र से एक विचित्र आह्लाद, तुष्टि, और आत्म-विस्मरण की अनुभूति करता है! वस्तुतः इसका आधारभूत नैतिकमन का बहिर्मुखीकरण या प्रक्षेपण है। यह नैतिकमन के प्रक्षेपण की वह अवस्था है जिसमे यह उच्चतर विकास की अवस्था पर होता है; तभी उसका इस रूप मे प्रक्षेपण होता है। प्रश्न उठता है: रहस्यवादी को नैतिकमन को प्रक्षेपित करने की आवश्यकता क्यों पड़ी! क्या व्यक्ति अपने आदर्श को बाह्य स्थूल रूप दिये बिना जीवन यापन नहीं कर सकता? इसका ठीक उत्तर कदाचित् अधिक कठिन नहीं है। नैतिकमन का प्रक्षेपण हो जाने पर मानसिक बल का ह्रास स्वल्प मात्रा मे होता है। जब मनुष्य अपने उच्च आदर्श के अनुकूल जीवन यापन करने के लिये अपने पर व्यवस्था और प्रतिबंध मात्र रखता है और अनेक प्रकार की यातनाओं से आत्महनन की ओर उन्मुख होता है, तो जीवन मे कोई सरसता नहीं रह जाती। इसी से व्यक्ति मे अज्ञात रूप से नैतिकमन के प्रक्षेपण अथवा बाह्य जगत मे इसके प्रतिनिधि की प्राप्ति का प्रयास करने की स्वाभाविक इच्छा जागरित होती है। किंतु यह तभी संभव है जब नैतिकमन के आदर्श से मिलता-जुलता प्रतिमान हो, अथवा इससे भी उत्कृष्ट ऐसी वस्तु प्राप्त हो जो आदर्शता के उपयुक्त हो। मनुष्य उत्कृष्ट कोटि के लेखक अभिनेता, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ इत्यादि को अपना आदर्श बनाता है। किंतु इनकी सीमाएँ हैं; रहस्यवादी भूलकर भी अपने आदर्श का प्रतिरूप इन्हें नहीं मानता। जिसे रहस्वादी अपने नैतिकमन का प्रतिनिधि और प्रतिरूप चुनता है, वह बाह्य जगत् की सभी

वस्तुओं से अधिक उपयुक्त और पूर्ण होता है; उस पर सहज ही नैतिकमन का प्रक्षेपण संभव रहता है। प्रक्षेपण का यह आधार ऐसा आकर्षक होता है कि रहस्यवादी की सत्ता आदर्श मे समन्वित हो जाती है; वह उससे एकीकरण कर लेता है और आह्लाद की अवस्था मे उसे अपनी व्यक्तिगत आत्मा और ईश्वर मे कोई भेद नहीं अनुभव होता। अहम् और नैतिकमन मे सर्वांग रूप मे पूर्ण तादात्म्य स्थापित हो जाता है। दोनों के बीच कोई दीवार अवशेष नहीं रहती। इस आह्लाद की अवस्था मे नैतिकमन के प्रबल होने से अहम् की सत्ता मिट-सी जाती है और रहस्यवादी को अपने व्यक्तित्व का स्मरण नही रह जाता। फ्लुगल ने इस अवस्था मे अहम् का चित्रण करते हुए लिखा है : "अत्यधिक आह्लाद प्रकार की धार्मिक अनुभूति का, सचमुच अन्य को अर्पण करने का सबसे पूर्ण रूप तब मिलता है जब अहम् अपने सत्ताहीन व्यक्तिगत अस्तित्व को जो भय, चिंता और व्यक्तिगत जीवन पर निर्भर करता है, खो देता है। अहं एक महत्, विशाल सार्वभौम और असीम सत्ता का अंश मात्र बन जाता है, ताकि वह असीम से रागात्मक संबंध स्थापित कर सके और उस आनन्द की अनुभूति मे लीन हो सके जो और किसी प्रकार से नहीं प्राप्त हो सकती।"[१] फ्रायड ने इस अवस्था को अहम् की निर्धनावस्था कहा है। इस भावनापूर्ण अर्पण से व्यक्ति को आह्लाद और परमानन्द की अनुभूति प्राप्त होती है। उसे ससीम मे असीम का दर्शन होता है और वह संकीर्ण तथा निचले स्तर से ऊपर उठ विद्रोहात्मक तथ्यों से मुक्त हो जाता है।

धर्म के प्रतीकों की व्याख्या के प्रसंग मे पौराणिक कथाओं का उल्लेख भी आवश्यक है। आध्यात्मिक विश्व का यथार्थ इतिहास पौराणिक कथाओं से ही प्रारंभ होता है। अर्बन का कथन है : "जब कोई धर्म की आस्था के विषय को पौराणिक भाषा से मुक्त करना चाहता है तब धर्म अपने यथार्थ, ऐतिहासिक और बाह्य रूप मे न रहकर शून्य और सूक्ष्म रूप मे छायामात्र रह जाता है।"[२] आध्यात्मिक विचारों के अनेक मौलिक प्रतीक पौराणिक कथाओं मे मिलते हैं। धर्म के गूढ़ भावों का प्रकाशन पौराणिक कथाओं अथवा नाट्कीय भाषा के अभाव मे नहीं हो सकता। यह ग्रीस के दार्शनिक

[१] जे० सी० फ्लुगल :—मैन, मौरल्स एण्ड सोसाइटी, पृष्ठ १८६

[२] अर्बन :—लैंग्युएज एण्ड रियैलटी, पृष्ठ ५९१

प्लेटो की ही सूझ नहीं है; हरयुग के दार्शनिकों और विचारकों ने इसे हृदयंगम किया है। पौराणिक कथाओं का महत्व धर्म और अध्यात्म के प्रसंग मे ही होता है; इनका स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। अध्यात्म चेतना के स्फुरण से इन्हें एक नया अर्थ प्राप्त होता है और अभिव्यक्तियाँ प्रतीकात्मक प्रकार की बन जाती हैं: "सभी विकसित धर्म मे मुख्यत: यह चेतनता है कि इसमे पौराणिक का अपौराणिक के लिये, दृष्टि-विषयक का तात्त्विक के प्रतीकीकरण के लिये प्रयोग होता है जिससे धर्म की सभी वैध व्याख्या का निर्धारण होता है।" वस्तुत: पौराणिक कथानकों से धार्मिक प्रतीकों को विषय प्राप्त होता है। पौराणिक भाषा मे ही धर्म के प्रतीकों का निर्मित होना संभव है।

अतएव पौराणिक कथाएँ धार्मिक चेतना की अभिव्यक्ति के लिये आवश्यक है। इसकी पुष्टि मनोविज्ञान मे भी हुई है। यह विचार भ्रामक है कि पौराणिक कथाएँ प्रकृत वस्तु-तथ्य के विवरण की आदिम पद्धतियाँ मात्र हैं। वस्तुत: पौराणिक कथाओं से मानव स्वभाव पर प्रकाश पड़ता है।

प्रश्न यह है कि मनोवैज्ञानिक तथ्यों का प्रदर्शन क्या इस रूप मे संभव है! मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह कोई समस्या नहीं है, क्योंकि अज्ञात मन की भाषा प्रतीकात्मक होती है और प्रतीकों द्वारा अज्ञात मन के विषयों का प्रकाशन होता है। मनोविज्ञान की दृष्टि से यह सर्वथा न्यायसंगत है कि दृष्टि-विषयक से तात्त्विक का अथवा असत्य से सत्य का प्रतिनिधित्व होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कोई भी विषय वैज्ञानिक मनोवृत्ति के उतने निकट नहीं है जितनी पौराणिक कथाएँ। पीकॉक का कथन है: "पौराणिक कथाएँ अब उसी अनुपात मे कल्पित तथा अलौकिक समझी जाती है जिस अनुपात मे व्याख्या मे अयथार्थ बोध है। इसमे सत्य भी उतना ही रहता है, जितंना पहले समझा गया हो।"[१] किसी भी स्तर पर पौराणिक कथानक कल्पना की उपज मात्र नहीं होती। आदिम निवासियों की रचनाओं का मनोवैज्ञानिक आधार था। इनकी पृष्ठभूमि मे अनेक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत और प्रवृत्तियाँ गूँथी हैं। इनसे मानव मन का प्रतिनिधित्व होता है। अतएव ये मानसिक कल्पनाएँ नहीं हो सकतीं। रीड का कथन है: "पौराणिक कथाएँ, जो पहले

---

[१] डी० डी० कागा :—व्हेर थिसौफी एण्ड साइन्स मीट्स

निष्प्रभ थीं, अब पुनः जीवित हो गयी हैं और संभव है कि समयावकास होने पर सभी देवता और नायक-नायिकाएँ जिन्होंने शताब्दियों तक मानव मन की संतुष्टि मात्र की है, पुनः अपनी प्रतीकात्मक क्रियाओं को संस्थापित करेंगे।"[1] मानसिक जीवन की गहराई मे प्रवेश करने का प्रयास मनोविज्ञान मे जितना होता है उतना ही अधिक यह पौराणिक कथाओं की ओर प्रत्यावर्त्तित होता है। बाह्य विश्लेषण और निरीक्षण द्वारा मनुष्य के ज्ञान की समृद्धि होने पर विषय मे यह स्पष्ट होता है कि मानसिक ज्ञान प्राचीन पौराणिक कथाओं मे निहित है।

पौराणिक कथाएँ सामान्य और मनोवैज्ञानिक दोनों ही अर्थो मे प्रतीकात्मक होती हैं। सामान्य रूप से पौराणिक कथाओं के प्रतीकात्मक होने का कारण यह है कि इनसे मनुष्य की अध्यात्म चेतना का स्पष्टीकरण होता है। पौराणिक कथाओं से ही धार्मिक सिद्धान्तों की निष्पत्ति होती है। ईश्वर के स्वरूप तथा विशेषताओं का, जिस रूप मे इनका पौराणिक कथाओं मे प्रतिनिधित्व है, परम्परा से एक निश्चित रूप मे चित्रण हुआ है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पौराणिक कथाओं से मनुष्य के स्थायीभावों, उसकी आकांक्षाओं तथा कार्य-पद्धतियों का प्रकाशन होता है। उनका अध्ययन मानव-स्वभाव का अध्ययन है। वस्तुतः मन मे वे ही प्रतिमाएँ विद्यमान हैं जो पौराणिक कथाओं मे दृष्टिगत होती हैं। पौराणिक कथाओं मे चित्रित प्रतिमाएँ अज्ञात मन की जन्मजात प्रतिमाएँ हैं। इसके अतिरिक्त जो इच्छाएँ दमित हैं, चेतन मन मे जिनका प्रवेश कभी नहीं हुआ है, अथवा जो वहिष्कृत कर दी गयी हैं, उनका भी प्रदर्शन पौराणिक कथाओं मे मिलता है। इस प्रकार पौराणिक कथाएँ आंतरिक भाव-प्रतिमाओं तथा दमित इच्छाओं से बुनी हैं; इनका निर्माण बाह्य वस्तु के प्रत्यक्षीकरण की सहायता से नहीं हुआ है।

पौराणिक कथाओं और स्वप्न मे बड़ा साम्य है। मनुष्य के लिये जो महत्ता स्वप्न की है, वही जाति के लिये पौराणिक कथा की है। स्वप्न के व्यक्तिगत भाव-कल्पना और पौराणिक कथा की जातिगत भावना मे समानता है। पौराणिक कथाओं को जातीय स्वप्नों की संज्ञा दी गयी है। स्वप्न की

---

[1] हर्बर्ट रीड :—कलेक्टेड एसेज इन लिटररी क्रिटिसिज़्म, पृष्ठ १०१

ही तरह इनकी उत्पत्ति भाव-कल्पना से होती है और इनमे व्यवस्था और समन्वय मिलता है। इनके द्वारा अज्ञात मन के गहरे अंधेरे समुद्र पर प्रकाश पड़ता है। पौराणिक कथाएँ सचमुच स्वप्न की कथा-वस्तुओं से ही निर्मित होती हैं। यह जाति की बाल्यावस्था का स्वप्न है। युंग का कथन है : "बालक के मानसिक जीवन मे बचपन की अनुभूतियाँ स्वप्न की तरह प्राचीन तथा ऐतिहासिक युग के पूर्व के काल की प्रतिध्वनि मात्र हैं।" फ्रायड का कथन है : "संभव है कि पौराणिक कथाएँ सम्पूर्ण देश की कल्पनात्मक इच्छा की विकृत अवशिष्ट सम्पत्ति के समरूप हैं—नव–मानवता का युगीय स्वप्न है।"[1] इसी से मनोवैज्ञानिकों ने स्वप्न और धार्मिक अथवा पौराणिक भाव-कल्पनाओं मे अन्तःसंबंध स्थापित किया है।

परी कथाएँ भी, जो पौराणिक कथाओं से भी अधिक प्राचीन हैं, अज्ञात मन की काल्पनिक उपज है और इनका मानसिक महत्व होता है। इनका निर्माण व्यक्तिगत संतोषण के लिये हुआ है। इनके द्वारा व्यक्ति की इच्छाओं, उनकी कल्पित तुष्टि, वास्तविक जीवन के अभाव की पूर्त्ति और निराशा तथा संघर्ष का समाधान होता है, यद्यपि उनके पात्र व्यक्तिगत और कल्पित होते हैं। संक्षेप मे, जैसा लैंगर का कथन है : "परी कथा एक प्रकार की इच्छा-पूरक (विशफुल थिंकिंग) है। फ्रायड ने इसका विश्लेषण सर्वाङ्ग रूप से किया है कि यह निरंतर आकर्षण की वस्तु क्यों है; तब भी प्रौढ़ व्यक्तियों का इसमे विश्वास नहीं जमता।"[2] परन्तु पौराणिक कथाएँ परी कथाओं से अधिक जटिल और गूढ़ रहती हैं और आरंभ से अंत तक एक तार मे गूँथी रहती हैं। इनका रंगमंच वास्तविक जगत है; यह परियों का अभौगोलिक देश नहीं है। इनके द्वारा व्यक्तिगत इच्छाओं की अभिव्यक्ति नहीं होती, बल्कि ये मानवीय इच्छाओं के स्वाभाविक संघर्षों के प्रकाशन हैं जो किसी शक्ति के कारण भग्न कर दी गई हैं।

परी कथा के युग के पश्चात् पौराणिक कथाओं के निर्माण का युग प्रारंभ होता है। संभव है इसकी महत्ता बाद मे पहचानी गयी हो, जब कि जीवन के प्रति संकुचित विचार न रह गया और कथा-कहानियों का एक मात्र

---

[1] ह्वाइटहेड :—साइकोएनिलिसस, पृष्ठ ८५

[2] लैंगर :—फिलॉसफी इन ए न्यु की, पृष्ठ १७५

उद्देश्य व्यक्तिगत संतोषण न रहा। पौराणिक कथाओं मे मानव जाति की सामान्य तुष्टि की सामग्री मिलती है। दृष्टांत के लिये, भारतीय पौराणिक कथानकों से महाकाव्य रामायण उद्‍धृत किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर रामायण के पात्रों द्वारा विभिन्न मानवीय स्वभावों और गुणों का प्रतिनिधित्व होता है। राम समाज के सामान्य व्यक्ति मात्र नहीं हैं; वह आदर्श और उत्कृष्टता के प्रतिरूप है और उनका जीवन के प्रति जो रुख है उसमे अज्ञात मन की धार्मिक प्रक्रिया की प्रतिच्छाया मिलती है। इसी प्रकार रावण द्वारा असद्‌वृत्तियाँ अथवा 'छाया' मूर्तिमान की गई है। यह छाया (शैडो) सामूहिक अज्ञात मन की प्राचीन भाव-प्रतिमा है जिससे मनुष्य अधिकतर त्रस्त रहता है और उसका दास रहता है। पौराणिक कथाओं के पात्र व्यक्तिगत अनुभव के परिणाम नहीं है; उनसे अज्ञात मन की विभिन्न भावात्मक प्रतिमाओं का प्रतिनिधित्व और मानसिक शक्ति का दिग्दर्शन होता है। अतः यह अतिशयोक्ति नहीं कि पौराणिक कथाओं के विभिन्न पात्रों द्वारा मानसिक अवस्था का प्रतीकात्मक प्रदर्शन होता है। पौराणिक कथाओं का उद्‌गम-स्थान अज्ञात मन के गर्भ मे ही है; यह अन्यत्र नहीं है। इसमे हमे अज्ञात मन अथवा परिवर्त्तित-परिवर्धित तथ्यों का प्रदर्शन मिलता है जो समयावकास होने पर भी अपने प्रकृत रूप मे रहता है। यद्यपि कला और स्वप्न मे इन प्रकृत प्रतिमाओं की अभिव्यक्ति विशेष स्वाभाविक और प्राचीन है, तथापि पौराणिक कथाएँ निरपवाद रूप से मानसिक प्रदर्शन हैं। इनसे मानसिक स्वभाव की अभिव्यक्ति होती है, भले ही यह अभिव्यक्ति विकृत रूप मे हो।

इसका उत्कृष्ट दृष्टांत इडीपस की पौराणिक कथानक है, जिसका मनो-विश्लेषण मे विशिष्ट स्थान है। इस पौराणिक कथानक द्वारा फ्रायड ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि पौराणिक कथाओं द्वारा भी मनुष्य की दमित वृत्ति की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति संभव है, जिस प्रकार यह मानसिक रोग और स्वप्न मे घटित होता है। मातृ-पितृ भाव-ग्रंथि का सिद्धांत भले ही मान्य न हो, किन्तु यह पौराणिक आख्यान पर बहुत कुछ आधारित है। अन्य पौराणिक कथाएँ एलेक्ट्रा, मेडा और फेड्रा की है। ये मानव मन की इच्छाओं और आवश्यकताओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्तियाँ हैं। मेडा की यह पौराणिक कथा कि पति-प्रेम की एकमात्र अधिकारिणी बनने के लिये उसने

परिवार मे बच्चों का जन्म न होने दिया, स्त्री की एकान्तिक अधिकार की प्रकृत इच्छा का प्रकाशन है। फेड्रा की पौराणिक कथा से माँ की पुत्र के साथ अनाचार इच्छा की अभिव्यक्ति होती है।

ऐडम और ईव की कथा विश्वख्याति की है। एडन के बाग से सेव लेने की तृष्णा को न रोक सकने के कारण इन्हें कठिन दण्ड मिला। यह कहानी मानव स्वभाव की दुर्बलता की कहानी है, जिससे सूचित होता है कि सभी प्रकार के बाह्य नियंत्रणों के बावजूद मनुष्य अपनी प्रकृत इच्छाओं पर किसी भी प्रकार शासन नहीं कर पाता। उसे उनका आखेट बन जाना पड़ता है। लका मे राम और रावण तथा कुरुक्षेत्र मे पाण्डवों और कौरवों के युद्ध वृत्तान्तों से आदर्श और लौकिक-जीवन के संघर्ष की अभिव्यक्ति होती है। मानवीय व्यक्तित्व मे इड, अहं और नैतिकमन कार्यरत रहते हैं। शिव की इस कथा से कि उनके त्रिनेत्र से कामदेव का भस्म होना संभव था, नैतिक मन की इरौस पर प्रभुता व्यक्त होती है—यह कि अध्यात्म की प्रकृत पर प्रभुता है।

युंग के ग्रंथ 'साइकॉलजी ऑफ दि अन्कॉन्शस' मे अनेक दृष्टात है जिनसे यह इंगित होता है कि पौराणिक कथाएँ मनुष्य की मानसिक शक्ति और उसके परिवर्तित-परिवर्धित रूप के प्रकाशन मात्र हैं। पौराणिक कथाओं के पात्रों से मनुष्य की मानसिक शक्ति के इतिहास का ज्ञान होता है। जिस प्रकार व्यक्तिगत मानसिक शक्ति का चित्रण स्वप्नानुभूति मे होता है उसी प्रकार सामान्यत : मानव जाति का प्रतिनिधित्व पौराणिक कथाओं मे होता है। दृष्टांत के लिये ड्रैगन की कहानी है जिसमे ड्रैगन राक्षस का भक्षण करता है और वह पूर्व दिशा की ओर गमन करता है और सांझ तक अपनी दिशा पश्चिम की ओर बदलता है और यह राक्षस उसके उदर से बाहर निकलने की व्यवस्था करता है। यह पौराणिक कथा मानसिक शक्ति के प्रत्यावर्त्तन तथा विकास-प्रगति की अवस्थाओं का दिग्दर्शन है। 'प्रत्यावर्तन' अवनति तथा ह्रास का लक्षण नहीं होता। यह जीवन मे नये प्रसून लाने का भी उद्गम होता है। जीवन इसी तन्तुविन्यास से बुना हुआ है। ड्रैग्रन का पौराणिक नायक से युद्ध होता है। इसके द्वारा यह प्रदर्शित होता है कि 'पुत्र की दमित कामशक्ति माँ के लिये प्रयास कर रही है'। इससे मानसिक शक्ति के उस भाग की अभिव्यक्ति होती है जिसे मातृ शक्ति कहा गया है। इसी प्रकार वुडनिम्फ की पौराणिक कथा मे स्त्रैणता सूचक एनिमा की अभिव्यक्ति हुई है। यह मनोभाव, प्रतिक्रियाएँ,

जो मानसिक जीवन मे स्वत : प्रेरित हैं, उनका निगम्य तथ्य है; यह रूढ़िवादी भी है।

ओजर्स ने जूडा की भाव-कल्पना की है जो उसकी अज्ञात प्रवृत्ति का प्रतीक है। ओजर्स की समस्या वैयक्तिक थी। कल्पित पात्र जूडा की समस्या का समाधान कर अज्ञात रूप से वह अपने को निज़ी समस्या से मुक्त करना चाहता था। अपनी अज्ञात मन की इच्छा के प्रकाशनार्थ, जिसकी पूर्ति परोक्ष रूप मे संभव नहीं थी, उन्होंने जूडा की कल्पना की। ऐसी अनेक पौराणिक कथाएँ है जिनके कल्पित पात्रों मे अज्ञात मन का प्रक्षेपण व्यक्तित्व को तनाव से मुक्त करने के लिये हुआ है।

मानसिक क्षेत्र के आभ्यन्तरिक नाटक के प्रतीकों मे अधिकतर 'मातृ' और 'पुनर्जन्म' के प्रतीक प्रचलित हैं। नगर, पृथ्वी, वन, समुद्र, कल्पवृक्ष इत्यादि मातृ प्रतीक माने गये हैं। ओजीजस के पौराणिक कथानक मे मातृ प्रतीक स्पष्ट है। मिश्रदेश के राजा ओजीजस की स्त्री थेब्स का नामकरण शहर थेब के अनुवर्त्ती किया गया। ओजीजस की स्त्री और नगर का नाम एक ही होना इस तथ्य का द्योतक है कि स्त्री और नगर मे साम्य होता है। हिंदू पौराणिक कथाओं मे पृथ्वी का संबोधन सदैव 'माँ' रूप मे हुआ है; पृथ्वी मे मातृगुण का समावेश होता है। 'कल्पतरु' जिससे सभी मनोवांछित फल प्राप्त होता है, माँ की प्रतिमा है। ऐसी अनेक पौराणिक कथाएँ हैं, जिनमे यह कल्पना की गयी है कि नायक वृक्ष के भीतर है और अकस्मात् जादुवत् वह बाहर निकलता है। 'कल्पवृक्ष' का दोहरा महत्व होता है : मातृप्रतीक के अतिरिक्त यह 'काम प्रतीक' भी है। वृक्ष, नगर, पृथ्वी आदि प्रतीकों का संकेत उस मानसिक शक्ति की ओर है जो मातृ प्रतिमा मे अचेतन रूप से निहित है। ये मातृ प्रतीक हैं, क्योंकि ये जीवन के स्रोत हैं। वस्तुत. अधिकांश पौराणिक कथाएँ 'मातृ प्रतीक' पर ही केन्द्रित हैं।

पुनर्जन्म प्रतीकवाद के सम्बन्ध मे प्रमुखतः सूर्य की पौराणिक कथा का उल्लेख हुआ है, जिसका धर्म और पौराणिक आख्यान मे विशेष महत्व होता है और इसका प्रभाव आध्यात्मिक प्रतीकवाद पर पड़ा है। यह पुनर्जन्म माँ के गर्भ मे दुबारा प्रवेश करने की इच्छा का प्रतीक है। सागर गर्भ का प्रतीक है जिसमे सूर्य पुनर्जन्म के लिये अस्त होता है। मानसिक शक्ति

आध्यात्मिक रूप ग्रहण करती है। सूर्य की पौराणिक कथा द्वारा जो पुनर्जन्म का प्रसिद्ध प्रतीक है, युंग ने यह इंगित करने का प्रयास किया है कि अनाचार इच्छा शारीरिक संयोजन की इच्छा नहीं होती; यह बालरूप ले लेने की इच्छा होती है। अनाचार इच्छा का प्रतीकात्मक महत्व होता है; इसे सत्य तथ्य मान लेना जैसा फ्रायड ने किया है, असंगत है। युग का कथन है: "अनाचार इच्छा के परिमार्जन के सिद्धांत को मान लेना यह स्वीकार करना है कि धार्मिक प्रतीकों मे कोई नैतिक आदर्श नहीं होता; यह अनाचार इच्छा का अचेतन परिमार्जन प्रतीकात्मक क्रियाओं तथा धारणाओं के रूप मे होता है जिनसे मनुष्य को प्रवंचना मात्र मिलती है और इससे स्वर्ग पिता के रूप मे, पृथ्वी माँ के रूप मे और इसके निवासी बच्चे और भाई-बहिन के रूप मे दृष्टिगत् होते हैं।"[१] इसका यह अर्थ नहीं कि अनाचार इच्छा का अचेतन रूप से धार्मिक क्रिया-व्यापार मे परिवर्तित होना एकमात्र सुझाव है। मानव को चेतन अभिज्ञान भी होता है। वह मानसिक शक्ति जो अनाचार इच्छा मे बझी है उसका प्रयोग सहज ही धार्मिक क्रियाओं के लिये किया जा सकता है।

फ्रॉबेनियस ने एक दृष्टांत दिया है जो माँ के गर्भ मे लौटने अथवा पुनर्जन्म की आकांक्षा का द्योतक है:

> "नायक का भक्षण जल-राक्षस द्वारा होता है। वह नायक को उदर मे रखकर पूर्व की ओर जाता है। इस यात्रा मे नायक राक्षस के उदर मे अग्नि प्रज्वलित करता है और क्षुधित होने पर लटकते हृदय का एक हिस्सा काट लेता है। ज्योंहि उसे यह आभास हुआ कि जल-राक्षस मत्स्य रूप मे सूखे स्थल पर खिसक रहा है; वह तुरत उसके उदर को फाड़ देता है और बाहर निकल आता है। उस मत्स्य-राक्षस के उदर मे ऐसी ऊष्णता थी कि उसके बाल गिर गये। नायक ने उन सभी जीव-जन्तुओं को, जिनका भक्षण उस मत्स्य-राक्षस ने किया था, मुक्त कर दिया।"[२]

इस श्रेणी के दृष्टान्तों से भारतीय पौराणिक रचनाएँ युक्त हैं:

"जब हनुमान सीता का समाचार लेने लंका जा रहे थे जहाँ रावण ने

---

[१] सी० जी० युंग:—साइकॉलजी ऑफ दि अन्कॉन्शस, पृष्ठ २६०

[२] सी० जी० युंग:—साइकॉलजी ऑफ दि अन्कॉन्शस, पृष्ठ २३८

सीता को हरण के पश्चात् रखा था, हनुमान को समुद्र पार करना पड़ा था। रास्ते मे वह सर्पों की जननी सुरसा से मिले जिसको देवताओं ने हनुमान की शक्ति-परीक्षा के लिये नियुक्त किया था। सुरसा हनुमान को भक्षण करना चाहती थी। हनुमान ने अपनी काया का विस्तारण किया। सुरसा ने उसके द्विगुण अनुपात मे अपना शरीर बढ़ाया और इस प्रकार वे दोनों अपने को द्विगुण चतुष्गुण करते गये। हनुमान ने कुशलता बरती, अपना रूप छोटा कर मुख द्वार से बाहर निकल आये।"

ऐसे आख्यान जो प्रतीकात्मक हैं मनोवैज्ञानिकों के लिये स्थायी आकर्षण के विषय होते हैं।

पौराणिक आख्यानों मे सूर्य-पूजा की प्रथा बृहत पैमाने पर मिलती है। इसका कारण यह है कि सूर्य अपनी शक्तिशाली किरणों और जीवनदेय गुण के कारण मानसिक शक्ति का अत्यधिक उपयुक्त और प्राकृतिक प्रतीक होता है। 'माँ का पुत्र से विछोह' का अर्थ है बचपन के प्रकृत भाव-विचार से अपने को मुक्त करना। 'ड्रैगन और सर्प' द्वारा दमित अनाचार इच्छा की अभिव्यक्ति होती है। मातृ कामशक्ति बहुत प्रभावशाली होती है। इसीसे इसकी तुलना समुद्र और राक्षसों से की गयी है। रात्रि के साथ का युद्ध माँ पर विजय पाने का द्योतक है। 'सिंह' प्रभावशाली इच्छाओं का प्रतीक है : 'एक भूखे सिंह की तरह मेरी आत्मा दहाड़ती है'। मिथरा की कथा मे सर्प प्रायः सिंह का विरोधी है और इसकी व्यंजना सूर्य और ड्रैगन के परस्पर संघर्ष के आख्यान द्वारा हुई है। 'वृक्ष' और 'अश्व' द्विमुखी कामवृत्ति के द्योतक हैं : इसका महत्व आंशिक मातृ है और आंशिक पितृ है। 'त्याग' का अर्थ है सब प्रकार के बंधनों और सीमाओं से मुक्त हो जाना।

पौराणिक कथानक मे सामान्यतः नायक इरौस और ड्रैगन मरणेच्छा (थैनेटस) का प्रतीक होता है। नायक का ड्रैगन पर विजय पाना इरौस का मरणेच्छा पर अधिपत्य का होना है। प्रेमपुष्प फलित होने के लिये ड्रैगन रूपी मरणेच्छा का संहार नायक-रूपी इरौस द्वारा होना आवश्यक है। वस्तुतः जीवन और मृत्यु के प्रतीक मानवीय विचार और अभिव्यक्ति के हरेक क्षेत्र मे मिलते हैं। फ्रायड के पिछले ग्रंथों मे मानसिक जीवन के संबंध मे प्रमुख

धारणाएँ 'इरौस' और 'थैनेटस' की थीं, क्योंकि उन्होंने यह अनुभव किया कि काम (सेक्स) की धारणा जीवन की सभी क्रियाओं संबंधी सम्पूर्ण शक्ति के प्रतिनिधित्व के लिये पर्याप्त नहीं है। फ्रायड का कथन है : "मैंने इरौस की धारणा के अंतरगत स्वरक्षा तथा जातिरक्षा के वृत्तियों का समन्वय किया है और यह कि मृत्यु अथवा ह्रास की प्रवृत्ति जो अजाने कार्यरत रहती है इनकी विरोधी हैं। वस्तुतः जीवन द्वारा जो चित्र उपस्थित होता है वह इरौस और मरणेच्छा के पारस्परिक सहयोग और विरोध का परिणाम होता है।"[1]

पौराणिक आख्यान क्योंकर और कैसे मनुष्य के मन और इसकी विभिन्न कार्य-पद्धतियों के प्रतीकात्मक परिवर्धन है, इस रहस्य का उद्‌घाटन युग ने सुन्दर ढंग से किया है : "आदिम निवासियों का मस्तिष्क दृश्य अथवा वस्तुनिष्ठ विवरणों मे कम उलझा रहता था; उनमे आदेशात्मक प्रेरणाएँ होती थी, अथवा अज्ञात मन मे सभी अनुभूतियों को बाह्य इन्द्रियों द्वारा आंतरिक स्थल मे लेने की अनियंत्रित इच्छा रहती थी। उनपर सूर्योदय और सूर्यास्त का प्रभाव नहीं पड़ता था; यह वस्तुनिष्ठ प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक घटना के रूप मे भी होना अनिवार्य है—यह कि सूर्य द्वारा ईश्वर का प्रतिनिधित्व हो या उस नायक का जिसका वास अन्य स्थानों मे न होकर मानव के मन मे होता है।" वस्तुतः आदिम निवासी सूर्य की पूजा इस रूप मे नहीं करते थे कि यह एक बाह्य वस्तु है; इनकी पूजा एक अध्यात्म सत्ता के रूप मे होती थी। विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि दैवी सत्ता का निवास-स्थल हरएक व्यक्ति का आंतरिक क्षेत्र है। वस्तुतः प्रकृति के विभिन्न पक्ष—ग्रीष्म, शरद, चाँद, वर्ण, जिनका वृहत् वर्णन पौराणिक कथाओं मे मिलता है—आंतरिक अज्ञात मन के नाटक अथवा प्रतीकात्मक प्रदर्शन मात्र हैं। पौराणिक कथाओं मे अज्ञात मन की विशेषताओं और अंशभूतों की प्रतिच्छाया मिलती है और इनका ज्ञान मानव को व्याख्या के द्वारा होता है। पौराणिक आख्यान मानसिक घटनाओं से संबंधित होती है, इसका उल्लेख युंग ने स्पष्ट किया है। मन मे वे सभी प्रतिमाएँ निहित होती हैं जिनके द्वारा पौराणिक कथानकों की रचना हुई है : "प्रकृति से उपमा देना, जिसका उपयोग आदिम निवासियों ने किया है, प्रमुख रूप से अज्ञात मानसिक क्रिया की भाषा तथा

[1] फ्रायड :—एन औटोबायोग्राफिकल स्टडी

पहनावा है।" आदिम निवासियों को कभी इसका ज्ञान नहीं था : "तुम्हारे ही वक्षस्थल मे भाग्य का सितारा वास करता है।"

विचारणीय प्रश्न यह है कि पौराणिक कथानकों का जनसमूह पर प्रभाव क्योंकर पड़ता है ! इसका मूल कारण है कि जिस अज्ञात मन की अभिव्यक्ति होती है, वह व्यक्ति की सामान्य धरोहर है और इसी से व्यक्ति को अचेतन रूप से पौराणिक कथाओं का प्रतीकात्मक अर्थ स्पष्ट हो जाता है और वह उनसे प्रभावित होता है, यद्यपि चेतन मन मे वह उनकी महत्ता से अनभिज्ञ रहता है। प्राचीन समाज मे पुरातनवाद था। जीवन की परिस्थिति ऐसी थी जिसमे चेतना अथवा अहं के पूर्ण विकास की कम संभावना थी और अधिकांशत: व्यक्ति प्राचीन अज्ञात मन से बाधित थे। पौराणिक आख्यान अचेतन और अतार्किक विचार का स्वत: परिणाम है। प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति का पहला प्रसून होने से पौराणिक आख्यानों मे जिन किन्हीं प्रतीकों का प्रयोग हुआ है उनके द्वारा अन्य क्षेत्रों मे प्रयुक्त प्रतीकों की व्याख्या संभव है। पौराणिक आख्यान अज्ञात मन के मानसिक इतिहास का सच्चा प्रतिनिधि है। इस कारण यह मनुष्य के मन के निचले स्तर के गूढ़ अध्ययन का सबसे उत्कृष्ट माध्यम है।

अतएव मनोविज्ञान का विकास होने पर पौराणिक आख्यानों का पुनर्जीवन भी आवश्यक है। पुनर्जीवन का अर्थ है अभ्युत्थान। प्राचीन साहित्य मे उन सब विषयों, आदर्शों का मानसिक इतिहास छिपा है जो प्राचीन बन गये हैं और विस्मृति गह्वर मे है। मानव के मानसिक इतिहास मे जिन नायक-नायिकाओं और देवी-देवताओं का अस्तित्व नहीं रह गया था उनका अब प्रधान स्थान बन गया है। वैज्ञानिक अध्ययन के लिये मनोवैज्ञानिकों को पौराणिक आख्यानों मे अनेक बहुमूल्य विषय मिलते हैं। आधुनिक प्रकृति प्राचीन की ओर प्रत्यावर्त्तन की है जिससे मानव मन की छिपी निधि मे पैठ हो सके। अज्ञात मन के प्रकृति का ज्ञान हो जाने पर पौराणिक आख्यानों के रहस्य का अनुमान लग जाता है। पौराणिक आख्यान आधुनिक काल मे वैज्ञानिक अध्ययन और मन के निचले स्तर के अन्वेषण के लिये प्रमुख क्षेत्र हैं।

भाषा, दैनिक जीवन और प्रतीकवाद

अब तक स्वप्न, कला, मानसिक रोग और धर्म की प्रतीकात्मक व्यंजना पर प्रवेगवादी मनोविज्ञान की दृष्टि से विचार-विनिमय हुआ है। प्रतीक का प्रश्न भाषा के क्षेत्र मे भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से वृहत् महत्व का है, क्योंकि भाषा मानसिक विकास का प्रथम प्रसून है। अर्थात्, सिमन्स का कथन है: "प्रतीकवाद की उत्पत्ति उस समय हुई जब आदि मानव ने पहले शब्द का उच्चारण जीवित वस्तु के नामकरण के लिये प्रथम बार किया, या उसके पहले स्वर्ग मे जब ईश्वर ने विश्व के अस्तित्व को माना।"[१] चिंतन अथवा विचार के परस्पर आदान-प्रदान के प्रयोजन के लिये मुख्य माध्यम भाषा है। यह भावात्मक अनुभूतियों और इच्छाओं की भी अभिव्यक्ति है और इससे मानसिक जीवन की प्रेरणाओं के बारे मे भी ज्ञान होता है। इसीसे भाषा मनोवैज्ञानिक अध्ययन का मुख्य विषय बनी। योरोपिय चिंतन के विकास मे भाषा का अध्ययन दो दृष्टियों से हुआ है। पहला, यह कि भाषा ध्वनि का समुच्चय है, जिनका अध्ययन ध्वनि-विज्ञान मे होता है। इस अध्ययन मे पदार्थ-विज्ञान और शरीर-विज्ञान पर पर्याप्त बल दिया गया है और ऐतिहासिक दृष्टि से यह भाषा-विज्ञान का प्रमुख अंग है। दूसरे, भाषा विचार तथा अर्थ के संवहन का माध्यम है। पहला अनुमापन भौतिक है; यह अर्थ विज्ञान से स्थानान्तरित किया गया जिसमे प्रमुखतः भाषा मे निहित अर्थ का मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन हुआ है। अर्बन का कथन है: "आधुनिक भाषा-शास्त्रियों के लिये भाषा ध्वनि मात्र नहीं, न यह क्रिया तथा स्पर्श संवेदनाएँ ही है जो ध्वनि और क्रियाओं से उत्पन्न हुई है; यह अर्थ है जो इनसे निर्धारित होता है, किंतु इसका तादात्म्य इनमे से किसी के भी साथ नहीं किया जा सकता।"[२] वस्तुतः अर्थ ही भाषा है और ध्वनि उसकी वाहिका मात्र है। यह ज्ञान और

---

[१] आर्थर सिमन्स :—सिम्बॉलिस्ट मूभमेंट इन लिटरेचर (इन्ट्रोडक्शन)

[२] अर्बन :—लैंग्युवेज एण्ड रिएलिटी, पृष्ठ ६३

भाव की मुख्य अभिव्यक्ति है। इसकी संकेतात्मक तथा भावात्मक दोनों अवस्थाएँ होती हैं। ज्ञान के संबंध मे यह दर्शन का विषय है; भाव के संबंध मे यह मनोवैज्ञानिकों के रुचि का विषय है। साहित्यिक भाषा प्रमुखतः भाव-उद्वेग के लिये प्रसिद्ध होती है।

भाषा मे प्रतीकवाद का सर्वाङ्ग, मुक्त और विस्तृत प्रयोग मिलता है, क्योंकि प्रतीक और जिस वस्तु का यह प्रतीक है और जिस संबंध की ओर संकेत है, उनमे एकीकरण नहीं मिलता। भाषा मे दो तथ्य मिलते हैं: एक तो संकेतक और दूसरा द्योतित। ध्वनि संकेतक है और इससे विचार, भाव इच्छा इत्यादि की जिसकी ओर वास्तविक लक्ष्य होता है, अभिव्यक्ति होती है। वस्तुतः भाषा के लिये दोनों ही पक्ष आवश्यक है। अर्बन का कथन है: "कोई भी अभिव्यक्ति ऐसी नही रहती जिसमे संकेतक तथा जिस ओर सकेन है, ये दोनों पक्ष उपस्थित न हों। इस प्रकार भाषा विवेचनात्मक और प्रतिरूपक है।"[१] व्यवहार के लिये भाषा मे स्थूल माध्यम की आवश्यकता पड़ती है और ऐसे तथ्यों की भी जिन्हें संक्रमित करना है। इन दोनों पक्षों मे निकटवर्त्ती संबंध होता है। शब्द केवल वर्णों का संयोजन नही है; ये प्रतीक हैं। ए० ई० टेलर का कथन है: "मेरे मत मे यह असंभव है कि किसी वास्तविक घटना का वर्णन ऐसे भाषा मे हो जो प्रतीकात्मक न हो। कोई भी भाषा जो ऐसी स्पष्ट न हो जैसे 'बैल', प्रतीकात्मक महत्ता से मुक्त नहीं होती और ऐसी भाषा साधारण और परिचित घटना के वर्णन मे भी असमर्थ होती है।"[२] भाषा प्रतिरूपक है। इसमे दृश्य लक्षणों द्वारा अर्थ का प्रदर्शन होता है। दार्शनिक दृष्टि से भाषा सत्य को प्रतीकात्मक रूप मे साक्षात् करने की प्रवृत्ति का यथार्थकरण है। ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने भाषा को सत्य तथ्य और दृश्य-विषयक के बीच का आवरण माना है और सत्य के वास्तविक रूप को दृष्टिगत् करने के लिये इस आवरण को हटाना आवश्यक है; सत्य जिस रूप मे हो उसकी अभिव्यक्ति उस रूप मे कभी नहीं होती। ह्वाइटहेड ने लिखा है: "शब्द एक प्रतीक है और इसका अर्थ विचार, प्रतिमा और भाव मे जो श्रोताओं मे उद्भूत होता है, निहित रहता है।"[3]

---

[१] अर्बन :—लैंग्युवेज एण्ड रिएलिटी, पृष्ठ ३४८

[२] ए० ई० टेलर :—दि फेथ ऑफ ए मॉरेलिस्ट, पृष्ठ १४१

[3] ह्वाइटहेड :—सिम्बॉलिज़म : इट्स मीनिङ्ग एण्ड इफेक्ट, पृष्ठ २

वस्तुतः भाषा सामान्य और दार्शनिक दोनों ही दृष्टियों से प्रतीकात्मक होती है। विशिष्ट मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भाषा प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्ति की एक पद्धति है। भाषा मे हमे ऐसी व्यवस्था मिलती है जिससे अवांछनीय का प्रत्यक्ष प्रदर्शन नहीं हो पाता। यह तो मानव मस्तिष्क की प्रतीक संबंधी एक विशाल योजना है कि कार्य और वार्तालाप एक प्रकार का हो और उनका अर्थ कुछ और ही हो। प्रतीकात्मक भाषा से अज्ञात भाव तथा इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है। इसी से इसका महत्व विशुद्ध आत्मनिष्ठ है। लैंगर का कथन है: "वास्तविक प्रतीक का निर्माण सहज ही होता है। जब कभी कुछ वस्तु, ध्वनि तथा क्रिया होती है जिसका व्यावहारिक अर्थ नहीं होता, भावात्मक प्रतिक्रियाएँ होती है और इस प्रकार कुछ का अभेद ध्यान आकर्षित करती हैं।"[1] भाषा प्रतीक रूप मे विचार करने की पद्धति है। लैंगर ने प्रश्न किया: "सभी व्यक्ति भाषा का प्रयोग क्यों करते हैं! इसका प्रत्योत्तर मेरे विचार से यह है कि हरएक का स्वभाव बहुत कुछ एक सा रहता है और सम्पूर्ण मानव जाति विकास के उस स्तर पर पहुँची है जहाँ प्रतीक-प्रयोग और प्रतीक-निर्माण मुख्य क्रियाएँ हैं।"[२]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भाषा की प्रतीकात्मक शैली व्यवहार की दृष्टि से बड़े महत्व की है। भाव-विचार के आदान-प्रदान के लिये गणित और कला इत्यादि कुछ अभाषिक माध्यम भी हैं। परन्तु गणित और कला के प्रतीकों का भी अर्थ होता है और इन्हें हृदयगंम करने के लिये इनकी व्याख्यान आवश्यक होती है। विवेचना-व्याख्या (इन्टरप्रिटेशन) के लिये भाषा के अतिरिक्त और कोई माध्यम नहीं होता। अतएव भाषा-विषयक अभिव्यक्ति अभाषिक से अधिक उत्कृष्ट होती है। इसकी पुष्टि करते हुये अर्बन ने लिखा है: "अर्थ का आदान-प्रदान अभाषिक प्रतीकों द्वारा संभव है और यह विज्ञान और कला मे प्राप्य भी है; परन्तु इन प्रतीकों का विकास भाषा द्वारा ही हुआ है और अंत मे इनके लिये भाषा का सहयोग आवश्यक है।"[3] वस्तुतः अर्थ के स्पष्ट आदान-प्रदाव के लिये भाषा ही सर्वोत्कृष्ट अभिव्यक्ति है। इसी का समर्थन सी० आई० लेविस ने भी किया है। भाषा

---

[1] लैंगर :—फिलॉसफी इन ए न्यु की, पृष्ठ ११७

[२] लैंगर :—फिलॉसफी इन ए न्यु की, पृष्ठ १४२

[3] अर्बन :—लैंग्युवेज़ एन्ड रिएलिटी, पृष्ठ २२९

व्यवहार का वह अंशभूत है जो अर्थ की दृष्टि से सबसे अधिक महत्व का है और आदान-प्रदान के लिये वृहत् उपयोगी है। इस कारण विज्ञान तथा कला का यह आक्षेप कि भाषा-विषयक अभिव्यक्तियों का कोई विशेष महत्व नहीं होता और ये केवल परम्परा से आये प्रतीक मात्र हैं, अर्थयुक्त नहीं है।

अब तक यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया कि भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन मे भौतिक और कायिक पक्ष का निरूपण नहीं किया गया है; इसमे अर्थ पर अधिक बल दिया गया है, क्योंकि भाषा का विकास कायिक से मनोवैज्ञानिक स्तर पर हो गया है। भाषा-विषयक विकास की यह मनोवैज्ञानिक अवस्था बड़े महत्व की है, क्योंकि भाषा की कुंजी वस्तुतः मानसिक है। यह भौतिक नहीं है। भाषाशास्त्र के प्रसंग मे मनोवैज्ञानिकों की आस्था सदैव से अर्थ तत्व के अन्वेषण मे रही है। अब भाषा के बारे की यांत्रिक धारणा अवशिष्ट नहीं रह गयी है; यह स्वीकार करना इसके क्षेत्र को सीमित कर इसे भौतिक अध्ययन तक ही संकुचित करना है। यद्यपि भाषाशास्त्र के साहित्य का कुछ अंश ध्वनि और वाणी के इर्द-गिर्द सन्निहित है, तो भी अर्थविज्ञान का अपना महत्व है। वस्तुतः भाषा भाव-विचार का आदान-प्रदान नहीं, बल्कि उनका प्रकाशन है; ध्वनि से अर्थ का अधिक महत्व होता है : "भाषा मे शुष्क, सूक्ष्म दार्शनिक तर्क मात्र नहीं मिलता; इसमे आत्मा के भावात्मक, कलात्मक और रागात्मक अंशों का दिग्दर्शन भी होता है। इसकी व्याख्या तर्कशास्त्र से नहीं, मनोविज्ञान द्वारा ही दी जा सकती है। इसका उद्गम मन के अचेतन, तर्कहीन, अपरिपक्व तथा भावात्मक भाग मे है; यह तर्क, विचार, चेतना और दार्शनिक परिधि मे नहीं होता।"[१] मनोविज्ञान मे सदैव अर्थ और इसके परिवर्त्तनों को मानसिक सिद्धान्तों और नियमों द्वारा ग्रहण करने का प्रयास होता है। शब्द का अर्थ प्रसंग पर निर्भर करता है। इस दृष्टांत मे 'दि ब्रुक्स रन स्विपटली' 'रन' का अर्थ 'दौड़ना' ही नहीं है; इसका संकेत 'जल के प्रवाह' की ओर है। इसी प्रकार एक विशिष्ट प्रसंग मे 'फ्लेयरिंग अप' का मूल अर्थ 'क्रोध' है; इसका तात्पर्य 'अग्नि की लपट' से नहीं है। 'सोता हस रहा है', इस प्रसंग मे 'हसने' का प्रतीकात्मक अर्थ होता है और इससे सोते की मुक्त क्रियाओं और स्वतः प्रेरणा का ज्ञान होता है। वस्तुतः शब्दों का प्रयोग वाच्यार्थ मे नहीं होता और यह विशेषतः साहित्यिक भाषा मे घटित होता है।

[१] हैरिमन :—इनसाइक्लोपीडिया ऑफ साइकॉलजी, पृष्ठ ८४०

आधुनिक साहित्य मे भावात्मक विचलन के प्रसंग मे शब्दों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति प्रचलित है। शब्दों की महत्ता मानव के हृदय के उद्गार तथा स्थायीभावों की उत्कृष्ट चित्रात्मक व्यंजना मे निहित मानी जाती है। विभिन्न भाषाओं मे अनेक शब्द विभिन्न मानसिक आवश्यकताओं, आशा-निराशा, संघर्ष और भाव-ग्रंथियों को निश्चित रूप देने के लिये निर्धारित प्रतीक बन गये हैं। कवि अपनी भाव-ग्रंथियों की अभिव्यक्ति के लिये चित्रमय भाषा का प्रयोग करता है। साहित्य मे 'आँधी' का अर्थ 'तेज हवा' से नहीं होता; इससे आंतरिक हलचल और संघर्ष का बोध होता है। यह शब्द विचलित मानसिक अवस्था का चित्रण करने के लिये उपयुक्त है। 'अंधकार' से तात्पर्य प्रकाश का अभाव नहीं होता; इससे मानव जीवन की विषाद-सूचक अवस्था का चित्रण होता है। जब कभी मानव निराशा की अवस्था मे जीवन की निःसारता प्रकट करना चाहता है, वह अंधकार का चित्र खींचता है। 'अंधकार' अज्ञात मन की 'शैडो' भाव-प्रतिमा का द्योतक है। इसी प्रकार अन्य शब्द भी हैं, जिनसे मनुष्य की अन्य भावात्मक प्रेरणाएँ प्रकट होती हैं। 'सागर' शब्द द्वारा मन की गहराई की अभिव्यक्ति होती है। 'सूर्य की किरण' आह्लाद की अनुभूति का द्योतक है; 'लाल रंग' प्रेम का और 'खिला हुआ पुष्प' यौवन का द्योतक होता है। इसी से साहित्यिक भाषा नाट्कीय मानी गयी है और इनका महत्व वाच्यार्थ मे नहीं रहता। इनसे भावों के उतार-चढ़ाव और जीवन की अभिलाषाओं की व्यंजना होती है, जो व्यक्तिगत नहीं होती; यह पूर्णतः मन संबंधी सामान्य तथ्य है। भाषा जटिल विषय का अध्ययन है। साहित्यिक भाषा यथार्थ मे प्रतीकात्मक होती है। शब्द का यह अर्थ नहीं होता कि इसका प्रयोग परम्परा से किस वस्तु के लिये किया गया है; किस भाव का प्रतिनिधित्व हुआ है, इसका महत्व होता है। शब्दों के रूढ़ व्युत्पत्तियों का अध्ययन करने पर उनके उद्गम का मानसिक महत्व पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है। कोई विशिष्ट शब्द किसी विशिष्ट वस्तु के लिये क्यों प्रयुक्त हुआ और उसका निश्चित अर्थ किस प्रकार निर्धारित हुआ, यह शब्दों की व्युत्पत्ति के विश्लेषण से ज्ञात हो आता है। शब्द आकस्मिक रूप मे नहीं चुने जाते। व्युत्पत्ति की दृष्टि से ऐसे भी शब्द हैं जिनके द्वारा मानव स्वभाव मात्र का चित्रण मिलता है। दृष्टांत के लिये, हिंदी साहित्य मे प्रयुक्त 'मनु' शब्द का विश्लेषण किया जा सकता है। संस्कृत भाषा मे प्रकृत शब्द 'मनस्' है। पुराणों के अनुसार प्रागैतिहासिक

काल मे देव सृष्टि के ध्वंस के पश्चात् अकेले मनु ही बचे थे। 'मनु' शब्द जो 'मनस्' से बना है, मन की प्रभुता का द्योतक है। इसी प्रकार 'कामदेव' शब्द है। 'कामदेव' शब्द से यह मनोवैज्ञानिक तथ्य प्रकट होता है कि मानव व्यक्तित्व मे काम प्रवृत्ति की प्रभुता होती है।

ईर्षा, प्रेम, आह्लाद, इच्छा, अभिलाषा इत्यादि शब्दों का प्रयोग व्यक्ति की संवेगात्मक अनुभूतियों के लिए होता है। इन शब्दों का प्रयोजन मानव की इच्छाओं और भाव-वेदनाओं को संक्षेप मे व्यक्त करना है। इनसे मानव की मानसिक अवस्था का ज्ञान होता है। इस प्रकार साहित्यिक भाषा मात्र मे ही नहीं, शब्द मे प्रत्यक्ष रूप से मानवीय भाव-वेदना सामान्यतः गूथी रहती है। शब्दों मे आरोग्यवर्धक शक्ति होती है। शब्दों द्वारा अज्ञात मन की अभिव्यक्ति हो जाने पर व्यक्ति को अद्भुत शांति और संतोष मिलता है।

भाषा मे कुछ ऐसे भी शब्द हैं जिनकी ध्वनि मात्र से अर्थ का आभास मिलता है। दृष्टांत के लिये, हिंदी भाषा से 'झंकार' और 'झंझा' शब्दों को उद्धृत किया जा सकता है। 'झंकार' ध्वनि है। यह शब्द भावात्मक कोलाहल के लिये है। यह मानस-स्थल की पुकार है। 'झंझा' आँधी है; यह भावात्मक संघर्ष का प्रतीक होता है। मंदिरों के घंटा की आवाज़ से 'जय जय ! ईश्वर तुम्हारा भला करे' प्रतिध्वनित होता है। शंखनाद से उत्साह, शक्ति और साहस प्रतिध्वनित होता है। विकास युग के आदि-काल मे मानव ने लहरों के टकराने की ध्वनि सुनी, वृक्ष के पत्तों को झकोरते हुये तेज वायु की ध्वनि सुनी, ध्वनि से कुछ शब्द निर्देशित हुये और वे अब रूढ़ि हो गये हैं। वस्तुतः ध्वनि ओर उससे अभिव्यक्त भाव मे पारस्परिक संबंध रहता है। ऐसे शब्दों के प्रतीकात्मक अर्थ की व्याख्या करने पर यह स्पष्ट होता है कि ये भावात्मक प्रतिक्रियाएँ हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन करने से यह ज्ञात होता है कि भाषा के उद्गम का प्रयोजन भावात्मक प्रतिक्रियाएँ हैं। जब आदिम निवासियों का साक्षात् कुछ वस्तुओं से हुआ और उनका उनपर प्रभाव पड़ा, उनके मुंह से भावात्मक ध्वनियाँ निकलीं और इसी क्रम से भाषा का विकास हुआ। यह केवल भावात्मक क्रंदन था, एक आत्मा की दूसरी आत्मा के लिये पुकार थी जिसने परम्परागत शब्द का रूप धारण कर लिया। सामान्यतः भाषा

ध्वनि की योजना ही है जिसके द्वारा भय, क्रोध, प्रेम तथा अन्य संवेगों की अभिव्यक्ति होती रहती है और इसका संवेगात्मक महत्व भी है। अर्बन का कथन है : "हमे यह ध्यान रखना है कि शब्दों का केवल भावात्मक अर्थ मानना और जिनसे किसी वस्तु का संकेत, प्रतिनिधित्व, प्रसंग या प्रतीकीकरण न हो, व्यर्थ की बात है और यह कभी भी भाषा-शास्त्रियों द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा नहीं हो शकती।"[1] लैंगर ने इसका अनुमोदन किया है। उन्होंने यह दृष्टांत दिया है कि बहते हुये सोते को देखकर ही जल का संबोधन हुआ है; जल का संबोधन प्यासा होने पर नहीं किया गया है। तब भी भाषा की उत्पत्ति और उसके ध्वन्यात्मक गठन पर विचार करते समय संवेगात्मक पक्ष की ओर ध्यान न देना असम्भव है। वर्तमान युग मे शब्दों से किन प्रवेगों की अभिव्यक्ति होती है, इस ओर मानव का झुकाव विशेषतः होता है। यह विशेषता आदिम भाषा की भी है। शब्दों के बाह्य महत्व की पीठिका मे आंतरिक महत्व निहित रहता है। साहित्यिक भाषा का विकास मानव के मानसिक क्षेत्र मे छिपी भाव-ग्रंथियों पर आधारित है। वस्तुतः भाषा का अर्थ और महत्व समझने के लिये भावात्मक और बोधात्मक दोनों पहलुओं की ओर ध्यान रखना है। ये भाषा के अखंड पक्ष, अंशभून हैं।

भाषा की उत्पत्ति भाव के आदान-प्रदान की आवश्यकता और दूसरों पर प्रभुता जमाने की इच्छा मे सन्निहित होती है। यह आदिम मन है जिससे भाषा को एक रूप मिला है। वस्तुतः भाषा अत्यधिक महत्वशाली वृत्ति है; जब आभ्यन्तरिक क्षेत्र मे कोलाहल की अनुभूति हुई, शब्द स्वतः निर्मित हुये। मनुष्य स्वभाव से भाषा का निर्माणक है। यर्कस् और इटार्ड का भी यही मत है कि भाषा मानव का प्रकृत स्वभाव है और इसका प्रमाण गूंगे-बहरे के संकेत हैं। अनुकरण की प्रवृत्ति, शब्दों मे विशेष रुचि, और अभिव्यक्ति के लिये विशेष संवेदन-शीलता के होने पर ही उपयुक्त रूप से भाषा-संबंधी अन्तर्दृष्टि कार्यरत होती है। लैंगर के दृष्टिकोण से व्यक्ति मे शब्दावली और वाक्यों के प्रयोग करने की विशेष जन्मदत्त प्रतिभा नहीं होती। उन्होंने स्पष्ट लिखा है : "'यद्यपि बचपन मे बिना किसी प्रयास और शिक्षा के भाषा का ज्ञान होता है, तथापि यह सीखने का विषय है। इसका विकास शिक्षा से होता है,

---

[1] अर्बन :—लैंग्युवेज एण्ड रिएलिटी, पृष्ठ १३६

यह कला है जो एक वंश से दूसरे वंश मे संक्रमित होती है। शिक्षक के न होने पर यह विशिष्ट गुण नही प्राप्त होता।"[1]

भाषाशास्त्री जेसपर्सन ने इसपर विशेष बल दिया है कि प्राचीन आदिम समाज मे भाषा संगीत के रूप मे थी। वर्त्तमान की तुलना मे प्राचीन भाषा अत्यधिक भावात्मक थी। सम्यता-संस्कृति के कृत्रिम जीवन के होने से मानव की संवेदनशीलता मे न्यूनता आ गयी है। संभवत. इसी से जेसपर्सन ने यह निष्कर्ष निकाला कि विकास के आदि युग मे मनुष्य संगीत मे बोलता था। वर्त्तमान मे भाषा की विशेषता संक्षिप्ती की है। जिस प्रकार धर्म के क्षेत्र मे बहुदेव पूजन के स्थान पर अद्वैतवाद की ओर झुकाव है, भाषा मे भी बहु-अक्षरी के स्थान पर एकाक्षरी की ओर प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। सांस्कृतिक और धारणात्मक चिन्तन के विकास के साथ ही साथ भाषा का विकास हुआ है। सूक्ष्म स्तर पर विचार-विनिमय करने की प्रवृत्ति मानव मे प्रारम्भ से रही है; अतएव स्वभावतः अनेक सूक्ष्म धारणाएँ निर्मित हुयीं, जिनसे नये विचारों का प्रदर्शन होता है। सामान्यतः स्थूल से सूक्ष्म की ओर मोड़ होता है; सूक्ष्म से स्थूल की ओर असाधारण-सा है। किंतु भाषा की यह विशेषता है कि इसमे सूक्ष्म से स्थूल की ओर प्रायः मोड़ मिलता है। 'धारणा' (कन्सेप्ट) सूक्ष्म होती है; व्याख्या के पश्चात् इसमे स्थूल अर्थ समाविष्ट होता है। ब्लूमफील्ड ने लिखा है: "अर्थ विज्ञान का अध्ययन बाह्य स्तर पर करने पर यह दृष्टिगत होता है कि सुसंस्कृत और सूक्ष्म अर्थ अधिकतर स्थूल अर्थ से उत्पन्न होता है। इससे व्युत्पत्यात्मक तुलनाओं के बारे मे निर्णय देने के लिये कुछ संभावनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है।"[2] भाषा का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने का अर्थ है—सूक्ष्म धारणाओं की पृष्ठभूमि मे स्थूल अर्थ का अन्वेषण करना।

भाषा विशेष अर्थयुक्त होती है। अर्थ प्रकृत और वृत्यात्मक होता है और इन अर्थों का संकेत संकेतक मे सन्निहित रहता है। मानव समाज मे भाषा तरल ध्वनि है और शब्द प्रदर्शनात्मक संकेत है। जिस वस्तु की ओर संकेत है, वह गौण है; भाषा मे प्रधानता भाव की ही रहती है। किसी वस्तु

---

[1] लैंगर :—फिलॉसफी इन ए न्यु की, पृष्ठ १०८

जेसपर्सन :—लैंग्युवेज

[2] ब्लूमफील्ड :—लैंग्युवेज

के विषय मे ज्ञान होने का अर्थ है कि यह एक प्रकार का भाव-प्रकाशन बन गया है।

भाषा का अस्तित्व मौखिक समुदाय मे है; इसका निज का अस्तित्व नहीं है। जिस प्रकार कलात्मक रचना के समय कलाकार पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं रखा जा सकता, उसी प्रकार भाषाशास्त्री भी सभी प्रकार के नियंत्रण से मुक्त होते हैं। अर्थ संबंधी वैज्ञानिक नियम ऐसी कोई वस्तु नहीं है। इसका यह अर्थ नहीं कि भाषा अव्यवस्था मात्र है; कला की तरह इसमे लयात्मक व्यवस्था होती है। अज्ञात भाव-कल्पना के प्रदर्शन मे कलाकार क्रम-व्यवस्था का प्रतिपालन करता है, क्योंकि अज्ञात मन का अपना नियम है और इसमे भी लय है। भाषा मे भी तर्क-व्यवस्था रहती है और इसमे सार्थक धारणाओं का योग रहता है। अतएव अर्थविज्ञान मे सब प्रकार के आकस्मिक परिवर्त्तन होते हुये भी भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से बोधगम्य है। मनुष्य वक्ता या भाषा के रचयिता के रूप मे गणितज्ञ, तर्कशास्त्री और विद्वान नहीं होता। वह एक कलाकार है—भावनापूर्ण, इच्छुक, आकांक्षाओं और स्वप्नों से परिप्लावित प्रयासमय प्राणी भी है: "भाषा कलात्मक रचना भी है; यह विभिन्न धारणाओं और भावों का प्रदर्शन है। यह विभिन्न सामाजिक अवस्थाओं का आध्यात्मिक परिणाम है। व्यक्ति केवल सामाजिक आदान-प्रदान के लिये ही नहीं, सुख और विश्राम के लिये भी भाषा का प्रयोग करता है।"[१]

भाषा स्थिर और निरपेक्ष है। इसका सामन्जस्य भाषा की इस विशेषता से नहीं होता कि यह ज्ञान का यंत्र है। भाषा के स्थिर होने पर नये अर्थों ओर प्रसंगों का आदान-प्रदान असंभव है। भाषा परिवर्तनमूलक और प्रवेगशील है, यह विशेषता भी नहीं मानी जा सकती। ऐसी परिस्थिति मे भाषा का अर्थ निरंतर परिवर्त्तित होता रहता। अर्बन का कथन है: "यह केवल प्रमुखता और अग्रता का प्रश्न रहता है और यह स्पष्ट है कि परिवर्त्तन और अबाधकता को प्रथम स्थान देना चाहिये।"

भाषा का प्रश्न दार्शनिक है। आदिकाल से यह दर्शन का विषय रहा। ग्रीक दार्शनिक प्लेटो के समय से शब्द और वस्तु, नाम और वस्तु का संबंध दार्शनिक वाद-विवाद का विषय रहा। इस संबंध मे मनोविश्लेषण के अनुसंधान विशेष उल्लेखनीय हैं। मनोविश्लेषकों ने बहुत से शब्दों का विश्लेषण

---

१ हैरिमन :—दि इन्साइक्लोपीडिया ऑफ साइकॉलजी, पृष्ठ ८५६

किया और यह निष्कर्ष निकाला कि भाषा मे कामात्मक प्रतीकों की प्रचुरता होती है। स्वीडन के प्रसिद्ध दार्शनिक और भाषाशास्त्री एच० स्परबर ने प्रतिपादित किया कि भाषा के प्रारम्भिक और उत्तरकालीन विकास मे कामेच्छा का प्रमुख स्थान रहा है। प्रारम्भिक भाषा का प्रयोग साथी के आवाहन के लिये किया गया। यह प्रेमावाहन मात्र था और इस प्रकार भाषा प्रारम्भ से काम-मूलक महत्व की थी। इसके पश्चात् भाषा का विकास कार्य के प्रसंग मे हुआ। कार्य के लिये जिन शब्दों का प्रयोग हुआ उनके दो अर्थ थे : एक, कामुक क्रिया; दूसरे, उस कार्य-विशेष की ओर संकेत। मनोविश्लेषण के समर्थक अर्नेस्ट जोन्स ने भाषा पर विचार-विमर्श करके यह स्पष्ट किया कि भाषा का विकास होने पर शब्दों का प्राथमिक अर्थ विस्मृत हो गया और शब्दों का प्रयोग कामुकता से मुक्त हो कार्य मात्र के लिये होने लगा। अतएव भाषा के उद्गम के प्रसंग मे काम (सेक्स) की महत्ता लोप-सी हो गयी। जेसपर्सन ने भी यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि किस प्रकार शब्दों का प्रकृत और वास्तविक अर्थ धीरे-धीरे लोप होता गया और एक नवीन अर्थ समन्वित हुआ। दृष्टांत के लिये, अंग्रेजी के 'बीड' शब्द का प्रयोग मूल मे 'प्रार्थना' के लिये है; अब इसका प्रयोग शीसे या अम्बर के सुराख के गोलक के लिये किया जाता है।[1] किंतु मनोविश्लेषकों की तरह जेसपर्सन ने यह दर्शाने का प्रयास नहीं किया है कि शब्दों का स्रोत काम-वस्तु और काम-संबंध मे है। यह प्रवृत्ति मनोविश्लेषकों की है कि उन्होंने भाषा का उद्गम और विकास काम-इच्छा मे निहित किया और इस प्रकार भाषा की उत्पत्ति की कामात्मक व्याख्या की है। ग्रीस और प्राच्य भाग मे 'प्लाऊ' शब्द का प्रयोग अभी भी काम-क्रिया के लिये होता है। 'उपज' और 'ऊसर' शब्दों का प्रयोग पौधा और मानव जाति दोनों के ही प्रसंग मे होता है। मनोविश्लेषण मे उद्गम के संबंध मे तीन समस्याएँ मुख्य रूप से उठाई गयी हैं : पहला, शब्दों का मूल महत्व किस प्रकार भूलता जा रहा है; दूसरे, यह कैसे संभव है कि उन शब्दों का, जो काम मूल्य के हैं, प्रयोग ऐसे क्षेत्रों मे हो जो अकाम हो; तीसरे, किस प्रकार अधिकांश शब्दों का प्रयोग उद्गम से ही काम-वस्तु और संबंधों के ही प्रसंग मे होता रहा है। मनोविश्ले-षण के भाषा-विषयक सिद्धांन्त पर काम-भाव को एक मात्र महत्ता देने के

---

[1] जेसपर्सन :—लैंग्युवेज, पृष्ठ १७५
ईजोन्स :—पेपर्स ऑन साइकोएनिलिसस

कारण आक्षेप हुआ। भाषा की उत्पत्ति मे अन्य प्रवृत्तियाँ भी प्रेरक रूप मे सक्रिय रह सकती हैं, भले ही संस्कृति के क्षेत्र मे आन्दोलन का बृहत् कारण कामवृत्ति ही रही हो। भाषा के प्रतीकों की व्याख्या प्रत्येक प्रवृत्ति के प्रसंग मे आवश्यक है।

भाषा की तरह दैनिक क्रियाएँ भी आकस्मिक और अप्रयोजनशील दृष्टिगत होते भी प्रतीकात्मक होती हैं। स्वप्न, कला, धर्म और मानसिक रोग के विवरण के प्रसंग मे यह विवादस्पद नहीं है—यह कि ये अज्ञात भाव-ग्रंथियों के प्रदर्शन हैं। जब फ्रायड ने साधारण सरल आकस्मिक घटना की व्याख्या अज्ञात इच्छाओं के प्रसंग मे देना प्रारंभ किया, तब विवाद उठा। फ्रायड द्वारा प्रतिपादित कार्य-कारण सिद्धांत स्वतः विवाद का विषय नहीं है; यह सर्वत्र मान्य है। मानसिक क्षेत्र मे कार्य-कारण का संबंध भौतिक क्षेत्र की ही तरह कार्यरत होता है; विभिन्न वस्तुएँ स्वतंत्र, अनिश्चित और असंबंधित नहीं होतीं। यह वैज्ञानिक सत्य है। सभी घटनाएँ ऐसे विचार-शृंखला और रुचि पर निर्भर करती हैं, जो विशेष भावात्मक महत्व की होती है। चेतन इच्छानुगत भाव की सहायता से मानसिक क्रिया-व्यापार और अनुभूति की व्याख्या सहज ही दी जा सकती है। इसी प्रकार कुछ ऐसे क्रिया-व्यापार हैं जिनकी व्याख्या अज्ञात स्तर के प्रसंग मे होती है; ज्ञात स्तर के प्रसंग मे नहीं होती। अतएव मानसिक क्षेत्र मे कार्य-कारण संबंध निरंतर निरपवाद मिलता है। यह स्थापित होने पर कि कार्य-कारण का संबंध मानसिक क्षेत्र मे भी अनिवार्य होता है, हमे उन मानसिक क्रिया-व्यापार मे निहित प्रयोजन को ढूढ़ना होगा जो सामान्यतः आकस्मिक प्रतीत होती हैं और जिनकी ओर ध्यान नहीं जाता।

यह कि मानसिक क्षेत्र मे कोई घटना आकस्मिक नहीं होती, कार्य-कारण सिद्धांत से बंधी होती है और इससे छिपी गूढ़ स्तर की मानसिक कार्य-पद्धतियों की अभिव्यक्ति होती है, पहले-पहल फ्रायड के निबंध 'साइकिकल मिकैनिजम ऑफ फॉरगेटफुलनेस' मे प्रकाशित हुआ। दृष्टांत के लिये, सामान्यतः डाकघर मे पत्र डालना भूल जाना स्मृति-दोष के कारण होता हे। किंतु वैज्ञानिक दृष्टि से इसका कारण कुछ और है। विस्मृति का कारण व्यक्ति मे संस्थापित करने की इच्छा का अभाव होता है। संभव है उसमे उस व्यक्ति, वस्तु, या घटना के लिये अचेतन मे घृणा-भाव हो, अथवा नाम या व्यक्तित्व अतीत

की कुछ ऐसी दु:खभरी अनुभूतियों से संबंधित हो जिसे वह व्यक्ति स्मृति मे न लाना चाहता हो। मित्र द्वारा उपहार मे मिली पुस्तक इधर-उधर रखने का अर्थ है कि उसमे उस व्यक्ति-विशेष के प्रति 'द्विभाव' है और उस उपहार के लिये उसके मन मे कोई श्रद्धा नही है।

फ्रायड का ग्रंथ 'साइकोपैथॉलजी ऑफ एवरीडे लाइफ' सामान्य दैनिक व्यवहार का अध्ययन है। किसी व्यक्ति के नाम का विस्मरण, शब्दों को क्रम मे न रखना, पठन-पाठन मे कुछ शब्दों की स्मृति का न रहना, बचपन की कुछ विशिष्ट स्मृतियों का सजग रहना, कुछ कार्य करने मे त्रुटि का होना, निश्चित करके कार्य न करना—ये सब दैनिक क्रियाएँ है और नित्यप्रति के व्यवहार मे दृष्टिगत होती है। किन्तु फ्रायड के पहले इन सबकी महत्ता के विश्लेषण का प्रयास नहीं हुआ था। फ्रायड ने अपनी पैनी दृष्टि से इन सबके प्रतीकात्मक स्वरूप को पहचाना और यह स्थापित किया कि ये मन की युक्तियाँ है। यह फ्रायड का अपना निजी अनुभव था। एक बार फ्रायड ने एक कुशल भित्ति-चित्र के कलाकार का नाम स्मरण करना चाहा। उन्हें उसके स्थान पर दो अन्य नाम स्मरण हो आये। यह अन्त:परिवर्त्तन का परिणाम नही था। इसका संबंध अतीत की कुछ दर्दभरी घटना से था। मौलिक प्रश्न है कि विस्मरण अथवा स्मृति मे त्रुटि होने का क्या अर्थ होता है? विस्थापन मस्तिष्क की आकस्मिक क्रिया नही; यह निश्चित मानसिक कारणों से घटित होता है। जब कभी विस्मरण की अवस्था के मूल कारण के विश्लेषण का प्रयास किया जाता है, कुछ विशेष प्रकार की मानसिक अवस्थाएँ क्रियमाण मिलती है: एक, यह कि नाम की विस्मृति मनुष्य के अचेतन मन की क्रिया है, भले ही स्मृति मे लाने का प्रयास चेतन मे होता रहे; दो, इसमे घटना के पूर्व दमन की पद्धति निश्चय ही कार्यरत रहती है; तीन, उस नाम और दमित सामग्री मे बाह्य संबंध स्थापित रहता है। अतएव इससे यह स्पष्ट है कि नाम की विस्मृति निरर्थक नहीं है।

ब्रिल ने एक रोचक दृष्टांत[1] दिया है। उन्होंने एक केस की संक्षिप्ति बनाने का प्रयास किया जिसमे उनकी अपनी रुचि थी और वर्षों से अध्ययन किया था। संक्षिप्ति बनाते समय ब्रिल को रोगी का नाम स्मरण न हो सका।

---

[1] फ्रायड :—साइकोपैथॉलजी ऑफ एवरीडे लाइफ

निराश होकर वह सो गये। फ्रायड के अनुसंधानों के बारे मे ब्रिल ने पर्याप्त अध्ययन किया था और इसी से उनके मन मे यह विचार उठा कि यह विस्मृति किसी दु:खभरे अनुभव से संबंधित है। यह निदान कि रोग इपीलेप्सी का है, ब्रिल ने पहले-पहल किया था। रोगी उपचार द्वारा स्वस्थ भी हो गया। मित्रों ने ब्रिल को बधाई दी और सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उसे यह विश्वास दिलाया कि इस नये अनुसंधान की सूचना मेडिकल सोसाइटी को दे दी जायगी। ब्रिल ने कठिन प्रयत्न किया था और उसने चाहा कि यह ऐसे रूप मे प्रेषित हो कि यह उसका एक नया अन्वेषण है। सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उसे इस लेख के पठन की आज्ञा दी। सबने यह विचारा कि यह लेख सुपरिण्टेण्डेण्ट की मौलिक रचना है और वह पठन मात्र के लिये नियुक्त किया गया है। ब्रिल बहुत उदास हुआ; उसके पास कोई साधन नहीं था। उसने अपनी वेदना के भाव को दबा दिया था। प्रात: पाँच बजे सूर्योदय के समय ब्रिल को नाम स्मरण हो आया। इसी बीच अन्य कई घटनाएँ सजग हो गयीं। उसके मस्तिष्क मे यह चित्र घूमता रहा 'देखें! मुझे खरगोश मिलता है'। खरगोश पाने मे असफल होना, केस से परित्यक्त होना इंगित होता है। आंतरिक अवरोध के कारण ब्रिल रोगी का नाम स्मरण न कर सका। उसकी आत्मप्रतिष्ठा की इच्छा को ठेस लगी थी। इसी से रोगी का नाम स्मरण करने के स्थान पर उसे उस घटना का स्मरण हो आया जो वस्तुत: उसके अचेतन दमित प्रतिष्ठा की इच्छा का प्रतीकात्मक प्रदर्शन है। स्वभावत: अचेतन क्रियाएँ सदैव चालित रहती हैं।

फ्रायड ने एक अन्य रोचक दृष्टांत दिया है। एक स्थान जो नर्वी नाम से विख्यात था, उन्हें स्मरण न रहता। इसका मूल कारण था कि स्नायु रोगियों का उपचार करना उनका अपना व्यवसाय था और इस प्रकार यह नाम उनके व्यक्तिगत भाव-ग्रंथि से संबंधित था। युंग ने एक दृष्टांत का उल्लेख किया है। मिस्टर 'वाई' का आकर्षण किसी स्त्री की ओर था जिसने अपना विवाह मिस्टर 'एक्स' से कर लिया। मिस्टर 'एक्स' और 'वाई' मे मित्रता थी और परस्पर लेन-देन और व्यापार होता था। विवाह की घटना के पश्चात् मिस्टर वाई प्राय: मिस्टर एक्स का नाम भूल जाते। कभी-कभी तो उनका नाम उसे अन्य व्यक्तियों से पूछना पड़ता।

जो कार्य-पद्धति इस प्रसंग मे सक्रिय है, वही शब्दों की विस्मृति मे भी सजग होती है। भेद यह है कि इन दृष्टांतों मे कुछ आभ्यन्तरिक विशिष्ट

कारण सक्रिय होते हैं जिनसे बाध्य होकर विस्मरण होता है। शब्दों को क्रम से पुनः स्मरण न कर सकने का एक रोचक दृष्टांत ब्रिल ने दिया है। एक स्त्री ने कीट्स की 'ओड टु अपोलो' कविता का पुनरावाहन करना चाहा। उसने अनेक त्रुटियाँ की और शब्दों को इधर-उधर रखा। इससे यह इंगित होता है कि वह जिस कविता को स्मरण करना चाहती थी, वह उसके व्यक्तिगत अज्ञात भाव-ग्रंथि से संबधित थी। उसका आकर्षण एक युवक की ओर था जो उससे खूब प्रेमालाप करता था। अकस्मात् एक दिन उसे समाचार मिला कि उसके 'प्रिय' ने अपना विवाह एक धनाढ्य स्त्री से कर लिया है। उसने अपने प्रेम के भाव को दमित कर दिया और उसे भुला देना चाहा। किंतु प्रयास करने पर भी वह उसकी रेखा अचेतन स्तर से न मेट सकी, यद्यपि चेतन स्तर पर स्मृति अवशेष नही थी। इसी से जब वह उस कविता की, जो युवक के नाम से संबधित थी, पुनरावृत्ति का प्रयास करती, तमाम भूलें कर बैठती जो वस्तुतः उसके अज्ञात मन के कोलाहल के फलस्वरूप होतीं। यह कविता व्यक्तित्व के अतिसंकल्पित कार्य-पद्धति (ओवरडिटरमिनेशन) का दृष्टात है। प्रिय से धोखा मिलने पर ऐसी अद्‌भुत प्रतिक्रियाएँ स्वाभाविक है। इससे अचेतन स्तर के अवरोध का आभास मिलता है। इसी प्रकार एक व्यक्ति ने अंग्रेजी की कविता 'ए पाइन ट्री स्टैन्डस् अलोन' की पुनरावृत्ति करना चाहा। वह 'ह्वाइट शीट' तक आकर रुक जाता। इसका कारण यह था कि अचेतन मे उस व्यक्ति ने अपना एकीकरण पाइन वृक्ष से कर लिया था जिसपर एक श्वेत चादर पड़ी थी। अज्ञात मन मे श्वेत चादर मृत्यु का प्रतिरूप होती है और यही कारण था कि उसे आगे की पंक्तियाँ स्मरण न हो सकीं।

अतएव सभी प्रकार का विस्मरण अज्ञात मन मे भावात्मक जटिल संबंधों के निर्मित होने के कारण होता है। पिछली अज्ञात स्मृतियों के होने से जो भाव के रूप मे सक्रिय और विद्यमान हैं, व्यक्ति प्रयास करने पर भी पुनरावाहन करने मे असफल होता है। इसका कारण सदैव मानसिक होता है; शारीरिक नहीं होता। विस्मरण का संबंध व्यक्तिगत, पारिवारिक और व्यावसायिक भाव-ग्रंथियों से होता है। समग्र रूप से ये 'आत्म-प्रसंग' प्रकार की भाव-ग्रंथियाँ हैं और विद्रोह करने वाले तथ्यों मे सबसे अधिक प्रभावशाली है। इसकी यथार्थता फ्रायड, ब्लुलर, युंग और रिकलिन आदि सभी मनोवैज्ञानिकों ने स्वीकार किया

है। एडलर का कथन है कि किसी भी व्यक्ति की स्मृति उसकी 'जीवनशैली' से बहुत प्रभावित रहती है। विस्मरण इन्डोसाइकिक संघर्ष की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। इसलिये नाम और घटनाओं का विस्मरण मानव-स्वभाव के भाव-ग्रंथियों की व्यंजना है और यह क्रिया कार्य-कारण के नियम से संचलित रहती है। इसकी पृष्ठभूमि मे मानसिक इच्छागत भाव समन्वित रहते हैं।

प्रवंचक स्मृतियों (कन्सीलिंग मेमरीज़) मे बाल्यकाल की कुछ सजग और सजल घटनाएँ कार्यरत रहती हैं। इनका भी विशेष मानसिक महत्व होता है और इनका संबंध निग्रहीत विचार-भावों से रहता है: "इनका अपना अस्तित्व नहीं होता। अन्य निग्रहीत इच्छाओं से संबंधित होने के कारण इन्हें 'प्रवंचक स्मृतियां' कहना अधिक उपयुक्त है।"[1] विशेष महत्व के अन्य चिह्नों के ये स्थानापन्न हैं, जिनका अवरोध के कारण प्रत्यक्ष पुनरावाहन संभव नहीं होता: "चौबीस साल के नवयुवक को पांच वर्ष की उम्र से यह स्मृति बनी रही कि उसे 'एम' और 'एन' वर्णों के भेद समझने मे कठिनाई पड़ी।" यह सार्थक स्मृति उसके बचपन की 'उत्सुकता' की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। वस्तुतः 'एम' (M) और 'एन' (N) के भेद को समझने की उत्सुकता लड़के और लड़की के भेद को समझने की उत्सुकता का प्रतीकात्मक प्रदर्शन है। एडलर ने लिखा है: "स्मृति कैसी भी महत्वहीन हो, उससे विशेष महत्व की घटना की अभिव्यक्ति होती है।" जीवन से संबंधित होने के कारण विशिष्ट घटनाओं की स्मृति का विशिष्ट महत्व होता है। फ्रायड के अनुसार बचपन की स्मृतियाँ कामुक उत्सुकताओं के ही परिणाम मे होती हैं। फ्रायड ने शैशव काम-सिद्धांत के आधार पर बचपन की स्मृतियों का अर्थ लगाया है। किन्तु यह मान्य नहीं कि बचपन की उत्सुकता का संबंध स्वभावानुकूल कामेच्छा से ही होता है। बालक की उत्सुकता गूढ़ दर्शन और विज्ञान के प्रसंग मे भी समझी जा सकती है।

प्रवंचक स्मृतियों से अधिक प्रचलित लेखन और पठन संबंधी त्रुटियाँ हैं। त्रुटियाँ मानसिक अवस्था मे समन्वय स्थापित करने के उत्कृष्ट साधन हैं। दृष्टांत के लिये, किसी गोष्ठी मे 'उद्‌घाटन' के स्थान पर 'समाप्त' कहने की त्रुटि ली जा सकती है। यह दृष्टांत दो विपरीत शब्दों के उलट-फेर का

---

[1] फ्रायड :—बेसिक राइटिंगस् ऑफ सिग्मण्ड फ्रायड, पृष्ठ ६२

ही केवल द्योतक नहीं है, बल्कि इससे अचेतन इच्छागत भाव अथवा सामान्य मानसिक इच्छाओ का पता लगता है जो भाषण के विरोध मे थीं। इसी प्रकार एक लड़की 'अर्नेस्ट' शब्द पर भटकती थी। 'अर्नेस्ट' उसके प्रिय का नाम था और यह उसके अचेतन को स्पर्श करता था। डॉक्टर का 'क्युरेबुल' के स्थान पर 'ड्युरेबुल' कहना इस तथ्य का द्योतक है कि रोगी के स्वस्थ होने की संभावना कम है। 'पिल' के स्थान पर 'बिल' शब्द का उच्चारण—डॉक्टर की लोलुपता का द्योतक है। अनजाने मे एक मेहमान ने बातचीत के रफ्तार मे कहा : "टेडी के बारे मे तुम जो कहो, उस पर भरोसा किया जा सकता है। वह सदैव 'स्क्वायर मील' देता है।" उसने भूल से 'स्क्वायर डील' के स्थान पर 'स्क्वायर मील' कह दिया। अतिथिगण ठहाका मार हंस पड़े; वक्ता और मेजबान दोनो ही आश्चर्य-चकित हो उठे।

'निश्चित करके किसी कार्य को संपादित न करना' भी इच्छागत भाव से संबधित होता है। वस्तुत: इसका कारण अचेतन स्तर की अरुचि होती है। बर्नाडशा के नाटक सीज़र और क्लियोपेट्रा मे सीज़र क्लियोपेट्रा से बिदाई लेना भूल गया। यह क्लियोपेट्रा के प्रति विमुख होने का लक्षण था। एक सजग युवती को पत्र लिखने की ओर की विमुखता स्मृति-दोष के कारण नहीं होती; वस्तुत: यह विमुखता उसके निग्रहीत प्रेम की परिचायिका है।

दैनिक जीवन के सामान्य व्यवहार मे भी त्रुटि द्वारा एक विशेष मानसिक विचार-भाव का प्रदर्शन होता है। फ्रायड ने अपने व्यक्तिगत अनुभव से कुछ दृष्टात दिये हैं। उन रोगियों के निवास स्थान पर जिनसे विशेष परिचय था, वे प्राय घंटी न बजाकर जेब से चाबी निकालते। यह उस व्यक्ति के प्रति घनिष्टता और सम्मान के भाव का सूचक है। फ्रायड के समर्थक जोन्स ने भी अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर यह दृष्टांत दिया कि वे प्राय: अपने डेस्क की चाबी से प्रयोगशाला का ताला खोलने का प्रयास करते थे और ऐसा तभी होता था जब उनकी इच्छा घर छोड़कर प्रयोगशाला जाने की नहीं रहती थी : "कुछ वर्ष हुये मै एक संस्था मे किसी के अधीनस्थ कार्य करता था। उसका आगे का दरवाजा सदैव बंद रहता था और इससे अंदर प्रवेश करने के पहले घंटी बजानी पड़ती थी। कई बार मै अपने मकान की चाबी से दरवाजा खोलने की कोशिश करता रहा। सभी स्थायी सदस्यों के पास

चाबी रहती थी और इस तरह उन्हें रूकना नहीं पड़ता था। मेरी त्रुटि वास्तव मे बराबरी के दावा और घनिष्टता की इच्छा का द्योतक है।"[1]

चीनी और काँच के बर्त्तनों का टूटना आमतौर से लापरवाही का लक्षण माना जाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह ठीक नहीं है। यह तो अज्ञात मन की योजना अथवा एक प्रकार की हिस्टीरिया है। हस्त कुशलता के अभाव मे ही ऐसा नहीं होता; इसका मूल कारण जीवन से असंतोष होता है। मारबल. बीनस, कमल, खिलौने, दावात इत्यादि का टूटना आंतरिक असंतोष के सूचक हैं। अमंगल से बचने के लिये पवित्र भाव से यह ईश्वरार्पण है। दैनिक जीवन मे वस्तुओं का गिरना, उलट जाना और टूटना एक प्रकार का अंधविश्वास है कि यह अमंगल सूचक है। संशय की भी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि होती है। विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट है कि संशय अज्ञात मन के विचार-भाव की अभिव्यजंना है। संदेह की शिकायत प्रायः उन्हीं व्यक्तियों को होती है जिनके निचले स्तर पर अपराध भाव छिपा रहता है। अज्ञात मन मे अपराध भाव होने से उन्हें भय होता है और इसीसे उनकी मनोवृत्ति साधारण नहीं रह जाती। वस्तुत. ऐसी प्रक्रियाओं से अज्ञात मन का रहस्योद्घाटन होता है। अपराध-भाव ही नहीं, बल्कि यह ईर्षा भाव का भी द्योतक होता है। इससे स्वामी के प्रति परोक्ष शत्रुता व्यक्त होती है। अप्रत्यक्ष शत्रुता कभी-कभी भयंकर त्रुटि का कारण बन जाती है। ब्रिल ने एक अच्छा दृष्टात दिया है: भूल से एक रोगी को बड़ी खुराक 'डिजिटैलिस' दे दी गयी और इससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गयी। यह त्रुटि आकस्मिक नहीं थी; गहरी शत्रुता और क्रोध के परिणाम मे थी। अकड़कर या दिखावटी ढंग से चलना-फिरना एक प्रकार से कामात्मक संतुष्टि है जिसकी ओट मे कामुक भावनाएँ छिपी रहती हैं।

इसी प्रकार 'लाक्षणिक क्रियाएँ' (सिम्पटोमैटिक एक्टस्) भी साधारणतः प्रयोजनयुक्त नहीं मानी जातीं। घड़ी से खेलना, पेंसिल घसीटना, बटन खोलना और बंद करना, रोज नये-नये रंग के कपड़े पहनना, जेब मे पैसा खड़खड़ाना, स्नानागार मे गुनगुनाना आदि अनेक दृष्टांत हैं। ये क्रियाएँ यांत्रिक रूप से मुख्यतः हाथ फंसाये रखने मात्र के लिये की जाती हैं। किंतु ये भी अज्ञात मन के प्रकाशन हैं। निग्रहीत इच्छाएँ 'लाक्षणिक क्रियाओं' का रूप ले लेती हैं

[1] फ्रायड :—बेसिक राईटिंगस् ऑफ सिग्मण्ड फ्रायड

और इनसे मन के निचले स्तर के भाव की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति होती है। ये क्रियाएँ भले ही यांत्रिक प्रतीत हों, वस्तुतः बहुत सार्थक होती हैं। जो व्यक्ति अकारण सिकड़ी खड़खड़ाता है, घड़ी से खेलता या पेंसिल घसीटा करता है, उसे यह चेतना नहीं रहती। वह यांत्रिक रूप से ऐसी क्रियाएँ करता है। फ्रायड का कथन है : "ये क्रियात्मक अभिव्यक्तियाँ जिन पर कोई विचार नहीं किया जाता और जो चेतना द्वारा नहीं संपादित की जातीं, अनेक अचेतन तथा निग्रहीत भावनाओं के प्रकाशन है।"[१] अतएव लाक्षणिक क्रियाएँ भी अज्ञात मन की स्वतः उपज है।

सब प्रकार की क्रियाओं के अतिरिक्त, प्रयुक्त संख्याओं का भी निश्चित अर्थ होता है। फ्रायड के एक रोगी को सत्रह और छत्तीस की संख्या दुहराने की बान थी। यह उसकी स्वतंत्र इच्छा का परिणाम नहीं था। इसमे उसका स्वगत प्रयोजन था। उसका जन्म सत्ताइस तारीख को हुआ था और उसके छोटे भाई का छब्बीस को। उसने अपनी जन्म तिथि से दस घटाया और छोटे भाई की जन्म तिथि मे दस जोड़ दिया। यह इस बात का प्रतिफल था कि उसके छोटे भाई को अनेक सुविधाएँ मिली थीं और ज्येष्ठ होते हुए भी वह उनसे वंचित रहा। उसके अज्ञात मन मे यह भाव था : "मै बड़ा हूँ, किंतु मुझे कोई सुविधा नहीं।" इस प्रकार सत्रह और छत्तीस की संख्याओं से उसके निग्रहीत आत्मप्रतिपादन के भाव का रहस्योद्घाटन होता था।

कुछ दृष्टांतों का उल्लेख स्वयं अनुभव से भी किया जा सकता है। एक व्यक्ति को जीने पर चढ़ते समय एक-एक सीढ़ी गिनने की बान थी। पूछने पर वह इसका कोई कारण नहीं बता पाता था। सीढ़ियाँ गिनना वस्तुतः अज्ञात मन के गुप्त तथ्यों के प्रसंग मे था। एक यात्री रेल के डिब्बे से उतरने पर अपना सामान कई बार गिनता। कोई पूछता तो वह फिर गिनने लगता। इससे मुझे आश्चर्य हुआ। दूसरे यात्री से मालूम हुआ कि यह उसकी झक थी। वह अपनी आदत के लिये मशहूर था और लोग बार-बार पूछकर उसे चिढ़ाते थे। उसकी यह अद्भुत प्रतिक्रिया वस्तुतः अज्ञात भाव-ग्रंथि से संबंधित थी जिसका ज्ञान यात्री के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से ही मिल सकता था।

---

[१] फ्रायड :—साइकोपैथॉलजी ऑफ एवरी[illegible] लाइफ

परन्तु फ्रायड द्वारा उद्धृत इन दैनिक क्रियाओं मे प्रयुक्त प्रतीकों की व्याख्या पर बहुत आक्षेप हुआ। हर तरह की घटना का महत्व प्रतीकात्मक नहीं हो सकता। संभव है वस्त्र पहनने और घूमने-फिरने आदि व्यवहारों मे कोई गूढ़ भाव अन्तर्हित न हो और ये क्रियाएँ बाल्यावस्था की जीवनशैली मात्र हों। मनोविश्लेषण के समर्थक फ्लुगल का कथन है: "पहनावे मे जिस तीव्र गति से परिवर्तन होता है और हम उनसे समन्वित हैं, यह इस बात का प्रमाण है कि ये परम्परागत प्रतिक्रियाएँ उपयोग, सौन्दर्य और सुविधा के अतिरिक्त अन्य किसी गूढ़ प्रतीकात्मक मूल्य से निर्धारित नहीं होतीं। सामाजिक स्वीकृति और अनुरूप रहने की इच्छा ही मूल रूप मे इनमे प्रभावोत्पादक होती है।"[१] ये क्रियाएँ परम्परागत है और संस्कृति की द्योतक हैं। सामाजिक व्यवहार विशेष प्रकार की जीवनशैली पर निर्भर होता है; यह सदैव अचेतन की निगृहीत इच्छाओं पर ही निर्भर नहीं होता। दैनिक जीवन मे अनेक ऐसी भी क्रियाएँ घटती हैं जिनसे दमन का रहस्योद्घाटन नहीं होता, न भाव-प्रतिमाओं का ही। दृष्टात के लिये, आदान-प्रदान मे त्रुटि प्राय: समन्वयकरण की कमी, मंद बुद्धि, दोषयुक्त साहचर्य रचना और मिथ्या स्नायविक संबंध के कारण होती है; दमन और भाव-प्रतिमा के कारण यह नहीं होती। संभव है कुछ क्रियाओं के सपादन का प्रयोजन अज्ञात हो; किंतु इससे निगृहीत इच्छाओं तथा भाव-प्रतिमाओं की ओर अनिवार्य रूप से संकेत नहीं मिलता। मानसिक क्षेत्र मे कार्य-कारण का संबध भौतिक क्षेत्र की तरह सक्रिय होने का अर्थ यह नहीं कि अज्ञात इच्छागत भाव एकमात्र कारण होता है। संभव है किसी विशिष्ट कार्य के संपादन के लिये चेतन विचार पर्याप्त हो। स्वप्न और अन्य जटिल क्रियाओं की तरह दैनिक क्रियाओं का बाह्य और आंतरिक पक्ष होना आवश्यक नहीं है। वर्षा ऋतु मे बरसाती का प्रयोग अज्ञात इच्छागत भाव के कारण नहीं होता; यह आवश्यकता मात्र है। ज्वर आने पर व्यक्ति औषधि का सेवन करता है, क्योंकि चेतना मे वह इसे चिकित्सा के लिये उपयोगी समझता है। विकृत न होने पर व्यक्ति के व्यवहार का अर्थ अचेतन स्तर के प्रसंग मे नहीं निकलता।

दैनिक क्रियाओं मे निहित प्रतीकवाद की फ्रायड के अनुसार यह विशेषता

---

[१] जे० सी० फ्लुगल:—मैन, मौर्लस एण्ड सोसाइटी, पृष्ठ १३८–१३९

है कि इसमे अन्य क्षेत्रों मे प्रयुक्त प्रतीकवाद की तरह काम-भाव का समावेश नहीं होता। संभव है इसका कारण यह है कि इसमे दृष्टांत व्यक्तिगत अनुभूति से उद्धृत किये गये हैं। वस्तुतः दैनिक क्रियाओं मे भी कामात्मक प्रतीक दृष्टिगत होता है। हुक्का प्रयोग करते समय कथा-कहानी और अश्लील मज़ाक का संकेत काम-भाव की ओर रहता है। अन्ना फ्रायड का कथन है : "शारीरिक तोड़-मरोड़, अकड़न, व्यक्तिगत अभ्यास जैसे निश्चित मुद्रा मे मुसकान, क्रूर तथा घृणास्पद और व्यंगात्मक व्यवहार इत्यादि अतीत के रक्षात्मक कार्य-पद्धतियों के अवशेष हैं, जो मूल स्थिति से विच्छेद हो स्थायी आवरण रूप मे विकास कर गये हैं।"[१]

राजनैतिक क्षेत्र मे भी प्रतीकों का विशेष महत्व होता है। सामूहिक व्यवहार पर अज्ञात निर्धारकों का बहुत प्रभाव पड़ता है। यह रिवर्स के ग्रंथ 'साइकॉलजी एण्ड पॉलटिक्स' मे और फ्रायड का जो स्थायी शांति की सभावना के बारे मे दार्शनिक आइन्स्टीन से मतभेद था उसमे सुन्दर ढंग से प्रेषित हुआ है। युंग ने अपने ग्रंथों 'इण्टेग्रेशन ऑफ पर्सनैलटी' और 'एसेज़ ऑन कन्टेम्पोरेरी इवेन्टस्' मे यह स्पष्ट किया है कि किस प्रकार युद्ध तथा बीच का अशांतिपूर्ण शांतिकाल द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के अज्ञात मन की ध्वंसात्मक शक्ति की सामूहिक अभिव्यक्ति होती है। युंग ने 'वोटन' की भाव-प्रतिमा का उल्लेख किया है जो स्वतत्र मानसिक शक्ति है और जिसका प्रभाव व्यक्तियों के सामूहिक जीवन पर पड़ता है। वोटन प्रकृत, विद्रोहात्मक, क्रूर और ध्वंसात्मक शक्ति का सामूहिक रूप से प्रकाशन है। जब देशवासी इस प्रतिमा का आखेट बनते हैं, वे शक्ति के पिपासु, विद्रोही, रक्तपातप्रिय और अशांतिप्रिय बनते हैं। इसमे चुम्बक का आकर्षण होता है, जिससे सम्मोहित होकर भीड़ का संकलन होता है और एक बलशाली दल बनता है। जब यह अपने मे समेटे पड़ा रहता है, व्यक्तियों का ध्यान इधर नहीं जाता, जैसे अव्यक्त इपीलेप्सी की ओर ध्यान नही रहता। यह किस अवस्था मे है इसका प्रमाण राजनैतिक अवस्था है। देश मे सामूहिक दुर्बलता (मॉस न्युरौसिस) का अधिपत्य-सा रहता है। पूंजीपति, सैनिक, सामराज्याभिमानी और अधिनायक वस्तुतः विकृत होते हैं, जो परपीड़न प्रकार के हैं। अपने पर जुर्म करने वाले को आवेश मे पददलित कर सकने वाला दल जो आंतरिक मे शक्तिहीन है, हिस्टीरिया की मानसिक दुर्बलता

अन्ना फ्रायड :—द इगो एण्ड द मेकैनिजम ऑफ डिफेन्स, पृष्ठ ३५

अथवा स्वपीडात्मक दमन से त्रस्त होता है। राष्ट्रीय जीवन की दृष्टि से देश मे महत्वशाली प्रतीकों का प्रयोग समूह की शक्ति को उपयुक्त दिशा मे प्रवाहित करने के लिये होता है। इसका उत्कृष्ट दृष्टांत राष्ट्रीय झंडा है, जिससे प्रतिक्रियाओं के लिये सामूहिक अज्ञात मन अद्भुत शक्ति और साहस के साथ जागरित होता है। झंडा राष्ट्रीय स्वतंत्रता का द्योतक है; राजा एकता का प्रतीक होता है; और राष्ट्रीय गान राष्ट्र के सामाजिक भाव तथा संस्कृति का प्रतीक है। प्रत्यक्ष मे राष्ट्रीय झंडा वस्त्र मात्र होता है; परोक्ष मे इसकी महत्ता गूढ़ है। इसका प्रतीकात्मक मूल्य आंकना सहज नहीं। यह प्रतीक गूढ़ भावात्मक शक्ति का, जो व्यक्तिगत नहीं परन्तु मानव की धरोहर है, प्रकाशन है। राष्ट्र के प्रतीकों मे राष्ट्र का जीवन, गान, उत्सव इत्यादि निहित होते हैं। इनमे राजनैतिक आदर्शों, सामाजिक संस्थाओं का नैतिक आदर्श और विभिन्न रंग और छाया के भावों का दिग्दर्शन होता है। हरएक प्रतीक उस युग की संस्कृति तथा स्वच्छंदता से संबंधित परिवर्तनों की तलैया है। झंडे से अज्ञात मन की स्वतंत्र क्रियाओं की अभिव्यक्ति होती है। दृष्टात के लिये, भारतीय राष्ट्रीय झडे का लाल वर्ण प्रेम अथवा स्त्रैणता सूचक एनिमा और पौरुष सूचक ऐनिमस का द्योतक होता है; हरा वर्ण उपज या जन्म देने की इच्छा का सूचक है; और पीत से अज्ञात मन की धार्मिक क्रिया का प्रकाशन होता है। पीत वर्ण सदैव अध्यात्म से संबंधित माना-समझा गयां है।

अतएव तिरंगा झंडा अज्ञात स्तर का प्रतीकात्मक प्रदर्शन है। यह अज्ञात मन मानसिक और व्यावहारिक जीवन का मुख्य केन्द्र है और इसके इर्द-गिर्द ही समस्त आधुनिक मनोवैज्ञानिक अनुसंधान हुए हैं।

उपसंहार

मनुष्य के विचार और अभिव्यक्ति के विभिन्न क्षेत्रों का सूक्ष्म अवलोकन कर दृष्टान्तों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या के आधार पर प्रस्तुत ग्रंथ मे यह स्थापित किया गया है कि चिंतनशील प्राणियों की मानसिक प्रक्रियाओं का विवरण, बिना प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की प्रमुखता स्थापित किये तथा यह कि प्रतीक अज्ञात मन के मूल तथ्यों की अभिव्यक्ति का एकमात्र माध्यम है उनका स्वभाव कुछ भी हो, संभव नहीं है। प्रारंभ मे यह कल्पना मात्र थी; इस परिकल्पना को प्रामाणिक करने की संभावना अल्प थी—यह अन्तर्ज्ञान की सूझ मात्र परिलक्षित होती थी; कोई मूल तथ्य यह नियोजित न हो सकी। विभिन्न अभिव्यंजनाओं के माध्यम द्वारा मानव मन के गूढ़ स्तर मे प्रवेश का प्रयास करने पर इस अन्तर्ज्ञान की प्रामाणिकता वैज्ञानिक आधार पर स्थापित हुई। अज्ञात मन की अन्य कार्य-पद्धतियाँ संक्षेपण, विस्थापन, नाट्कीयकरण, परिमार्जन, प्रतिक्रियाकरण, प्रक्षेपण, दमन, प्रत्यावर्त्तन इत्यादि जिनकी स्थापना मनोविश्लेषण मे हुई है, यद्यपि स्वप्न-क्रिया, अतिक्रमित व्यवहार, धार्मिक अंधविश्वास, पौराणिक आख्यान, कलात्मक भाव-कल्पना और भाषा मे विशिष्ट सक्रिय और महत्त्व की हैं तथापि अज्ञात मन की स्वच्छंद अभिव्यक्ति के लिये ये पर्याप्त नहीं होतीं। कारण, ये कार्य-पद्धतियाँ सार्वभौम रूप से कार्यरत नहीं रहतीं; दूसरे, इनका एकाधिकार नहीं रहता; और तीसरे, अभिव्यक्ति के लिये इनमे कोई विशिष्ट रूप नहीं होता। फ्रायड के ग्रंथों मे संक्षिप्त अभिव्यक्ति, विस्थापित अभिव्यक्ति, नाट्कीय अभिव्यक्ति इत्यादि का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। जब कभी प्रतिरोध होता है, चाहे कोई पद्धति सक्रिय हो, हमे दो मूल तथ्य या विकल्प मिलते हैं: अज्ञात मन की इच्छाओं का रूपान्तर; अथवा इनका पिछली ओर मुखान्तर।

यथार्थ मे जिन किन्हीं भाव-तथ्यों का संबंध अज्ञात मन से होता है, वे प्रतीकात्मक होते हैं और इसका प्रमाण मानसिक क्रियाओं के सभी क्षेत्रों मे स्पष्ट मिलता है। स्वप्न पर विभिन्न दृष्टियों से विचार करने पर यह निष्कर्ष निकला कि सभी स्वप्न प्रतीकात्मक होते हैं। यह दृष्टिकोण एकांगी है; इस कारण इस विवरण पर आक्षेप की संभावना है। कुछ स्वप्न वास्तविक

भी होते है जिनमे जीवन की सच्ची घटनाएँ अंकित रहती है और चेतन भाव-इच्छाओं की प्रत्यक्ष तुष्टि होती है। किंतु इस प्रकार की अनुभूतियों को विशिष्ट अर्थ मे स्वप्न की उपाधि नहीं दी जा सकती; ये अर्ध-जाग्रत और अर्ध-निद्रित अवस्था के प्रतिफल मात्र है। वास्तविक स्वप्न की भाव-कल्पनाएँ प्रतीकात्मक प्रकृत जटिल और गूढ़ प्रकार की होती हैं और इनके द्वारा मानव व्यक्तित्व के गूढ़ स्तर की व्यंजना होती है। इसी प्रकार कला मे भी अज्ञात मानसिक जीवन के संवेगात्मक अन्तःस्रोत, आकांक्षाओं, भीति, आश-निराश का केन्द्रीयण इन्द्रिय प्रदत्तों पर होता है जिससे सरल दृश्य-विषयक तथ्य भी प्रतीक रूप ग्रहण कर भाव से अभिप्रेत हो जाते है। सच्ची कला विवेचनात्मक है और इसीलिये यह प्रतीकात्मक होती है। व्याख्या का अर्थ है छिपे-गुथे अर्थों का अन्वेषण करना जिनका संकेत सदैव अज्ञात की भाव-कल्पनाओं की ओर रहता है। कला से भाव अथवा इच्छाओं का बेतार संक्रमण होता है। यह निष्कर्ष विभिन्न प्रकार की कलाओं के गूढ़ विश्लेषण के पश्चात् स्थापित किया गया है।

मानसिक रोग के क्षेत्र मे हठ प्रवृत्यात्मक क्रियाएँ, कल्पनाग्रह के अद्भुत विचार, आधार रहित भ्रम, भ्रान्तियाँ इत्यादि अज्ञात मन की 'मुक्त भाव-ग्रंथियों' की अभिव्यक्ति के लिये दृश्यात्मक माध्यम हैं। अथवा ये मन की विकृत अवस्था के निश्चित संस्थान है। धर्म के क्षेत्र मे इसका पर्याप्त प्रमाण मिलता है कि देव-पूजा और धर्मकांड अपने को पूर्ण बनाने की इच्छा के प्रभावशाली प्रतिरूप है। पौराणिक आख्यानों के आधार पर अनेक मनोवैज्ञानिक धारणाएँ निर्धारित की गयी है जिनसे यह स्पष्ट होता है कि अज्ञात मन के प्रसंग मे पौराणिक आख्यानों का महत्त्व विशेष होता है। वस्तुतः पौराणिक आख्यान मन की काल्पनिक रचना नहीं होती; यह मानव स्वभाव के अध्ययन का महत्त्वपूर्ण माध्यम है। पौराणिक आख्यानों से व्युत्पादित अनेक धारणाएँ वैज्ञानिक परीक्षण के आधार पर सहज ही सामान्य सिद्धांत के रूप मे स्वीकृत की जा सकती हैं। अतः यह कथन अत्युक्ति नहीं कि स्वप्न की महत्ता, कला का सौन्दर्य, रोग की प्रभावशीलता, धर्म का रहस्य, पौराणिक आख्यान का मूल्यांकन, और भाषा की महत्ता प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मे निहित होती है। अतएव दो प्रमुख निष्कर्ष निकले: एक, अज्ञात मानसिक अभिव्यक्ति का स्वभाव प्रतीकात्मक होता है; दो, यह कि प्रतीकात्मक समस्या सार्वभौम है—इसका प्रश्न प्रत्येक क्षेत्र मे होता है।

उपसंहार

इस प्रकार कला, धर्म, भाषा और पौराणिक आख्यान के विकास का ऐतिहासिक अध्ययन करने से यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि अज्ञात मन की प्रतीक रूप मे व्यक्त करने की सामान्य वृत्ति युगों से स्पष्ट रही है और यह युग-युगान्तर की समस्या है। आधुनिक विज्ञान प्राचीन रहस्यों पर आधारित है। प्राचीन गुफाओं की चित्रकारी, युद्ध नृत्य, उर्वरता (फर्टिलटी कल्ट), टोटम पूजा और प्रतिबंधित क्रियाओं (टैबू) का पालन करना प्राचीन समाज मे प्रचलित प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के प्रमाण है। आधुनिक युग मे भी मानवीय आदान-प्रदान का व्यवहार तथा भाव की दृष्टि से भले ही विकास हुआ हो, जीवन का सच्चा एवं विशुद्ध रूप बाह्य आडंबर साज-शृंगार और चमक-दमक से युक्त है। जीवन समृद्ध होने के कारण यह विशिष्ट रूप से जटिल हो गया है और फलस्वरूप आभ्यन्तर मे भाव-ग्रंथियों की प्रचुरता हो गयी है। वस्तुतः जितना आडंबर, प्रतिबंध, अनुशासन और आचरण पर रोक-थाम होता है, उतना आदान-प्रदान, लोक-व्यवहार मे परोक्ष प्रदर्शन के लिये प्रोत्साहन मिलता है।

प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मे किन मूल तथ्यों का समावेश है इसके बारे मे इस ग्रंथ मे यह स्थापित किया गया है कि अज्ञात मन के प्रतीकों द्वारा दमित इच्छाओं के अतिरिक्त सामान्य जातिगत विशेषताओं की भी, जो भाव-प्रतिभाओं (आरचेटाइप्स) के रूप मे हैं, व्यंजना होती है। यह निष्कर्ष फ्रायड और युंग के आलोचनात्मक अध्ययन पर निर्भर करता है। फ्रायड और युंग आधुनिक युग के उत्कट मनोवैज्ञानिक है जिनकी विवेचनाएँ क्रम से दमित इच्छाओं और भाव-प्रतिमाओं तक सीमित की गयी हैं। विकृत रोगियों का स्वप्न दमित प्रकार का होता है; सामान्य व्यक्तियों का स्वप्न भाव-प्रतीकात्मक प्रकार का होता है। स्वप्न मिश्रित प्रकार के भी होते हैं। मानसिक रोग द्वारा केवल दमित इच्छाएँ अभिव्यक्त होती हैं। ऐसा नहीं घटित होता कि कायिक दोष पर्याप्त हो, और रोग के लक्षण का संबंध बाल्यकाल या किशोरावस्था की किसी आकस्मिक घटना से सम्प्रेषित न हो। दैनिक क्रियाओं मे भी दमित अज्ञात इच्छागत भाव का प्रदर्शन होता है।

परन्तु कला, धर्म, पौराणिक आख्यान और भाषा-संबंधी विवेचना इससे पर्याप्त पृथक् होती है। इनमे सामूहिक अज्ञात मन के भाव-तथ्यों की अभिव्यंजना प्रमुख रूप से होती है और दमित इच्छाएँ उत्तेजन मात्र होती हैं।

वस्तुतः भाव-प्रतिमाओं के रहने पर ही इच्छाओं के लिये यह सौष्ठव रूप प्राप्त करना संभव होता है। कला, धर्म और पौराणिक आख्यानों का प्रभाव सार्वभौम होता है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि ये मस्तिष्क के सामान्य तथ्यों की प्रतिनिधियाँ हैं। मानव मे साम्यता होती है, सामान्य तथ्य होते हैं, सामान्य स्थायीभाव हैं जिनके कारण कायिक पृथकता होते हुए भी मानसिक दृष्टि से एकसूत्रता है। मनुष्य मे मानसिक सामान्य निधियाँ भाव-प्रतिमाओं के रूप मे होती हैं। भाव-प्रतिमाओं की व्यंजना कला मे सहज ही संभव है। भाव-प्रतिमाएँ मानस पटल पर सक्रिय मानवीकरण-सी उपस्थित रहती है। कला के क्षेत्र मे स्त्रैणता सूचक भाव-प्रतिमा (एनिमा) का विशेष महत्त्व होता है जो सभी प्रकार की कला—साहित्य, शिल्प, चित्र—मे व्यक्त होती है। यह विशेषता सभी युगों और सभी जातियों मे प्रचलित कला की रही। धर्म के क्षेत्र मे मुख्यतः दैव भाव-प्रतिमा (आरचेटाइपल इमेज आफ द डीटी) की अभिव्यंजना की गयी है, यद्यपि मातृ सूचक भाव-प्रतिमा (मदर इमेजो) का भी प्रदर्शन होता है। हिंदू धर्म मे प्रचलित मातृ पूजन की प्रथा मानव की मातृ मानसिक शक्ति (मैटरनल लिबिडो) का द्योतक है। देवताओं के पूजन से पितृ सूचक भाव-प्रतिमा (फादर इमेजो) का प्रतिनिधित्व होता है। चिंतन करने पर प्रश्न उठता है कि पितृ सूचक भाव-प्रतिमा का विभेदीकरण दैव भाव-प्रतिमा की धारणा से किस प्रकार किया जा सकता है ! यह प्रश्न जटिल और दार्शनिक महत्त्व का है। यह विवेचना भारतीय दर्शन के वेदांत मे प्रतिपादित ईश्वर और ब्रह्म की धारणाओं के विभेदीकरण को स्पष्ट करने पर ही संभव है। मायावी ईश्वर द्वारा पितृ सूचक भाव-प्रतिमा का प्रतिनिधित्व होता है, जो विश्व के रक्षक और निर्माणक हैं; ब्रह्म जो सत्-चित्-आनन्द हैं, 'दैव भाव-प्रतिमा' के स्वरूप हैं। यह प्रतीक सब प्रकार की उपाधियों, संबंधों और लौकिक अस्तित्व से परे है। इस प्रकार यह कथन न्यायसंगत है कि दैवपूजन की वस्तुएँ 'दैव भाव-प्रतिमा' और 'पितृ भाव-प्रतिमा' के प्रतिरूप होती हैं।

धर्म के अतिरिक्त पौराणिक आख्यानों मे भी सामूहिक अज्ञात मन की विभिन्न भाव-प्रतिमाएँ दृष्टिगत होती हैं, भले ही अद्‌भुत और विकृत रूप मे हों। गोपनीय रत्नों का पता लगाना मानव की कुशलता पर निर्भर करता है। भाव-प्रतिमाओं की विशेषताओं और प्रकृति के बारे मे

उल्लेख युंग ने अपनी पिछली कृतियों मे विशेष सारगर्भित रूप मे किया है; 'भाव-प्रतिमाएँ उन नदियों के समान हैं जो शुष्क हो गयी हैं, क्योंकि जल का प्रवाह दूसरी ओर हो गया है; किंतु जल का पुनः प्रवाह इस ओर किसी भी क्षण संभव है। भाव-प्रतिमा प्राचीन जलाशय की तरह है जिस ओर जीवन-जल का प्रवाह हुआ है और गहरा पाट बन गया है। अधिक काल तक जल के बहने का अर्थ है गहरा पाट का होना और यह संभावना कि जल का पुनः प्रवाह इस ओर कभी न कभी अवश्यम्भावी है। व्यक्ति समाज अथवा राज्य मे इस जल पर कुछ सीमा तक. नहर की तरह नियंत्रण कर सकता है।"

अतएव कला, धर्म और पौराणिक आख्यानों मे भाव-प्रतिमाओं की प्रधानता होती है। इसका यह अर्थ नहीं कि इन क्षेत्रों मे दमन की प्रक्रिया का महत्त्व नहीं होता जिसपर मनोविश्लेषण मे एकमात्र बल दिया गया है। वस्तुतः दमन की प्रक्रिया और भाव-प्रतिमा दोनों का ही महत्त्व अभिव्यंजना के प्रसंग मे होता है। दमन की प्रक्रिया अनिवार्य है और जीवनदायक है। दमित मानसिक शक्ति अथवा मूल तथ्यों का क्षय नहीं होता; बल्कि यह संकलित हो जाती है और सहज ही इसका उपयोग सांस्कृतिक दिशा मे होने की संभावना हो जाती है। जो व्यक्ति अपनी शक्ति का व्यय प्रकृत इच्छाओं की तुष्टि मात्र मे करता है, वह संगीतज्ञ या कलाकार नहीं बन सकता। कलाकार होने के लिये सर्जनात्मक वृत्ति मात्र पर्याप्त नहीं होती। उत्तेजित करने के लिये जीवन की अनुभूतियाँ प्रेरणाएँ-स्वरूप आवश्यक हैं। कलाकार के व्यक्तित्व का आवश्यक अंग उसकी वेदना अथवा नैराश्य भावों की अनुभूतियाँ हैं, और इसका कारण उसकी सामाजिक धार्मिक और कलात्मक अवस्थाएँ होती है। इसी से मनुष्य भयभीत हो विचार और कल्पना के विश्व मे लौकिक आमोद-प्रमोद से विमुख हो जाता है। धर्म के प्रसंग मे भी यह विवरण न्यायसंगत है कि अधिकांशतः दैव भाव-प्रतिमा अतृप्त प्रकृत इच्छाओं से उत्तेजित की जाती है और परिणामस्वरूप मनुष्य की आस्था ईश्वर की ओर हो जाती है और वह रूढ़िवादी धर्म का उपासक बनता है। धर्म-संबंधी नियमित क्रियाओं के संपादन और कल्पनाग्रह की क्रियाओं मे साम्य होता है। अतएव यह सिद्ध होता है कि धार्मिक व्यक्तिओं के अचेतन स्तर पर धार्मिक व्यक्तियों के दमन की प्रक्रिया विशेष सक्रिय रहती है।

फ्रायड ने धर्म को सामूहिक मनोविक्षेप (मास साइकोसिस) माना है। वस्तुतः धर्म-प्रतीक अज्ञात की धार्मिक क्रिया और कामवृत्ति के परिमार्जन का द्योतक होता है। अधिकांश पौराणिक आख्यानों मे अज्ञात दमन-प्रक्रिया मात्र की व्यंजना की गयी है।

अज्ञात मन के मूल तथ्यों का सूक्ष्म अवलोकन करने पर यह स्पष्ट होता है कि ये स्वरूप और स्वभाव मे व्यक्तिगत और अव्यक्तिगत दोनों ही प्रकार के होते हैं। जिन स्वप्नों से दमित इच्छाओं की तुष्टि होती है वे व्यक्तिगत प्रकार के हैं, क्योंकि दमन व्यक्तिगत अनुभव होता है। एक व्यक्ति और दूसरे व्यक्ति की अनुभूति मे परिमाणात्मक और गुणात्मक भेद होता है। जिन स्वप्नों द्वारा सामूहिक अज्ञात मन की भाव-कल्पनाओं की अभिव्यक्ति होती है, वे अव्यक्तिगत स्वभाव-स्वरूप के माने गये हैं, क्योंकि इनके द्वारा मानव मन के सार्वभौम अथवा अव्यक्तिगत तथ्यों का प्रदर्शन होता है। मानसिक रोग के लक्षण व्यक्तिगत प्रकृति के होते है, क्योंकि इसका संबंध व्यक्तित्व से निकटवर्ती होता है और इसमे व्यक्तिगत परामर्श आवश्यक है। वस्तुतः दमन की प्रक्रिया व्यक्तित्व मे विच्छेद का मूलतः कारण है। मानसिक रोग की जटिलता दमन की तीव्रता पर निर्भर करती है। अनुसंधान करने पर युंग को अव्यक्तिगत तथ्य भी प्राप्त हुये। उन्होंने लिखा है : "व्यक्तिगत समस्या के व्यक्तिगत पहलू पर ध्यान केन्द्रित करने पर प्रश्न यही उठता है—रोगी किस विश्व से आया है! और उसने अपने को किस विश्व से समन्वित किया है। मानव विश्व का एक अंश है। इसी से उसमे विश्व के अशभूतों का समावेश है और ये व्यक्तिगत से परे अव्यक्तिगत तथ्य है।" जर्मनी के मानसिक रोगियों के सामूहिक अज्ञात मन मे प्रस्तुत कोलाहल का अनुमान लगाने पर युंग ने यह निष्कर्ष निकाला है। किंतु मानव मे कोई जन्मजात विकृत भाव-प्रतिमा नहीं होती। इस परिकल्पना को मानना कि मानव मे जन्मजात विकृत भाव-प्रतिमा होती है, वैज्ञानिक विश्लेषण संभव नहीं है। तब जितने प्रकार की विकृत मानसिक अवस्थाएँ होतीं, उतने ही प्रकार की भाव-प्रतिमाएँ भी मिलतीं।

अचेतन अभिव्यक्ति की दृष्टि से कला और स्वप्न की तुलना करने पर यह स्पष्ट होता है कि कला अव्यक्तिगत होती है और स्वप्न पूर्णतः व्यक्तिगत होता है। कलाकार सामूहिक इच्छाओं का पैगम्बर है।

रचना करने के पूर्व कलाकार के भाव-इच्छा को अनजाने ही सार्वभौम रूप प्रदान हो जाता है। इसी से कला मे मानव स्वभाव के सामान्य तथ्यों की झाँकी विश्लेषणात्मक अध्ययन करने पर मिलती है। मानव यह नहीं अनुभव करता—'देखो ! कलाकार कामुक है, साधु है, अथवा संवेदनशील है'; उसकी अनुभूति होती है : 'मानव की ओर देखो ! मानव जाति कामुक, ध्वंसात्मक और भावुक है। व्यक्ति अपने और कलाकार मे विवशता, नैराश्य और दुर्बलता की दृष्टि से साम्यता वेखकर प्रभावित हो उठता है और कुछ क्षण के लिये तन्मयता मे उसे अपने अस्तित्व की विस्मृति का आभास होता है। अतएव कला के प्रतीक स्वप्न के प्रतीकों से इस दृष्टि से मूलतः भिन्न है कि ये अव्यक्तिगत है।

धर्म और पौराणिक कथाओं मे भी अज्ञात मन के अव्यक्तिगत तथ्यों की अभिव्यक्ति होती है। हरएक युग और जाति के धार्मिक प्रतीकों—रूढ़ि-परम्परा, सम्प्रदाय, दैव-पूजा इत्यादि—से मानव की प्रकृत इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है। ये इच्छाएँ जीवन, जनन आदि की होती हैं। ये प्रवृत्तियाँ एक प्रकार से हरएक व्यक्ति की अपनी सम्पत्ति है। जीवन के इन्हीं सत्य तथ्यों का विस्तारण धार्मिक और नैतिक शास्त्र-सिद्धांतों मे हुआ है। प्रतीक का स्वरूप भिन्न-भिन्न जाति तथा संस्कृत मे भले ही पृथक् हो, किंतु भावात्मक चित्र सार्वभौम होते हैं। इससे अन्य पर आश्रित होना, नैराश्य भाव, और सामान्य भय के भाव की व्यंजना हुई है। व्यक्ति का धार्मिक प्रतीकों मे विश्वास इस कारण से होता है कि इनके द्वारा सामूहिक स्थायीभाव, सामूहिक विचार और सामूहिक संवेगों की अभिव्यक्ति होती है। धर्म मे आस्था का कारण अज्ञात मन की धार्मिक क्रियाएँ भी हैं।

पौराणिक आख्यान भी जिनसे मानसिक इतिहास की अभिव्यक्ति होती है अव्यक्तिगत वर्ग और प्रकृति के होते हैं। यह किसी एक व्यक्ति का स्वप्न नहीं है; यह मानव जाति का स्वप्न है। यही कारण है कि पौराणिक आख्यान अभी भी जीवित हैं। यह निष्कर्ष भारतीय और पश्चिमी पौराणिक कथाओं का अध्ययन करने पर स्थापित हुआ है। इस प्रसंग मे फ्रायड और युंग के अध्ययन विशेष उल्लेखनीय हैं। साहित्य की भाषा की स्थायी महत्ता भी साहित्य की अव्यक्तिगत महत्ता का प्रमाण है। दैनिक

क्रियाएँ जो अज्ञात मन मे निहित हैं, व्यक्तिगत और अव्यक्तिगत दोनों प्रकार की होती हैं।

सामान्यतः व्यक्तिगत प्रतीक गतिशील (डायनेमिक) होते हैं; जो अव्यक्तिगत हैं वे निश्चल हैं और उनका एक निश्चित महत्त्व भी होता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से फ्रायड ने हरएक प्रतीक का एक निश्चित अर्थ संस्थापित किया है। वस्तुतः प्रतीक दोनों वर्ग के होते हैं: गतिशील और स्थिर। उन प्रतीकों का अर्थ निश्चित और एकरूप होता है जिनके द्वारा सार्वभौम और सामान्य मूल्य-महत्त्व की भाव-प्रतिमाओं की अभिव्यक्ति होती है। उनकी पुनरावृत्ति एक युग से दूसरे युग मे, एक जाति से दूसरी जाति मे होती रहती है, यद्यपि उनके बाह्य रूप मे अधिक विपथन नहीं होता। स्वप्न गतिशील है इसका उत्कृष्ट प्रमाण यह है कि एक ही स्वप्न-प्रतीक का प्रयोग भिन्न-भिन्न व्यक्तियों द्वारा भिन्न-भिन्न अर्थों मे होता है और एक ही व्यक्ति एक ही प्रतीक को भिन्न-भिन्न अवस्थाओं मे भिन्न-भिन्न अर्थों मे प्रयोग करता है। इसके समर्थन मे मैडम ब्लैत्रेटेस्की का प्रतीक के संबंध मे सप्त कुंजी सिद्धांत प्रसंगानुकूल है। ये कुंजियाँ अध्यात्म संबंधी, देवपुराण और विश्वविज्ञान संबधी, ज्योतिष संबंधी, मन संबंधी, मापविद्या और रेखागणित संबंधी, आध्यात्मिक कायाकल्प संबंधी, मानव शरीरविज्ञान और मनोविज्ञान संबंधी हैं। ये दृष्टिकोण एक दूसरे के विपरीत और विरोधी नहीं हैं; इनमे समन्वय-संश्लेषण है। वस्तुतः मूल मे प्रतीक विभिन्न अर्थों का संश्लेषण है। दृष्टांत के लिये सर्प का स्वप्न है जिसका विस्तृत विश्लेषण स्वप्न और प्रतीकवाद के परिच्छेद मे किया गया है। अज्ञात मन का यह प्रतीक अत्यधिक सारगर्भित है और इसका महत्त्व विशेषतः इसके आदि इतिहास पर निर्भर करता है। सर्प धरातल मे रहता है; इसी से यह धरातल देवता माना गया है। हिंदू पुराणों मे यह किंवदंती प्रसिद्ध है कि पृथ्वी शेषनाग पर स्थित होती है। सर्प केचुली छोड़ता है—यह आत्मा की नश्वरता का द्योतक है। सर्प की टेढ़ी-मेढ़ी चाल से मानब की पाशविक वृत्ति की व्यंजना होती है। यह किंवदंती भी है कि सर्प धरातल के नीचे धन के रक्षक के रूप मे रहता है; और धन प्राप्त करने के लिए सर्प की हत्या आवश्यक है। यह कथा एक वृहत् महत्वशाली मनोवैज्ञानिक तथ्य का द्योतक है; यह कि मानसिक निर्माण के लिए निचले स्तर की शक्तियों का समयोचित समन्वय अथवा उनपर विजय

प्राप्त करना आवश्यक होता है। सर्प का रक्त शीतल होता है; इसीलिए इससे अमानवीय स्वभाव अथवा दैहिक सहज-क्रिया की भी अभिव्यक्ति होती है। सर्प की प्रकृति आक्रमण करने की रहती है; इससे संभव है कि यह भय का प्रतीक हो। ईसाई नास्टिसिज़्म मे सर्प रक्षक का प्रतीक माना गया है। अनेक पौराणिक आख्यान है जिनमे सर्प पूज्य माना गया है। नागपंचमी के दिवस पर प्रत्येक हिन्दू परिवार मे सर्प के दर्शन की प्रथा प्रचलित है। घर-घर दुग्ध लावा उसके लिये रखा जाता है। प्राचीन परिवार मे सर्प की हत्या निषेध मानी गयी है। साहित्य मे भी इस प्रतीक की महत्ता क्रियाशीलता के प्रसंग मे है। इसी प्रकार विभिन्न शब्दों द्वारा भी पृथक्-पृथक् इच्छाओं की समवेत अभिव्यक्ति होती है; एक ही शब्द के अनेक अर्थ मिलते है।

मानसिक रोग के लक्षणों द्वारा यद्यपि व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति होती है, तथापि इनका अर्थ निश्चित रहता है। जिस प्रकार शारीरिक रोग के लक्षणों का अर्थ निश्चित रहता है और इनके द्वारा सहज ही अवयवों की अवस्था का निदान हो जाता है उसी प्रकार मानसिक रोग के लक्षण भी एकरूप होते है और इनके द्वारा निश्चित मानसिक अवस्था की अभिव्यक्ति होती है। सामान्यत: विकृत अवस्था व्यक्तिगत होती है। तब प्रश्न यह है कि इसका निश्चित अर्थ क्यों और कैसे होता है। विशिष्ट मानसिक अवस्था की अभिव्यक्ति होने से मानसिक रोग के लक्षणों का अधिकांशत: अर्थ निश्चित होता है। लक्षणों के क्रियाशील होने का मूल कारण यह है कि इनके द्वारा भिन्न-भिन्न भाव-ग्रंथियों की अभिव्यंजना होती है। इस प्रसंग मे स्थिरभ्रम रोगी का आधारहीन भ्रम उपयुक्त दृष्टांत है। अपमान-भ्रम से अपराध-भाव की अभिव्यक्ति होती है, और इसमे सदैव एकरूपता रहती है; मूलत: भाव-ग्रंथियों मे विभिन्नीकरण होता है जो अपराध-भाव के कारण है। रोगी मे काम-ग्रंथि, हीनत्व ग्रंथि, विद्रोह ग्रंथि इत्यादि विभिन्न प्रकार की भाव-ग्रंथियों के होने की संभावना रहती है।

कला, धर्म और पौराणिक कथानकों के क्षेत्रों मे प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के निश्चित स्वरूप के सम्बन्ध मे प्रश्न नहीं उठता। यह निर्विवाद है कि हरेक चित्र, मूर्त्ति, गीत, पूजा, पूजन की वस्तु और पौराणिक कथानक से एक निश्चित संवेगात्मक भाव का प्रदर्शन होता है; किन्तु शिव की तीन

मुद्राएँ धर्म-प्रतीक की निश्चित महत्ता के अपवाद हैं : एक, जननशक्ति का प्रकाशन; दो, रक्षात्मक शक्ति का दिग्दर्शन—वह मुद्रा जिसमे शिव समाधि की अवस्था मे हैं, सिर से जीवनदायक गंगा का प्रवाह होता है और शरीर मे सर्प लपटे हैं; तीन, ध्वंस शक्ति की व्यंजना—तांडव नृत्य की मुद्रा जगत् प्रसिद्ध है।

अज्ञात मन की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की पृष्ठभूमि मे प्रकृति के क्रिया-व्यापार की तरह एकरूपता और सम्बद्धता होती है। विश्व का सर्जन स्वतः हुआ है जिसमे व्यवस्था और समरूपता है। व्यक्ति के सारूप्य मे विश्व का प्रयोजनात्मक सिद्धांत प्रतिष्ठापित है। प्रकृति की तरह अज्ञात मन की प्रतीकात्मक विचार-श्रृंखला भी प्रयोजनशील होती है; शुष्क बोध-ज्ञान की पृष्ठभूमि मे गूढ़ भाव-इच्छाएँ निहित होती है। प्रकृति का कार्य व्यवस्था स्थापित करना है; अज्ञात मन का कार्य भी दो विरोधी सिद्धांतों और आदर्शों—इदम् और नैतिक मन मे समझौता लाना है। प्रकृत व्यक्तित्व जो विद्रोही और कामुक होता है और जो युंग की शब्दावली मे 'शैडो' का प्रतिरूप है सदैव क्रियाशील होता है और प्रकाशनार्थ प्रयत्नशील रहता है। आदर्श अहं (इगो आइडियल) जो नैतिक सिद्धांतों से परिचालित है, इसका विरोध करता है। फलस्वरूप अज्ञात मन अति छल-योजना से निचले स्तर के भाव-विचार को ऐसा रूप प्रदान करता है जो आदर्श अहं को मान्य हो। मनुष्य को इसकी चेतनता नहीं होती, किंतु अज्ञात मन के जान मे सब प्रकार की योजना-छलना होती है। अज्ञात मन को यह पूर्णतः बोध रहता है कि इसकी भाव-इच्छाएँ प्रकृति मे सक्रिय हैं और शांत पड़े रहने की नहीं हैं और इनके प्रदर्शन का प्रयास होने पर ज्ञात मन द्वारा प्रतिरोध अवश्यमभावी है : 'रुको, तुम प्रकृति मे हेय और निन्दनीय हो'। इस प्रकार की भर्तसना से रक्षा करने के लिये भाव-कल्पना द्वारा अज्ञात मन अपने मूल तथ्यों को एक मान्य रूप प्रदान करता है और बाह्य और आन्तरिक अवस्थाओं मे समन्वय स्थापित हो जाता है। मन संबंधी तथ्यों को प्रतीक रूप मे अभिव्यक्त करने की प्रवृति (टेंडेन्सी) मन की एक प्रयोजनात्मक प्रवृति है। यह प्रतीकीकरण का आवश्यक अंग नहीं है। वस्तुतः भाव-प्रतिमा उपयोगी हो या अनुपयोगी, अभिव्यक्ति मे सदैव प्रतीकात्मक होती है। इससे यह

निष्कर्ष निकलता है कि व्यक्तिगत अज्ञात मन की अभिव्यक्ति बाध्य होने पर प्रतीक रूप ग्रहण करती है जब कि सामूहिक अज्ञात मन का यह स्वभाव है। ज्ञात मन की यह विशेषता है कि इसमे सभी विषय पर विचार, कल्पना, पुनरावाहन और अवलोकन प्रत्यक्षरूप मे होता है; अज्ञात मन की विशेषता है कि इसमे विषय पर विचार प्रतीकात्मक रूप मे होता है। इस प्रकार अज्ञात मन सदैव भाव-कल्पना विचार-इच्छा को प्रतीकात्मक रूप प्रदान करता है।

अधिकांशतः अज्ञात मन की अभिव्यंजनाएँ प्रयोजनशील होती हैं और अभिव्यक्ति द्वारा व्यक्ति को अद्‌भुत प्रकार का मानसिक संतोष प्राप्त होता है। यह फ्रायड की शब्दावली मे, जिसकी विशद व्याख्या मनोविश्लेषण मे हुई है, 'स्थानापन्न तुष्टि' (सब्स्टीच्युटिव ग्रैटिफिकेशन) है। यह एक प्रकार की रक्षार्थ प्रक्रिया है—अतिरिक्त इच्छाओं को तृप्त करने वाला प्रतिक्रियात्मक तथ्य। अन्वेषण करने पर यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि प्रतीक का महत्त्व प्रकृत इच्छा के स्थानापन्न मे निहित होता है। प्रतीक अज्ञात अथवा निचले स्तर की अभिव्यक्ति है जिसके बारे मे प्रत्यक्ष अनुभूति सहज ही संभव नहीं है।

प्रतीक द्वारा जिन इच्छाओं की अभिव्यक्ति होती है उनका सूक्ष्म अन्वेषण करने के पश्चात् यह स्थापित हुआ है कि वे अनेक तत्वीय होती हैं। इसके दृष्टान्त मानसिक अभिव्यक्ति के हरेक क्षेत्र मे मिलते हैं। स्वप्न-क्षेत्र मे इच्छाओं का बहुपक्षीय होना स्पष्ट है। वस्तुतः स्वप्न-प्रतीकों का वर्गीकरण इच्छाओं के बहुपक्षीय स्वभाव के आधार पर हुआ है। स्वप्न की अतिसंकल्पन (ओवर डिटरमिनेशन) की कार्य-पद्धति से इसकी पुष्टि होती है जिसमे विभिन्न वृत्तियाँ और इच्छाएँ एक ही वस्तु से समवेत प्रकट होती हैं। इसी प्रकार कला मानव के बहुखण्डीय इच्छाओं का प्रदर्शन है। भारतीय कला अध्यात्म भाव के लिए प्रसिद्ध है। दृष्टान्त के लिए, बौद्धिक कला अथवा यौगिक उपासना द्वारा अज्ञात मन की आध्यात्मिक इच्छा का अधिकांशतः प्रदर्शन होता है—व्यक्ति की यह आंतरिक इच्छा कि वह अधिक समृद्ध और उत्कृष्ट जीवन यापन करे। इस श्रेणी की कला को एक प्रकार की परिमार्जित अभिव्यक्ति मात्र समझना या यह कामवृत्ति की प्रतिक्रिया मात्र है, संभव नहीं है। वस्तुतः

सम्पूर्ण होने की तीव्र आकांक्षा कामेच्छा से स्वतंत्र होती है; यह आन्तरिक है, प्रकृत है जो व्यक्तित्व मे वैसी ही गूंथी है जैसी अन्य इच्छाएँ। इसी से मानव बाहरी चमक-दमक आनन्द-वैभव और रंगरेलियों मे भी अपने 'स्व' को नहीं भूलता और अध्यात्म की ओर अग्रसर होता है। अध्यात्म के अतिरिक्त अन्य इच्छाएँ भी हैं। युद्ध की प्राचीन चित्रकलाएँ और आदिम काल के वीर रस के संगीत मानव की विद्रोहात्मक वृत्ति के प्रदर्शक हैं; पाश्चात्य मूर्त्तिकला और चित्रकला से अहं (इगोइज़म) का प्रदर्शन होता है; और विश्वविख्यात कवि कालिदास द्वारा रचित मेघदूत का काव्य काम-सम्बन्धी भाव-कल्पना से संविरचित है। स्वप्न की भाँति कला भी अतिसंकल्पित होती है, जिसका विख्यात दृष्टांत यक्षी की मूर्त्तिकला है, जिसमे इदम् और नैतिक मन का अद्भुत समझौता दृष्टिगत होता है।

इसी भाँति पूजा की वस्तुएँ विभिन्न इच्छाओं के प्रतीक हैं। इनमे कुछ प्रतीक उर्वर शक्ति के द्योतक हैं जो कामवृत्ति से संबंधित होते हैं; कुछ प्रतीक विध्वंस शक्ति के द्योतक है जो विद्रोह वृत्ति से संबंधित है। विद्रोह वृत्ति और मरणेच्छा तद्रूप है। धर्म-प्रतीक का कामात्मक महत्त्व होता है, क्योंकि प्रमुख सत्ता का विश्व मे अपने को व्यक्त करने के लिये यह आवश्यक अंग है। धर्म-प्रतीक का संबंध आत्मप्रतिपादन वृत्ति से होता है, क्योंकि विश्व की रक्षा के लिए इसे क्रियाशील होना आवश्यक है; धर्म-प्रतीक का विद्रोहात्मक दृष्टि से भी महत्त्व है, क्योंकि सृजन के लिए प्रलय आवश्यक है। यह परिकल्पना तत्ववादी महत्त्व की है और इसकी कल्पना विश्व चक्र की प्रकृति और क्रिया के विवरण के लिए की गयी है। इस प्रकार यह कि धर्म-प्रतीक काम-प्रतीक से अभिन्न है, यह मान्य नहीं है। वस्तुतः धर्म-प्रतीक सामान्य मानसिक शक्ति के प्रतीक है। भारतीय मूर्त्तिकला मे प्रतिष्ठापित देव मूर्त्तियाँ जिनके अनेक बाहू होते हैं उनसे अज्ञात मन के बहुपक्षीय स्वभाव का प्रतिनिधित्व होता है।

इसी प्रकार पौराणिक आख्यान मानव की विभिन्न इच्छाओं और प्रेरणाओं के प्रदर्शन मात्र हैं। भारतीय महाकाव्य रामायण और महाभारत के पात्रों द्वारा मानव की विभिन्न इच्छाओं की व्यंजना हुई है। कुछ ऐसी पौराणिक कथाएँ हैं जिनसे कामेच्छा की अभिव्यक्ति परिमार्जित रूप मे होती है; कुछ के द्वारा काम (सेक्स) की अभिव्यक्ति अधिक प्रकृत

असुसंस्कृत और अवांछनीय रूप मे हुई है। राधा-कृष्ण और शिव-पार्वती का आदर्श रागात्मक संबंध इरौस का प्रतिरूप है। इडिपस, इलेक्ट्रा और मिडिया की कथाएँ अनाचार प्रेम (इनसेस्चुयस लव) की प्रतीकात्मक अभिव्यंजनाएँ हैं। किंतु पौराणिक कथाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना न्यायसंगत नहीं है कि अनाचार इच्छा मानव स्वभाव को समझने की निश्चित कुंजी है। पौराणिक कथाएँ, विचार भाव-इच्छा और अभिव्यक्ति की दृप्टि से, समृद्ध होती हैं। इसी से प्रवेगशील मनोविज्ञान का विकास होते ही यह मत प्रचलित हुआ कि पौराणिक कथाएं प्राचीन और निरर्थक नहीं है।

भाषा के क्षेत्र मे बहुतेरे शब्दों और मुहावरों का प्रयोग होता है जो मानव स्वभाव की विभिन्न विशेषताओं की प्रतीकात्मक प्रतिमाएँ और भावात्मक ध्वनियाँ हैं। लाल वर्ण क्रोध का द्योतक होता है और यह कामात्मक इच्छा की भी अभिव्यंजना है। यह इसका प्रमाण है कि साहित्यिक शब्द अतिसंकल्पित होते हैं। सामाजिक व्यवहार भी विभिन्न इच्छाओं के द्योतक होते है। पारस्परिक संबंध मे मनुष्य शासन करता है और कभी आत्मसमर्पण—स्वभाव के अनुसार अपने व्यवहार मे संवेदनशील और संवेदनहीन होता है।

फ्रायड के मत से प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मानव की कामात्मक इच्छा तक सीमित होती है। यह बात उनके ग्रन्थों से जो दृष्टान्त उद्धृत हुये हैं उनसे स्पष्ट है। संभव है कि कामेच्छा की प्रधानता को एक प्रामाणिक तथ्य मानकर फ्रायड ने मानव स्वभाव के बारे मे अन्वेषण प्रारम्भ किया। फ्रायड के दृष्टिकोण से प्रतीक और प्रतीकेय की भौतिक समानता वस्तुओं को काम-प्रतीक के रूप मे ग्रहण करने के लिए पर्याप्त है। किंतु वस्तुतः दो वस्तुओं मे प्रतीक और प्रतीकेय संबंध स्थापित करने के लिए भौतिक समानता पर्याप्त नहीं होती; मानसिक संबंध आवश्यक होता है। अपनी पिछली कृतियों मे फ्रायड ने कामवृति-सिद्धान्त मे परिवर्तन किया और उन्होंने मानव की प्रमुख वृतियों को दो वर्गों मे बाँटा : इरौस और थैनटास, जो क्रम से जीवन और मरणेच्छा के रूप मे प्रचलित हैं। किन्तु फ्रायड ने इस नवीन अन्वेषण के प्रकाश मे प्रतीक-सिद्धान्त मे परिवर्त्तन नहीं किया। संभव है वे प्रारम्भिक सिद्धान्त पर ही दृढ़

रहे; अथवा इस समस्या पर उन्हें कोई नई सूझ न मिली हो। तब भी यह प्रशंसनीय है कि उन्होंने एक ऐसी समस्या प्रेषित किया जो आगे चलकर विशेष विकसित हुई। युंग ने अपनी पैनी दृष्टि से मानव के मन के अथाह समुद्र को पारदर्शी किया और एक जादूगर की तरह छिपी अमूल्य निधि का अन्वेषण किया।

प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति की विवेचना करने के पश्चात् यह भी सिद्ध होता है कि अज्ञात मन समन्वय, तर्क, परिवर्तन-परिवर्धन और विभिन्न प्रकार की भाव-कल्पनाओं की रचना मे ज्ञात मन से सदैव अधिक कुशल है। बालक इस बात से अवगत रहता है कि त्रुटि होने पर वह दंड का भागी होगा और इसी से उसमे सहज ही झूठ बोलने की बान पड़ जाती है: 'माँ मैंने गिलास नहीं तोड़ा; मैंने विस्तर से उसे गिलास तोड़ते आँखों देखा है।' पाठशाला जाने की इच्छा न होने पर बालक उदर मे दर्द का बहाना करता है। यह सब एक प्रकार का युक्त्याभ्यास है; किन्तु यह अत्यधिक सरल-सहज प्रकार का युक्त्याभ्यास है। अज्ञात मन की कार्य-पद्धति बहुत जटिल होती है। इसमे युक्त्याभ्यास के लिए विशेष चाल चलनी पड़ती है जिससे मूल भाव-इच्छा विस्थापित, आरोपित और समन्वित होती है। सचमुच अज्ञात मन की बनावट और कार्य-पद्धति बड़ी अद्भुत होती है। स्वप्न और कला अज्ञात मन की कूटनीति के ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। ज्ञात मन मे स्वप्न की भाव-कल्पना के अनुरूप अनुभूतियाँ नहीं मिलतीं। स्वप्न की भाव-कल्पनाओं से वस्तुतः अज्ञात मन की इच्छाओं और प्रेरणाओं का प्रतिनिधित्व होता है। जब कलाकार अथवा कवि अपनी भाव-इच्छाओं को उपमा अथवा रूपक की भाषा मे आभूषित करता है, यह मन के निचले स्तर का हस्तकौशल है; यह दैवी शक्ति से अभिप्रेत होना नहीं है। इसकी सत्यता किसी जटिल स्वप्न, कलात्मक चित्रण, पौराणिक आख्यान और धार्मिक रूढ़ि का विवेचन करने पर प्रमाणित हो जाती है। अज्ञात मन की यह एक विशिष्ट कला है; ज्ञात मन अज्ञात मन के जाल मे फँस जाता है और अज्ञात इच्छाओं का प्रदर्शन हो जाने से अज्ञात मन का भार हल्का हो जाता है। अज्ञात मन एक विचित्र पहेली है। मनुष्य को अपनी वास्तविक इच्छा के स्वभाव-स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। प्रायः व्यक्ति बाह्य स्तर पर समायोजित होते हुए भी विचित्र

बोझ से दबा रहता है, उसे शान्ति नहीं मिलती, वह बौखलाया-सा रहता है, और व्यवसाय मे भी रुचि नहीं लेता। ऐसा क्योंकर होता है? वस्तुतः इस मानसिक हलचल का कारण अज्ञात मन मे निहित रहता है—वह अज्ञात मन जिसकी प्रभुता मानव पर रहती है और जो मानव की वास्तविक क्रियाओं का पतवार है; "अज्ञात मन व्यक्तित्व का शिलान्त (मूल सिद्धान्त) है। मानव का भाग्य इसमे निहित होता है और अपने स्वभाव को समझने पर ही, जिस रूप मे यह अज्ञात मन मे निहित हो, मानसिक स्वातंत्र्य हस्तगत करना संभव है"। इसकी छलना, विकृत करने की शक्ति, भाव-विचार को एक रूप और दूसरा रूप देने की बुद्धिमत्ता और इसकी कल्पनात्मक प्रतिभा पर सचमुच आश्चर्य होता है। यह जीवन से परिप्लावित होता है और यह अर्थयुक्त है। बाह्य जगत् मे हमे इसके अनुरूप कल्पनात्मक प्रतिमाएँ नहीं मिलतीं। प्रस्तुत चिन्तन मे अज्ञात मन का विशिष्ट अध्ययन हुआ है और यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अज्ञात मन के भाव, इच्छाएँ ज्ञातमन के तथ्यों से अधिक समृद्ध हैं; अज्ञात अधिक क्रियाशील है; अज्ञात मन जादूगर की तरह कार्यरत रहता है और ज्ञात मन इसके हाथ का खिलौना मात्र है: अज्ञात मन की कार्य-पद्धतियाँ ज्ञात से कहीं अधिक जटिल हैं। युंग ने लिखा है: "ज्ञात मन के क्षेत्र मे हम अपने सरक्षक है, हम स्वयं साधन है। किंतु यदि हम शैडो के द्वारा आंतरिक मे प्रवेश करें तो यह दृष्टिगत होता है कि हमी विषय हैं।"

प्रश्न है कि मानव को वास्तविक विश्व प्रिय न होकर काल्पनिक विश्व क्योंकर प्रिय होता है! इसका मूल कारण यह है कि वास्तविक विश्व मे सामाजिक सीमाएँ होने के कारण इच्छाओं की तुष्टि न होने से व्यक्ति को निराशा मिलती है। इच्छाएँ कुंठित हो जाती हैं और इस कारण व्यक्ति के मन मे वास्तविकता की ओर अरुचि और आदर्श की ओर आसक्ति उत्पन्न होती है। प्रायः व्यक्ति की इच्छाओ की तुष्टि काल्पनिक जगत् मे ही होती है। भाव-कल्पनाओं की महत्ता के संदर्भ मे फ्लुगल के ग्रंथ 'मैन मौरल्स एन्ड सोसाइटी' का उद्धरण प्रसंगानुकूल है। "यह एक प्रकार का संचित राज्य है, संभवतः एक मानसिक व्यायामशाला जिसमे उपयुक्त अभ्यास से मानसिक शान्ति-स्थिरता प्राप्त करना संभव है,

कठिन परिस्थितियों पर आधिपत्य होता है और विषमता का निवारण होता है।" वस्तुतः भाव-कल्पनाओं की ओर की अद्भुत आसक्ति मानव का प्रकृत स्वभाव है; व्यक्ति वास्तविक वस्तु से अपने को विमुख कर प्रकृत इच्छा की तुष्टि के लिए अधिकांशतः स्थानापन्न विषय-वस्तु मे संलग्न होता है। इस प्रकार बाह्य और आन्तरिक आवश्यकताओं से प्रेरित मानव मे ब्लूलर की शब्दावली मे 'ऑटिस्टिक थिंकिंग' और युंग की शब्दावली मे 'फैन्टसिर्यिग' की ओर आकर्षण उत्पन्न हुआ है। बालक कल्पित साथी के साथ खेलता है, वह कल्पना मात्र मे आनन्द-विभोर रहता है। यह काल्पनिक विचार की प्रारम्भिक अवस्था है जो 'विशफुल थिंकिंग' के रूप मे प्रचलित है। काल्पनिक विचार एक व्यापक शब्द है जिसमे इदम् की तुष्टि मात्र निहित नहीं है, बल्कि जो नैतिक मन से भी निर्धारित होता है। कल्पना कितनी स्वतंत्र और अप्रतिबन्धित हो, यह नैतिक मन की आवश्यकताओं से सदैव प्रतिबन्धित होती है। जब इदम् की प्रभुता रहती है, कल्पना विशुद्ध रूप से सुखान्त रूप मे मिलती है; जब नैतिक मन की प्रभुता रहती है कल्पना अधिक सुखान्त नहीं होती और फलस्वरूप वास्तविकता की विकृति दुःखान्त रूप मे होती है। इस प्रकार इन मानसिक शक्तियों का प्रभाव काल्पनिक विचार पर पड़ता रहता है।

अतएव काल्पनिक असत् विचार मानसिक प्रक्रिया के हरेक क्षेत्र मे साधारण या असाधारण, वैध या अवैध मे प्रस्तुत रहते हैं। प्रश्न उठता है कि कल्पना और प्रतीक मे सामान्य और विशिष्ट क्षेत्रों मे कहाँ तक संबंध संभव है! कला के क्षेत्र का अवलोकन करने पर इनमे घनिष्ट सम्बन्ध मिलता है। कला विशेषतः काल्पनिक विचार या 'फैन्टसिर्यिग' पर निर्भर करती है। कला जीवन की अनुभूति से रंगी होती है; कलाकार अपनी प्रकृत इच्छाओं और सामूहिक मन की भाव-प्रतिमाओं को कल्पना द्वारा एक निश्चित स्वरूप प्रदान करता है। कलाकार की भाव-कल्पनाएँ दिवास्वप्न की भाव-कल्पनाओं से, जो व्यक्ति की संतुष्टि तक सीमित हैं, भिन्न होती हैं।

मानसिक रोग के क्षेत्र मे भी 'काल्पनिक विचार' के प्रमाणों की प्रचुरता है। मनोविक्षेप की अवस्था मे इसकी महत्ता विशेषतः रहती है। इसमे इदम् की इच्छाओं की, जो कामात्मक और विद्रोहात्मक प्रकार

की हैं, प्रभुता वास्तविकता पर रहती है या जिसमे नैतिक मन दृष्टिगत होता है। पहले प्रकार के दृष्टान्त असामयिक मनोह्लास के रोगियों के नवशब्द-निर्माण (नियोगालिज्म) मे प्रचुर मिलते हैं; दूसरे प्रकार के दृष्टान्त स्थिरभ्रम के रोगियों के विभिन्न भ्रम हैं, अथवा विषादरोग (मेलेन्कोलिया) के रोगी की यह भ्रामक कल्पना कि उसका रोग भयंकर है। वस्तुतः विकृत चिन्तन का प्रमाण सभी प्रकार के मानसिक रोग मे मिलता है। कल्पना मे रमना रोग का लक्षण है और आन्तरिक संघर्ष होने पर ही व्यक्ति इस श्रेणी की प्रतिक्रियाएँ करता है।

स्वप्न मे भी 'काल्पनिक विचार' की अभिव्यक्ति होती है। स्वप्न का काल्पनिक चिंतन इदम् और नैतिक मन दोनों से संचालित होता है। इदम् की प्रभुता होने पर स्वप्न मे सुखान्त चित्रण मिलता है; नैतिक मन का भय होने पर स्वप्न मे दुःखान्त चित्रण मिलता है। एक प्रकार से सभी प्रतीकात्मक स्वप्नों मे काल्पनिक विचार अनिवार्य-सा होता है। स्वप्न और दिवास्वप्न मे मूल भेद यह है कि स्वप्न अप्रिय और भ्रमात्मक प्रकार के भी होते हैं।

धर्म भी 'काल्पनिक विचार' का ही परिणाम होता है और यह टोटम-पूजा और प्राचीन समाज के कर्म-काण्ड से स्पष्ट है। धर्म की भाव-कल्पना नैतिक मन से नियंत्रित होती है; इसपर इदम् का नियंत्रण नहीं होता। नैतिक मन के भय के कारण मनुष्य वैराग्य लेता है; वह भोग-विलास से रिक्त हो जाता है और शरीर को अधिक-से-अधिक यातना देने के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ होता है।

पौराणिक आख्यानों मे भी काल्पनिक विचार के जीवित दृष्टांतों का दिग्दर्शन होता है। पौराणिक आख्यान जाति का स्वप्न होता है; दिवास्वप्न व्यक्ति का स्वप्न है। पौराणिक आख्यानों मे काल्पनिक चित्र मिलते हैं; दिवास्वप्न मे नाट्कीय व्यक्तित्व। पौराणिक आख्यानों की भाव-कल्पनाओं से मनुष्य को संतोष की प्राप्ति होती है, क्योंकि इनका संबंध इदम् से होता है और ये सब प्रकार के तर्क-विचार से मुक्त हैं। यह निष्कर्ष ऑटोरैंक ने निकाला है। किन्तु कुछ पौराणिक आख्यान ऐसे भी हैं जिनसे नैतिक मन की प्रभुता व्यक्त होती है।

उपर्युक्त अनुसंधान इसका प्रमाण है कि प्रतीक और 'काल्पनिक विचार' मे निकटवर्ती संबंध होता है। मानव की विभिन्न मानसिक क्रियाएँ भाव-कल्पनाओं की अभिव्यक्ति के विभिन्न रूप हैं। यही कारण है कि कोई मनुष्य कलाकार बनता है, कोई धर्म का अनुयायी और कोई मानसिक रोग का आखेट होता है। वस्तुतः कल्पना मानव की प्रकृत अवस्था है और इस प्रकृत तथ्य का निष्कासन संभव नहीं है। इसकी अभिव्यक्ति किसी-न-किसी रूप मे अनिवार्य है। प्रकृत इच्छाओं की तुष्टि काल्पनिक विचार और प्रतीक दोनों के ही द्वारा होती है। पहले मे संतुष्टि कल्पना जगत् मे होती है और दूसरे मे वास्तविक जगत् मे। कल्पना की प्रचुरता होने पर मनुष्य अपने को वास्तविक समस्या से समन्वित करने मे असमर्थ पाता है। यह समन्वय प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति द्वारा, अल्प मात्रा मे भले ही हो, प्राप्त होता है। काल्पनिक विचार के द्वारा अद्भुत प्रकार के प्रतीकों का निर्माण होता है। यह वास्तविकता को विकृत रूप देने मे सहायक होता है। इस प्रकार की व्यवस्था जब नहीं होती प्रतीकीकरण मे स्थानापन्न मात्र होता है जो अप्रिय प्रकार का है। कल्पना द्वारा जो विकृत तुष्टि मिलती है वह सदैव प्रतीकात्मक होती है, क्योंकि इससे अचेतन इच्छाओं की तुष्टि परोक्षरूप से होती है।

परिमार्जन की क्रिया भी प्रतीक का आवश्यक अंग है, क्योंकि सभी प्रकार की परिमार्जित अभिव्यक्तियाँ प्रकृत इच्छाओं के प्रतीकात्मक प्रदर्शन हैं। किन्तु प्रतीकीकरण और परिमार्जन मे एकत्व नहीं स्थापित किया जा सकता; प्रतीकीकरण का क्षेत्र अधिक विस्तृत होता है। इसमे परिमार्जित अभिव्यक्ति के अतिरिक्त अपरिमार्जित अभिव्यक्तियाँ भी मिलती है। स्वप्न और मानसिक रोग के क्षेत्रों मे परिमार्जन का प्रश्न नहीं उठता। परिमार्जित मानसिक क्रियाएँ सांस्कृतिक दृष्टि से गुणग्राही और प्रशंसायुक्त होती हैं; यह प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के लिए अनिवार्य नहीं होता। कला और धर्म के क्षेत्र मे भी जिसमे परिमार्जन प्रक्रिया का विशेष महत्व होता है यह प्रक्रिया अनिवार्य रूप से कार्यरत नहीं होती। अनेक ऐसे दृष्टान्त हैं जिनसे यह स्पष्ट है कि कला और धर्म मे अज्ञात मन की भाव-प्रतिमाओं मात्र की अभिव्यक्ति हुई है।

अतिसंकल्पित अभिव्यक्तियाँ भी जिनमे दो या अधिक इच्छाएँ समवेत अभिव्यक्त होती हैं, प्रतीकात्मक होती हैं। इसका प्रमाण स्वप्न, मानसिक

रोग, कला इत्यादि क्षेत्रों मे स्वच्छंद रूप मे मिलता है। किन्तु प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति सदैव अतिसंकल्पित प्रकार की नहीं होती; प्रायः स्वप्न-चित्र और मानसिक रोग के लक्षणों से एक ही इच्छा की अभिव्यक्ति होती है। यह स्वप्न के उन दृष्टांतों से स्पष्ट है जो अतिसंकल्पित प्रकार के है, और जो प्रतीकात्मक हैं किन्तु अतिसंकल्पित प्रकार के नहीं हैं।

अतएव प्रतीकीकरण का सम्बन्ध काल्पनिक विचार और अतिसंकल्पन से निकटवर्ती होता है। मनोविश्लेषण मे ये धारणाएँ अज्ञात मन के सूक्ष्म अध्ययन के पश्चात् विकसित हुई हैं। इन कार्य-पद्धतियों का प्रयोजन वास्तविकता से समन्वित करना है और इसी से मानव इदम् के दाँव-पेंच मे नहीं फ़ँसता।

संक्षेप मे यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि प्रतीक अज्ञात मन की भाषा है; प्रतीक पुष्प हैं; दमित इच्छाएँ और मानव मन की भावात्मक प्रतिमाएँ बीज है; और प्रतीकात्मक कार्य-पद्धति जल का कार्य करती है जिससे बीज फले और पनपे। अज्ञात मन की प्रतीकात्मक कार्य-पद्धति वास्तविक और वैज्ञानिक है।

शब्दकोष

अन्तर्मुखी	Introvert
अहं	Ego
अनिद्रारोग	Insomnia
अवयव	Organism
अतिसंकल्पन	Overdetermination
अव्यक्त अंश	Latent content
अनुरूपता	Analogy
अनाचार इच्छा	Incestuous desire
असामयिक मनोह्रास	Dementia praecox
अवचेतन मनोविज्ञान	Depth psychology
अन्त:करण	Conscience
अहं तादात्म्य	Ego identification
अज्ञात मन, अचेतन मन	Unconscious mind
अपमान भ्रम	Delusion of persecution
अनुन्मुक्त कामशक्ति	Undischarged libido
अतिचिंतन, रोगभ्रम	Hypochondria
अर्थविज्ञान	Semantics
अन्तर्मुखीकरण	Introversion
आत्मविस्मरण	Fugue
आत्म-प्रतिमा	Soul-image
आत्मप्रतिपादन	Self-assertion

आत्मसम्मोह	Narcissm
आंतरिक निराशा	Internal Frustration
इच्छा	Desire
इदम्, इड	Id
उत्साह-विषाद मनोदशा	Manic-Depressive Insanity
उत्तेजन	Stimulus
उन्नयन, परिमार्जन	Sublimation
ऐश्वर्य भ्रम	Delusion of grandeur
कल्पनाग्रह	Obsession
काल्पनिक विचार	Autistic thinking
काम-भावना	Sex feeling
कामशक्ति	Libido
कामविकृति	Sex perversion
कामवृत्ति	Sex desire
कार्य-पद्धति	Mental mechanism
कायिक हीनता	Organic inferiority
कामतृप्ति	Sex satisfaction
गतिशील, गत्यात्मक	Dynamic
जीवनशैली	Style of Life
दमन	Repression
द्विभाव	Ambivalence
दैव भाव-प्रतिमा	Archetypal Image of the Deity
दैहिक विवरण	Physiological interpretation
धार्मिक रहस्यवाद	Religious mysticism
धर्म-प्रतीक	Religious symbol
नाट्कीयन	Dramatisation
निद्रा-विचरण	Somnambulism
निष्क्रिय	Passive
नैतिक मन	Super-ego
नैतिक प्रतिबंधक	Censor

नैतिक प्रतीक	Moral symbol
परीक्षण	Test
परपीडन	Sadism
पितृ सूचक भाव-प्रतिमा	Father-imago
पुनर्जन्म प्रतीक	Rebirth symbolism
पौरुषी विद्रोह	Masculine protest
पौरुष सूचक भाव-प्रतिमा	Animus
प्रतिक्रियाकरण	Reaction formation
प्रतिक्रिया	Response
प्रतीक	Symbol
प्रतीकवाद	Symbolism
प्रत्यावर्त्तन	Regression
प्रक्षेपण	Projection
प्रतीकीकरण	Symbolization
प्रतिमा	Image
प्रवचक स्मृतियाँ	Concealing memories
प्रतिनिधि, प्रतिमान	Substitute
प्रवेगशील मनोविज्ञान	Dynamic Psychology
प्रेरक	Motivation
बहिर्मुखी	Extrovert
बाह्यमन	Objective mind
भाव-कल्पना	Phantasy
भाव-प्रतिमा	Archetype
भाव-ग्रंथि	Complex
भावात्मक विकास	Emotional development
भावात्मक तनाव	Emotional tension
भावात्मक स्थिरता	Emotional stability
भीतिरोग	Phobia
भैषज्य मनोविज्ञान	Medical psychology
मनोविश्लेपण	Psychoanalysis

मनोविच्छेद	Mental dissociation
मनोजात	Psychogemic
मनोदौर्बल्य	Psychoneurosis
मनोगठन	Mental structure
मनोविकृत, मनोरोगी	Psychopath
मनोजात विक्षेप	Functional psychoses
मानव-विज्ञान	Anthropology
मानसिक कार्य-कारण संबंध	Psychic determinism
मानसोपचार शास्त्र	Psychiatry
मातृपितृ कामग्रंथि	Oedipus complex
मातृ सूचक भाव-प्रतिमा	Mother imago
मुक्त भावग्रंथि	Autonomous complex
युक्ताभ्यास	Rationalization
रहस्यवादी प्रतीक	Mystic symbol
रचनात्मक वृत्ति	Creative impulse
रहस्यवादी योग-सम्मेलन	Participation mystic
रुग्णमनोविज्ञान	Clinical psychology
रोध	Resistance
रोगलक्षण	Symptom
लाक्षणिक क्रियाएँ	Symptomatic acts
वास्तविकता-सिद्धांत	Reality principle
वातावरण	Environment
विजातीय कामुकता	Heterosexuality
विश्लेषण	Analysis
विश्लेषक	Analyst
विश्लेष्णात्मक मनोविज्ञान	Analytical psychology
विस्थापन	Displacement
विचार	Thought
विस्मृति	Amnesia
विपथन	Aberration

विषय	Content
विमुखता	Apathy
विषादरोग	Involutional melancholia
वैयक्तिक भेद	Individual difference
वैयक्तिक मनोविज्ञान	Individual psychology
वृत्ति	Instinct
व्यक्त अंश	Manifest content
व्यक्तिगत अज्ञातमन	Personal unconscious
व्यक्तित्व	Personality
सम्मोहन	Hypnotism
सजातीय	Homogeneous
सजातीय कामुकता	Homosexuality
संघटन	Organization
सक्रिय	Active
संवेग, भाव	Emotion
संघर्ष	Conflict
साहचर्य विधि	Association method
सामूहिक दुर्बलता	Mass neurosis
सामूहिक अज्ञात मन	Collective unconscious
सुख-सिद्धान्त	Pleasure principle
सौन्दर्यात्मक प्रतीकवाद	Aesthetic symbolism
स्वप्न	Dream
स्वप्न-क्रिया	Dream-work
स्वप्न-व्याख्या	Dream-interpretation
स्वप्न-सम्मिश्रण	Dream synthesis
स्थानापन्न	Substitute
स्थानापन्न तुष्टि	Substitutive gratification
स्मृति	Memory
स्त्रैणता सूचक भाव-प्रतिमा	Anima
स्नायुरोग	Neurasthenia

स्नायुविज्ञान	Neurology
स्वपीड़न	Maschoism
स्थिरभ्रम	Paranoia
हठप्रवृत्ति	Compulsion
हिस्टीरिया	Hysteria
हीनभावग्रंथि	Inferiority complex
ज्ञातमन, चेतन मन	Conscious mind

अनुक्रमणिका

अज्ञात मन १५-१६, ३२, ४०, ४९, ७४, ८२, ८७, १०७, १२०, १२३, १२९, १७१
व्यक्तिगत १७९, २१९, २२६, २३६, २४१
सामूहिक १६, १८, ६२-६३, ८९, १७३, २२६
अव्यक्त अंश ४८, ५१
अहं ११७, १५९, १७८, १९५
अनाचार इच्छा, अनन्यगामी ९८-९९, १०२
अन्योक्ति १२
अब्राहम ४१, ५४
अर्धचेतन, अवचेतन ५०
अन्तर्मुखी १२५
अतृप्त इच्छा १२०
अपमान-भ्रम १५६
अन्तर्मुखीकरण १२५
आत्मप्रतिपादन ९६
आत्म-प्रतिमा ७४
आत्मसम्मोह १५५, १५९, १७०
आंतरिक निराशा १२२-२३
आर्चेटाइप १०५
ओड टु द वेस्ट विंड १०७
इडिपस आख्यान १९९
इड, इदम् १८, ५०, १२२, १५९
इरौस ९५, २०३-२०४
एडलर ३५, ९६, १०१, १२०, १२६-२७, १३२, १३९, २२०
ऐश्वर्य भ्रम १५७
काल्पनिक विचार २४२-४३
काव्यप्रतीक
काम-प्रतीक २३८
कामवृत्ति १४, ४२-४३, ९१-९२, १२५
कायिक हीनता १२८
कामशक्ति ९१, १२५
कायिक प्रतीक
चिह्न ११
ट्रामा ८६, १३२, १३७
टैबू ४१, १४२
टोटमपूजा

जीवनशैली ३९
जैने ३९, १३२, १६१
जोन्स, अर्नेस्ट १७, २८, ८०, ८२, ९८,
  १४६
तांडव नृत्य ११८
थैनेटस २०३
दमन १२३, २१७
द्विभाव १७८, १८०, २१७
दैव भाव-प्रतिमा ३२, १७२, २३०-३१
धर्म-प्रतीक २३८
धार्मिक रहस्यवाद १९४
धार्मिक प्रतीकवाद
नारसिज़्म १२५
निद्रा-विचरण
निग्रहीत इच्छा १२४
नैतिक प्रतिबंधक ३६
नैतिक मन १९४
नैतिक प्रतीक
परी कथा १९८
परसोना ७४
पशुपूजा १६८-१७०
पुनर्जन्म प्रतीक २०१, २०३
पौरुष सूचक भाव-प्रतिमा २५, ६१,
  ७४, २२६, २३०
पौरुषी विद्रोह १२६
पौराणिक कथानक १९६
प्रतीक ११-१५, १८, ८८
  क्रॉस १२
  कुण्डलित वक्र १८७
  ड्रैगन २०३
  चतुष्देव १८७
  जल ५३-५४, ५९
  नगर ९९
  पृथ्वी
  मंडल १८४-८५
  यात्रा ५४, १११
  राष्ट्रीय झंडा २२६
  वृक्ष १८७
  स्वस्तिक १८६
  संख्या तीन ५६
  संख्या चार ६५
  सर्प ७२
प्रतिक्रिया शब्द
प्रवंचक स्मृतियाँ २२०
फ्रायड १४, २३, ३५, ३८, ४१, ८६
फेरेन्कज़ी १२९, १३४, १५८
बलिदान प्रथा १७०
भाव-प्रतिमा १५, २०, ७४, १५५, २१७
भाव-ग्रंथि १२१
भाव-कल्पना १५६, २४१
भैषज्य मनोविज्ञान ३५
मानसिक शक्ति १२५
मानसिक दौर्बल्य ५१, १२७, १६३
मानसिक रोग
  अतिचिंतन १३८-३९
  असामयिक मनोह्रास १५७, १६१
  उत्साह-विषाद मनोदशा १६१
  कल्पनाग्रह १४०-४७, १९२
  चितारोग १४७-४९
  भीतिरोग १४९-५१

विषादरोग १६२
स्नायुरोग १३८
स्थिरभ्रम १५२, १५७
हिस्टीरिया १३०-१३८
मातृसूचक भाव-प्रतिमा २३०
मातृ प्रतीक २०१
मानसिक प्रतीक
मातृशक्ति २०३
मातृपितृ कामग्रथि ९८, १७८
मानसिक कार्य-पद्धतियाँ २२५, २२७
अतिसकल्पन ४७, २१९, २३७
उन्नयन, परिमार्जन ७९-८२
नाट्रकीयकरण ५२
प्रतीक्रीकरण ११, १३, २५
प्रत्यावर्त्तन १८, ३९, १२४
प्रक्षेपण १५६
फिस्तर २८, १३४
युक्ताभ्यास २४०
विस्थापन ५१-५२
संक्षेपण १३, ५१, १९४
मुक्त भाव-ग्रंथि ९२, १३१
मूर्तिपूजा १६८-७०
मैकबेथ
मैकडुगल १२२, १७९
युग, सी० जी० २५, ३८, ४१, ४३, ६१, ६७, ८८, ९१, ९७, १२१, १२३, १२६, १२८, १७३-७४,१७९
रचनात्मक वृत्ति ९१-९२
रहस्यवाद १९३-९५
रहस्यवादी प्रतीक ११०-११३
रहस्यवादी योग-सम्मेलन ९४-९५
लाक्षणिक क्रियाएं २२२
लिबिडो १६, २४, ४३
व्यक्त अंश ४८, ५१-५२
व्यक्तिगत भाव-ग्रंथि २१९
वृत्ति, प्रवृत्ति ३७, ४४
वास्तविकता-सिद्धांत ४७
विस्मरण २१९-२२०
विश्लेष्णात्मक मनोविज्ञान ३७, १६८, १७२-७३
वोटन २२५
वैयक्तिक मनोविज्ञान १२७
शारको ११९
स्वप्न ३४-७६
स्वप्न-क्रिया ३९, ५३
स्वप्न-व्याख्या ५२
स्वप्न-सम्मिश्रण विधि ७३
स्थानापन्न तुष्टि ८१-८२, २३७
स्टेकल ३५, ६६, ७८
स्त्रैणता सूचक भाव-प्रतिमा २५, ६१, ७४, १०८, ११८, २२६
समोहन ११९
संघर्ष १२१-२२
सामूहिक दुर्बलता २२५
सिलबरर २१, २६-२८
सुख-सिद्धांत ४९
सौन्दर्यात्मक प्रतीकवाद १०२-१०३
हिस्टीरिया ११९, १३०, १३८
हीनत्व-भाव १२६-२७, १६७
हैवलॉक एलिस ३५, ७३

हैमलेट ९८-९९ १२९, १७७
ज्ञातमन, अचेतनमन ४०, १०७, १२०, त्रिमूर्त्ति ११६

ग्रंथ-सूची

Abraham, Karl : Selected Papers on Psycho-analysis 1926

Adler, Alfred : Study of Organic Inferiority and Its Psychical Compensations 1917
The Neurotic Constitution 1921
Problems of Neurosis 1929
Individual Psychology 1924
Understanding Human Nature 1930
What Life Should Mean to You

Baudouin, C : Psycho-analysis & Aesthetics 1924
Power with-in us 1923

Berg, Charles : Deep Analysis 1946

Bhagavan Das : Science of Emotions 1924
Ancient Psycho-synthesis Vs. Modern Psycho-analysis 1949

Blavatsky, H. P. : The Secret Doctrine 1938

Bloomfield : Language

Bowra, C, M, : The Heritage of Symbolism 1947

Brill, A, A, : Psycho-analysis 1923

Colderidge : Ancient Mariner

Commaraswamy, Ananda K : The Dance of Shiva 1918
Transformation of Nature in Art 1935
Yaksas 1928

Collingwood : Speculum Mentis

Ellis, Havelock : The World of Dreams 1926

Studies in the Psychology of Sex Vol. VI, VII 1928

Ferenczi, S : Further Contribution to the Theory and Technique of Psycho-analysis 1926

Fisher, V, E. : An Introduction to Abnormal Psychology 1937

Flugel, J. C. : Man, Morals, & Society 1945

Frazer, J. G. : The Golden Bough 1921

Freud, Sigmund : Collected Papers Vols. I, II, III, IV 1925

Lectures on Psycho-analysis 1922

The Ego and the Id 1927

Future of an Illusion 1928

Civilization and Its Discontents 1930

Psychopathology of Everyday Life 1920

Beyond the Pleasure Principle 1922

Problem of Lay-analysis 1927

New Introductory Lectures 1933

Three Contributions to the Theory of Sex 1920

An Autobiographical Study 1936

Leonardo-da Vinci

The Interpretation of Dream 1932, 1924

General Introduction to Psycho-analysis 1920

Moses and Monotheism 1939

Basic Writings of Sigmund Freud 1938

Totem and Taboo

Freud, Anna : The Ego and the Mechanisms of Defence 1937

Grensted, L. W. : Psychology of God 1936

Havell, E. B. : A Handbook of Indian Art 1927

The Ideals of Indian Art 1920

Hitschmann, E. : Freud's Theory of Neurosis 1921

Jacobi, Jolan : The Psychology of C. G. Jung 1942

James, William : Varieties of Religious Experience 1909

James, H. Cousins : The Philosophy of Beauty

Janet, Pierre : Psychological Healing Vols. I, II 1925

Jesperson : Language

Jones, E. : Papers on Psycho-analysis 1923
Essays on Applied Psycho-analysis 1923

Jung, C. G. : Psychology of the Unconscious 1918
Analytical Psychology 1920
Psychological Types 1923
Contribution to Analytical Psychology 1928
Modern Man in Search of Soul 1933
Psychology and Religion 1938
The Integration of Personality 1940
Psychology of Dementia Praecox 1944
The Secret of the Golden Flower
Essays on Contemporary Events 1947

Kanga, D. D. : Where Theosophy and Science Meet 1938

Kempf, E. J. : Psycho-pathology 1921

Knight, R. P. : Symbolic Language of Ancient Art and Mythology 1876

Knight, Dunlap : Mysticism, Freudianism and Scientific Psychology

Lawrence, Harriman Philip : The Encyclopedia of Psychology

Langer, Susanne K : Philosophy in a New Key 1942

Leuba, J. H. : Psychology of Religious Mysticism

Lowy, S. : Foundation of Dream Interpretation 1942

Matthew, Anjilvel : Depth Psychology of Education 1944

Malinowski, B. : Crime and Custom in Savage Society 1932

Mackenzie, D. A. : The Migration of Symbols and their Relation to Beliefs and Customs 1926

Markey, John F. : The Symbolic Process and its Integration in Children 1928

Mc Dougall : Psycho-analysis and Social Psychology 1936
An Outline of Abnormal Psychology 1926

Miller, Crichton : Psycho-analysis and its Derivatives

Putnam, J. J. : Addresses on Psycho-analysis 1920

Pfister, O. : The Psychoanalytic Method 1917

Read, Herbert : Collected Essays in Literary Criticism 1938
Rooke, G. M. : Meghduta of Kalidas
Rivers, W. H. R. : Instinct and the Unconscious 1922
Psychology and Politics
Conffict and Dream 1923
Rose, William : An Outline of Modern Knowledge 1931
Symons Arthur : The Symbolist Movement in Literature 1911
Stella, Kramrisch : Indian Temple
Sandor Lorand : The Yearbook of Psycho-analysis I
Stekel, Wilhelm : The Interpretation of Dreams Vols. I, II 1943
Shakespeare : Macbeth
Hamlet
Shaw, Bernard : Caesar and Cleopatra
Tayler, A. E. : The Faith of a Moralist
Thorburne : Art and the Unconscious
Underhill, Evlyn : Mysticism 1930
Urban, Wilbur Marshall : Language and Reality 1939
Whitehead : Psycho-analysis and Art 1930
Symbllism Its Meaning and Effect
Woodburne : The Religious Attitude